अंक १३

संस्कृत–पाठ–माला

(संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

त्रयोदशो भागः ।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मण्डल, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

सप्तम वार

संवत २००७, शके १८७२, सन १९५०

मूल्य ८ आने ।

वेदोंकी संहिताएँ

	मू.	डा. व्य.
(१) ऋग्वेद (इसमें सर्वानुक्रम, देवतासूची, ऋषिसूची, मंत्रसूची आदि भी है।)	६)	१॥)
(२) यजुर्वेद (वाजसनेयि-संहिता)	३)	१॥)
(३) [यजुर्वेद] काण्व-संहिता	४)	॥)
(४) ,, मैत्रायणी-संहिता	६)	१)
(५) ,, काठक-संहिता	६)	१)
(६) यजुर्वेद-सर्वानुक्रम सूत्र	१॥)	॥)
(७) यजुर्वेद वा० सं० पादसूची	१॥)	॥)
(८) ऋग्वेद-मंत्रसूची	२)	॥)

सामवेद कौथुमशाखीयः
ग्रामगेय (वेय प्रकृति) गानात्मकः
प्रथमः तथा द्वितीयो भागः

(१) इसके प्रारंभमें संस्कृत भूमिका है और पश्चात् 'प्रकृतिगान' तथा 'आरण्यकगान' है। प्रकृतिगानमें आग्नेपर्व (१८१ गान) ऐन्द्रपर्व (६३३गान) तथा 'पवमानपर्व' (३८४ गान) ये तीन पर्व और कुल ११९८ गान हैं। आरण्यकगानमें अर्कपर्व (८९ गान), द्वन्द्वपर्व (७७ गान), शुक्रियपर्व (८४ गान), और वाचोव्रतपर्व (४० गान) ये चार पर्व और कुल (२९० गान) हैं।

इसमें पृष्ठके प्रारंभमें ऋग्वेद-मंत्र है आर सामवेदका मंत्र है और पश्चात् गान है। इसके पृष्ठ ४३४ और मूल्य ६) रु- तथा डा. व्य. ॥।) रु. है।

(२)

उपर्युक्त पुस्तक केवल गान मात्र छपा है। उसके पृष्ठ २८४ और मूल्य ४) रु. तथा डा. व्य. ॥) रु. है।

संस्कृत-पाठ-माला ।

(संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

भाग तेरहवां ।

—०—

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मंडल, किल्ला-पारडी, (जि. सूरत)

—०—

पंचम वार

—०—

संवत् २००७, शक १८७२, सन १९५०

क्रियापद-विचार।

किसी भाषाका वाक्य पूर्ण बननेके लिये क्रियापद का ज्ञान अवश्य लगता है। इस समय तक संस्कृत–भाषामें प्रवेश करनेके लिये जो कारकादि अन्यान्य साधन चाहिये उनका ज्ञान पाठकोंको हो चुका है। अब इस पुस्तकसे आगेके छः भागोंमें क्रियापद–विचार पाठकोंको समझाना है। इस भागमें प्रथम गणके धातुओंके रूप बनानेकी रीति दिखानी है। प्रथम गणके आवश्यक सब धातु इस पुस्तकमें दिये हैं और उनसे क्रियापद, नाम तथा विशेषण बनानेकी सुगम रीति भी बताई है। इसलिये आशा है कि इस पुस्तकसे प्रथम गणके धातुओंके रूप बनाना पाठक सीख लेंगे।

यदि पाठक धातुविचारके इन छः पुस्तकोंका अध्ययन ध्यानपूर्वक करेंगे तो उनको क्रियाओंका आवश्यक ज्ञान हो जायगा। और जिसको धातुओंके रूपोंका ज्ञान हुआ उसको संस्कृत–भाषाका ही ज्ञान हुआ ऐसा समझनेमें कोई रुकावट नहीं है। क्योंकि संस्कृत–भाषा यौगिक अर्थात् धातुओंसे बनी भाषा है, इसलिये जो धातुओंका ठीक ठीक अध्ययन करता है वह संस्कृतमें प्रभुत्व पाता है। इसलिये पाठक इस धातु--विचार का उत्तम अध्ययन करें।

स्वाध्याय-मण्डल
'आनंदाश्रम'
किल्ला पारडी (जि० सूरत)

लेखक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष—स्वाध्याय-मंडल

मुद्रक तथा प्रकाशक- व० श्री० सातवलेकर B. A.
भारतमुद्रणालय 'आनंदाश्रम' किल्ला पारडी (जि० सूरत)

ॐ

संस्कृत-पाठ-माला ।

त्रयोदशो भागः ।

पाठ १

प्रथमगणके धातु ।

संस्कृत--भाषामें कई हजार मूल धातु हैं, इन धातुओंसे अनंत क्रियापद और धातुसाधित पद तथा अन्यान्य नाम बने हैं। यह धातुविचार अत्यंत मनोरंजक है और इसका संबंध निरुक्त शास्त्रसे अत्यंत निकट है। यदि यह धातुविचारका अध्ययन ठीक प्रकार हुआ तो न केवल पाठकोंको संस्कृतका ज्ञान हो सकता है प्रत्युत गीर्वाण भाषासे जो शब्द अन्यान्य भाषाओंमें गये हैं उनका भी बोध हो सकता है।

ऋषिमुनियोंने इस धातुपाठका संग्रह किया; यह मानव-जातिपर ऋषियोंका बडा ही उपकार है। अन्यथा भाषाके विस्तारका पता किसीको लगना ही नहीं था।

संस्कृतके सहस्रों धातुओंके रूप विविध प्रकारसे बनते हैं। हरएक प्रकारके धातुओंका एक एक गण बनाया गया है। इस प्रकार बने हुए धातुओंके गण दस हैं। इन दसों गणोंका परिचय आगे पाठकोंको हो जायगा।

❀

इस पुस्तकमें प्रथम गण (पहिले गण) के धातुओंका परिचय पाठकोंसे कराना है। क्योंकि इस गणके धातु बहुत हैं और इनके रूप बनाना सुगम है।

रूपोंके मुख्य भेद।

धातुओंके रूपोंके मुख्य भेद दो हैं। (१) परस्मैपद और (२) आत्मनेपद। हरएक गणके धातुओंमें कई धातु केवल " परस्मैपद " की रीतिसे रूप बनाते हैं। और कई धातु केवल " आत्मनेपद " की रीतिसे रूप बनाते हैं। इनके अतिरिक्त और एक वर्ग धातुओंका है उनको " उभयपदी " कहते हैं, इनके रूप पूर्वोक्त दोनों रीतियोंसे होते हैं अर्थात् इनके रूप परस्मैपदके अनुसार तथा आत्मनेपदके अनुसार बनते हैं।

इस पुस्तकमें प्रथम " परस्मैपद " के प्रथम गणके धातु दिये जायंगे, पश्चात् " आत्मनेपद " के दिये जायंगे और तत्पश्चात् " उभयपद " के धातु दिये जांयगे। इस रीतिसे पाठक सुगमताके साथ धातुविचारमें प्रविष्ट हो सकेंगे।

काल--विचार।

क्रियापदोंके विचारमें काल-विचार भी प्रधान स्थान रखता है। क्रियापदोंके कई रूप ' भूतकाल ' का बोध करते हैं, कई " वर्तमान " कालके बोधक होते हैं और कई " भविष्यकाल " का भाव बताते हैं। जैसा—

१ भूत-काल — अभवत् = हुआ।
२ वर्तमान-काल— भवति = होता है।
३ भविष्य-काल— भविष्यति = होगा।

कालोंके अतिरिक्त आज्ञा, संदेह, संकेत आदि मनोभाव बतानेवाले रूप भी भिन्न भिन्न होते हैं। भाषामें भी इस प्रकार रूपोंका भेद है। वह करता है, उसने किया, वह करेगा, वह करे, उसे करना चाहिये इत्यादि विविध रूप हरएक भाषामें बनते ही हैं। उसी प्रकार संस्कृतमें भी रूप बनते

हैं। इन रूपोंके दस वर्ग बनाये हैं, इनका नाम " दस लकार " है। भगवान् पाणिनी मुनिने इस प्रकार इनके नाम दिये हैं— १ लट्, २ लिट्, ३ लुट्, ४ लृट्, ५ लेट्, ६ लोट्, ७ लङ्, ८ लिङ्, ९ लुङ् १० लृङ्। इनमें पंचम लेट्के रूप वेदोंमें ही प्रयुक्त होते हैं, भाषामें नहीं।

इन दस लकारोंके रूपोंका उपयोग निम्न प्रकार होता है।

१ लट् = (वर्तमान--काल) = वर्तमानकालकी क्रिया इस रूपसे बताई जाती है। जैसा " भवति " होता है।

२ लिट् = (भूतकाल) = अनद्यतन–परोक्ष–भूतकाल = अर्थात् जो क्रिया आज नहीं हुई और जो बोलनेवालेके सामने नहीं हुई। जैसा— " बभूव " = हुआ था।

३ लुट् = (भविष्यकाल) = अनद्यतन–भविष्य–काल = अर्थात् जो भविष्य आजके समयका बोधक नहीं। जैसा " भविता " = होगा।

४ लृट् = (भविष्यकाल) = इससे सामान्य भविष्यका बोध होता है। जैसा— " भविष्यति। " = होगा।

५ लेट् = (इसका प्रयोग वेदमें ही " लिङ् " अर्थमें होता है, भाषामें इसका उपयोग नहीं होता)

६ लोट् = (विधि, निमंत्रण, प्रश्न, प्रार्थना, सत्कार, आशीर्वाद आदि अर्थमें इसका उपयोग होता है) जैसा–" भवतु " होवे।

७ लङ् = (भूतकाल) अनद्यतन--भूतकाल = अर्थात् जो आजके भूतकालका वाचक नहीं। जैसा–" अभूत् " = हुआ।

८ लिङ् = (विधि, निमंत्रण, आमंत्रण, प्रश्न, सत्कार, प्रार्थना आदि अर्थोंमें इसका प्रयोग होता है) जैसा--" भवेत् "।

(आशीर्वाद अर्थमें भी इसका उपयोग होता है)
जैसा– " भूयात् " होवे।

९ लुङ् = (भूतकालमें इसका प्रयोग होता है) जैसा–" अभूत् "

१० लृङ् = (हेतुहेतुमद्भाव इस अर्थमें इसका उपयोग है) जैसा— " अभविष्यत् " = यदि होगा।

इनके रूपोंका बोध आगे पाठकोंका किया जायगा। इस समय केवल " लट् " (वर्तमान काल) और " लृट् " (भविष्यकाल) इन दोनों के रूप बताये जाते हैं—

लट् (वर्तमान--काल) परस्मपद।

भू (होना)

	(एकवचन)	(द्विवचन)	(बहुवचन)
प्रथम पुरुष	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यम पुरुष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तम पुरुष	भवामि	भवावः	भवामः

प्रथम पुरुष " सः " (वह) अर्थमें, मध्यम पुरुष " त्वं (तू) " अर्थमें और उत्तम पुरुष " अहं " (मैं) अर्थमें होता है। " भू " धातुके ये रूप वर्तमान कालमें होते हैं अब इसी धातुके भविष्यके रूप देखिए—

लृट् (भविष्य–काल) परस्मैपद।

	(एकव०)	(द्विव०)	(बहुव०)
प्र० पुरुष	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पुरुष	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पुरुष	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

पाठक देखेंगे तो उनको पता लगेगा कि भविष्य कालके रूपोंमें " स्य "

अथवा " इष्य " बीचमें अधिक लगा है, शेष रूप वर्तमान कालके समानही होते हैं जैसा—

वर्तमान—भव—ति   भव—तः   भव—न्ति
भविष्य—भविष्यति   भविष्यतः   भविष्यन्ति

इस प्रकार अन्य रूप भी पाठक देखें और उनकी विशेषता ठीक प्रकार ध्यानमें धारण करें। अब प्रथम गण परस्मैपदके कुछ धातु दिये जाते हैं—

प्रथमगण परस्मैपदी धातु।

अग् = (कुटिलगति करना) = अगति, अगिष्यति
अज् = (जाना, चलना) = अजति, आजिष्यति
अंच् = (जाना, पूजना) = अञ्चति, अंचिष्यति
अट् = (भटकना) = अटति, अटिष्यति
अत् = (सतत गमन करना) = अतति, आतिष्यति
अर्घ् = (मूल्य होना) = अर्घति, अर्घिष्यति
अर्च् = (पूजा करना) = अर्चति, अर्चिष्यति
अर्ज् = (कमाना) = अर्जति, अर्जिष्यति
अर्ह् = (पूजा करना, योग्य होना) = अर्हति, आर्हिष्यति
अव् = (रक्षण करना) = अवति, आविष्यति
इन्द् = (परमैश्वर्य प्राप्त करना) = इन्दति, इन्दिष्यति
इ = (जाना) = अयति, एष्यति
ई = (,,) = ,, ,,
इर् = (जाना) = ईरति, ईरिष्यति
ईर्ष्य् = (ईर्ष्या करना) = ईर्ष्यति, ईर्ष्यिष्यति
उक्ष् = (सींचना) = उक्षति, उक्षिष्यति
उज्झ् = (छोडना) = उज्झति, उज्झिष्यति

ऊर्ज् = (बलवान् होना, जीवन धारण करना) = ऊर्जति, ऊर्जिष्यति
एज् = (कांपना, हिलना) = एजति, एजिष्यति
कच् = (शब्द करना) = कचति, कचिष्यति

उक्त धातुओंमें (१) प्रथम धातु, (२) पश्चात् उसका अर्थ (३) तदनंतर उसका वर्तमानकालका (लट्का) रूप और उसके पश्चात् (४) भविष्यकालका (लृट्का) रूप दिया है। इससे विना आयास पाठक इन धातुओंके रूप बना सकेंगे। अब इनका उपयोग वाक्योंमें कीजिये—

संस्कृत--वाक्यानि।

१ मनुष्यः नगरे अटति। २ अश्वौ ग्रामात् बहिः यत्र कुत्र अपि अटतः। ३ मार्जाराः तव गृहे अटन्ति। ४ कः तत्र अतति। ५ त्वं देवं कदा आर्चिष्यसि ? ६ सः तं अवति। वीरः जनपदं अवति। ७ रामभद्रः नगरं न एष्यति। ८ यथा देवदत्तः आत्मानं अवति तथा भूमित्रः न अवति॥ ९ कथं स वृक्षः एजति ? वायुना स वृक्षः एवं एजति। १० स पूजां अर्हति।

भाषा--वाक्य।

मनुष्य नगरमें घूमता है। २ (दो) घोडे गांवके बाहर जहां कहां भी घूमते हैं। ३ बिल्लियां तेरे घरमें घूमती हैं। ४ कौन वहां सतत गमन करता है ? ५ तू देवकी कब पूजा करेगा ? ६ वह उसकी रक्षा करता है। वीर राष्ट्रकी रक्षा करता है। ७ रामभद्र नगरको नहीं जायेगा। ८ जैसा देवदत्त अपना संरक्षण करता है वैसा भूमित्र नहीं रक्षण करता। ९ कैसा वह वृक्ष हिलता है ? वायुसे वह वृक्ष ऐसा हिलता है। १० वह पूजाके लिये योग्य है।

पाठक इसी प्रकार धातुओंके रूप वाक्योंमें प्रयुक्त करें।

पाठ २

कृष् (हल चलाना)

प्रथमगण परस्मैपदके रूप ।

वर्तमान-काल (लट्)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
१ प्र० पु०	कर्षति	कर्षतः	कर्षन्ति
२ म० पु०	कर्षसि	कर्षथः	कर्षथ
३ उ० पु०	कर्षामि	कर्षावः	कर्षामः

भविष्यकाल (लृट्)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
१ प्र० पु०	कर्क्ष्यति	कर्क्ष्यतः	कर्क्ष्यन्ति
२ म० पु०	कर्क्ष्यसि	कर्क्ष्यथः	कर्क्ष्यथ
३ उ० पु०	कर्क्ष्यामि	कर्क्ष्यावः	कर्क्ष्यामः

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ कृषकः हलेन भूमिं कर्षति । २ कृषीवलौ भूमिं कर्षतः । ३ कृषीवलाः भूमिं कर्षन्ति । ४ त्वं स्वभूमिं कदा कर्क्ष्यसि ? ५ यदा त्वं भूमिं कर्क्ष्यसि तदा अहं न कर्क्ष्यामि । ६ श्वः वयं सर्वे भूमिं कर्क्ष्यामः ।

भाषा-वाक्य ।

१ किसान हलसे भूमिका कर्षण करता है । २ (दो) किसान भूमिका कर्षण करते हैं । ३ (सब) किसान भूमिकी कृषि करते हैं । ५ तू अपनी भूमिको कब हल चलायेगा ? ५ जब तू भूमिको हल चलायेगा तब मैं नहीं चलाऊंगा । ६ कल हम सब भूमिको हल चलावेंगे ।

प्रथमगण परस्मैपदके धातु ।

अब कुछ धातुओंका स्मरण कीजिये—

कठ्– (दुःखमें रहना) - कठति, कठिष्यति
कण्– (दुःखसे रोना) - कणति, कणिष्यति
कर्द्– (बुरा शब्द करना) कर्दति, कर्दिष्यति
कस्– (जाना)–कसति, कसिष्यति
कांक्ष्– (इच्छा करना)-- कांक्षति, कांक्षिष्यति
कित्–(शंका करना, रोग दूर करना)-- चिकित्सति, चिकित्सिष्यति
कित्–(इच्छा करना)-- केतति, केतिष्यति
कुच्–(संकोच होना)-- कुचति, कुचिष्यति
कुंच्– (टेढा होना, अल्प बनना)--कुंचति, कुंचिष्यति
कुंठ्–(पंगु बनना)- कुंठति, कुंठिष्यति
कुंथ्– (दुःख सहना) कुंथति, कुंथिष्यति
कूज्– (अव्यक्त शब्द करना)-- कूजति, कूजिष्यति
कूल्– (आच्छादित करना) कूलति, कूलिष्यति
कृष्– (हल चलाना) कर्षति, कर्क्ष्यति
क्रंद्– (रोना, पुकारना)-- क्रंदति, क्रंदिष्यति
क्रम्– (चलना)-- क्रामति, क्रमिष्यति
क्रीड्– (खेलना)-- क्रीडति, क्रीडिष्यति
क्रुश्– (रोना, पुकारना) क्रोशति, क्रोक्ष्यति
क्लिद्– (रोना)– क्लिंदति, क्लिंदिष्यति
क्वथ्– (उबालना, कषाय करना)– क्वथति, क्वथिस्यति
क्षर्– (चूना)– क्षरति, क्षरिष्यति
क्षि– (नाश होना)– क्षयति, क्षेष्यति

संस्कृत-वाक्यानि।

१ स पुरुषः तत्र किमर्थं कणति ? २ वैद्यः तस्य रोगं चिकित्सति अतः स तत्र कणति। ३ तत्र वैद्यौ कं रोगं चिकित्सतः ? ४ तत्र तस्य ज्वरं वैद्यौ चिकित्सतः। मम पुत्रः ज्वरेण पीडितः। अतः वैद्यौ तं इदानीं चिकित्सतः। ५ यथा स तत्र कूजति तथा एव त्वं अत्र कूजसि। ६ यथा स बालकः क्रंदति तथैव त्वं अपि क्रंदसि। ७ त्वं किं तेन सह इदानीं न क्रीडसि ? ८ सर्वे बालकाः तत्र इदानीं क्रीडन्ति। ९ यूयं सर्वे छात्राः कदा क्रीडिष्यथ ? १० तव धर्मपत्नी इदानीं किमर्थं क्वथति ?

भाषा-वाक्य।

१ वह पुरुष वहां किसलिये चिल्लाता है ? २ वैद्य उसके रोगकी चिकित्सा करता है इसलिये वह रोता है। ३ वहां (दो) वैद्य किस रोगकी चिकित्सा करते हैं ? वहां उसके ज्वरकी दो वैद्य चिकित्सा करते हैं। मेरा पुत्र ज्वरसे पीडित है। अतः (दो) वैद्य उसकी अब चिकित्सा कर रहे हैं। ५ जैसा वह वहां शब्द करता है उसी प्रकार तू यहां शब्द करता है। ६ जैसा वह बालक रोता है वैसा ही तू भी रोता है। ७ तू क्यों उसके साथ अब नहीं खेलता ? ८ सब बालक वहां अब खेलते हैं। तुम सब शिष्य कब खेलोगे ? १० तेरी धर्मपत्नी अब किसलिये कषाय करती है ?

इस प्रकार पाठक वाक्य बना सकते हैं। अब उपसर्गोंका थोडासा परिचय करते हैं—

उपसर्ग।

धातु अर्थात् क्रियाके पूर्व लगकर क्रियाओंका अर्थ बदलनेवाले उपसर्ग होते हैं। प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दस्; दुर्, वि, आ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत, अभि, प्रति, परि, उप, ये बाईस उपसर्ग हैं। इनके अर्थ ये हैं—

१ प्र = अधिकता, उत्कर्ष। २ परा = उलटा। ३ अप = दूरता,

वियोग । ४ सम् = एक होना । ५ अनु = अनुकूल, अनुसरण । ६ अव=नीचे करना । ७ निस् = हीनता । ८ निर् = हीनता । ९ दुस् = दुष्टता । १० दुर् = दुर्गति । ११ वि = विशेष, विरोध, भिन्नता । १२ आ = इधर । १३ नि = नीचे करना । १४ अधि = ऊपर । १५ अपि = आगे । १६ अति = अतिशय । १७ सु = उत्तम । १८ उत् = ऊंचा, ऊपर । १९ अभि = सम्मुख । २० प्रति = लौटना, उलटा होना । २१ परि = सर्वत्र । २२ उप = समीप, अधिक ॥

इतने अर्थ इससे भी बहुत अधिक होते हैं । परंतु इतने अर्थ ध्यानमें धरनेसे पाठकोंका कार्य चल सकता है । अब धातुओंका अर्थ इनके लगनेसे किस ढंगसे बदलता है यह देखिये—

भू = होना । (भूत- बना हुआ) इसके रूप देखिये—

प्रभू = बढना । (प्रभाव--जन्म, शक्ति । प्रभाव-प्रभाव, शक्ति । प्रभु = मालिक)

पराभू = पराभव करना । (पराभव--अपजय)

अपभू = दूर रहना । (अपभूति--पराजय, नाश)

संभू = एक होना, जन्म लेना । (संभव--उत्पत्ति । संभूति--एकता, उत्पत्ति)

अनुभू = अनुभव करना । (अनुभव-अनुभव)

विभू = वैभवयुक्त होना (विभव--धन, ऐश्वर्य)

आभू = उपस्थित होना (आभूति—शक्ति, व्यापकता)

अति भू = सबसे अधिक बढना । (अतिभवनं-सबसे बडा होना)

उद्भू = उत्पन्न होना । (उद्भव—उत्पत्ति)

अभिभू = पराभव करना । (अभिभव—पराभव)

परिभू = पराभव करना । (परिभव—पराभव, अपमान)

" भू " धातुके पीछे अन्य उपसर्ग प्रायः नहीं लगते हैं, उनके रूप

अन्यान्य धातुओंके साथ पाठक देख सकते हैं। इतने उदाहरणों से ही पाठक अनुभव कर सकते हैं कि एक ही धातुके अर्थ विविध उपसर्गोंके लग जानेके कारण किस प्रकार विविध होते हैं। अब इनका उपयोग देखिये—

१ सः पुरुषः विचिकित्सति— वह पुरुष विशेष शंका करता है।
(कित्—चिकित्सति। वि कित्—विचिकित्सति।)
२ ते सर्वे तत्र संक्रीडन्ति— वे सब वहां उत्तम खेलते हैं।
३ बालकाः तत्र संक्रन्दन्ति—बालक वहां रोते हैं।
४ त्वं किमर्थं एवं आक्रोशसि— तू क्यों ऐसा आक्रोश करता है?
५ नारदः नारायणं अभ्यर्चति— नारद नारायणकी पूजा करता है।

इस रीतिसे धातुके पूर्व उपसर्ग लगकर रूप बनते हैं। और वे विविध अर्थोंका प्रकाश करते हैं। इस रीतिसे एक छोटेसे धातुके अनंत शब्द संस्कृतमें बनते हैं। यदि पाठक इसका विचार करेंगे तो यह प्रक्रिया उनके समझमें अतिशीघ्र आ सकती है। क्योंकि उपसर्गयुक्त शब्द भाषामें भी प्रचलित हैं, इसलिये उनके अर्थोंकी कल्पना की जा सकती है।

पाठ ३

भूतकाल (लङ्)

जो भूतकाल आजका समय नहीं बताता उस (अनद्यतन) भूतके लिए ' लङ् ' नामक भूतकालके रूप प्रयुक्त होते हैं। ' भू ' धातुके इस भूत कालके रूप ऐसे होते हैं—

अनद्यतनभूते लङ्।

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

१ तत्र ह्यः किं अभवत्? = वहां कल क्या हुआ?
२ तत्र ह्यः किमपि न अभवत् = वहां कल कुछ भी नहीं हुआ।

३ वे सर्वे वीराः शत्रून् पराभवन् = उन सब वीरोंने शत्रुओंका पराभव किया।

४ यदा स उद्भवत् तदा त्वं कुत्र अभवः = जब उसकी उत्पत्ति हुई तब तू कहां था?

यहां पाठक स्मरण रखें कि भूतकालके रूपके पीछे ही पूर्वोक्त उपसर्ग लगते हैं जैसा—

परा- अभवत्-पराभवत् (पराभव किया)
वि- अभवत्-व्यभवत् (वैभवयुक्त हुआ)
सं-- अभवत् - समभवत् (उत्पन्न हुआ)

भाषामें उपसर्गका क्रियाके साथ संधि अवश्य हुआ करता है। वेदमें प्रायः उपसर्ग अलग लिखा जाता है। अब कुछ धातुओंका अध्ययन कीजिए। तीसरा रूप यहां इसी भूतकालका दिया है—

प्रथमगण परस्मैपदी धातु।

खाद् = (भक्षण करना) = खादति, खादिष्यति, अखादत्
गद् = (बोलना) = गदति, गदिष्यति, अगदत्
गम् = (जाना) = गच्छति, गमिष्यति, अगच्छत्
गर्ज् = (गर्जना करना) = गर्जति, गर्जिष्यति, अगर्जत्
गर्व् = (घमंड करना) = गर्वति, गर्विष्यति, अगर्वत्
गल् = (खाना, चूना) = गलति, गलिष्यति, अगलत्
गुप् = (रक्षण करना) = गोपायति, गोपायिष्यति, अगोपायत्
गै = (गाना, कहना) = गायति, गास्यति, अगायत्
ग्रथ् = (बंधन करना, संदर्भ जोडना,) = ग्रंथति, ग्रंथिष्यति, अग्रंथत्
घुष् = (घोषणा करना) = घोषति, घोषिष्यति, अघोषत्।
घृष् = (घर्षण करना) = घर्षति, घर्षिष्यति, अघर्षत्

चर् = (चलना) = चरति, चरिष्यति, अचरत्
चर्च् = (विवाद करना) = चर्चति, चर्चिष्यति, अचर्चत्
चर्व् = (चबाना) = चर्वति, चर्विष्यति, अचर्वत्
चल् (चलना) = चलति, चलिष्यति, अचलत्
चित् = (जानना) = चेतति, चेतिष्यति, अचेतत्
चिंत् = (चिंतन करना) = चिंतति, चिंतिष्यति, अचिंतत्
चुंब् = (चुंबन करना) = चुंबति, चुंबिष्यति, अचुंबत्
चूष् = (चूसना, पीना) = चूषति, चूषिष्यति, अचुषत्
छद् = (आच्छादन करना) = छदति, छदिष्यति, अच्छदत्
जप् = (जाप करना) जपति, जपिष्यति, अजपत्
जम् = (खाना) = जमति, जमिष्यति, अजमत्
जल्प् = (बोलना) = जल्पति, जल्पिष्यति, अजल्पत्

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ स पुरुषः फलं खादति । अहं मोदकं नैव खादिष्यामि । त्वं फलानि कदा अखादः ? ते सर्वे मानवाः फलानि समखादन् ।

२ तत्र यः गदति स एव स मनुष्यः। त्वं तेन सह किं अगदः ? सर्वे परस्परं समगदन् । यथा स गदति तथा युवां गदिष्यथः किम् ?

३ आकाशे मेघः गर्जति । यथा स गर्जिष्यति तथा कः गर्जितुं समर्थः भवति ?

४ रामः लक्ष्मणेन सह समगच्छत् । त्वं केन सह तत्र अगच्छः ? यथा रावणः अगर्वत् तथा न रामः ।

५ त्वं इदानीं किं घोषसि ? यदा सः तत्र एतत् घोषिष्यति तदा त्वं किं करिष्यसि ? स पुरुषः तत्र तदा किं अघोषत् ?

६ त्वं कुत्र चलसि ? सः किं न संचलति ? त्वं तं किमर्थं अनुचरसि ? यदा स अचलत् तदा त्वं किं न अचलः ।

७ त्वं इदानीं किं चिंतासि ? स तदा किं चिन्तिष्याति ? अहं किं आचिन्तम् । ते बालकाः किमपि न आचिंतन् ।

८ त्वं किं जपसि ? त्वं तं मन्त्रं कदा जपिष्यसि ? यदा त्वं अजपः तदा तेन किं कृतम् ?

९ अहं इदानीं जमामि । स नैव इदानीं जमिष्यति । त्वं कदा अजमः । तौ तत्र श्वः जमिष्यतः । ते सर्वे तत्रैव जमिष्यन्ति ।

भाषा-वाक्य ।

१ वह पुरुष फल खाता है । मैं लड्डु नहीं खाऊंगा । तूने फल कब खाया ? वे सब मनुष्य फल खाते रहे ।

२ वहां जो बोलता है वही वह मनुष्य है । तू उसके साथ क्या बोला ? वे परस्पर बोलते हैं । जैसा वह बोलता है वैसे तुम (दोनों) बोलोगे क्या ?

३ आकाशमें मेघ गरजता है । जैसा वह गरजेगा वैसा कौन गरजनेमें समर्थ होता है ?

४ राम लक्ष्मणके साथ गया । तू किसके साथ वहां गया ? जैसा रावण गर्व करता रहा वैसा नहीं राम (ने किया) ।

५ तू अब क्या घोषणा करता है ? जब वह वहां यह घोषित करेगा तब क्या करेगा ? इस पुरुषने वहां तब क्या घोषणा की ?

६ तू कहां चलता है ? वह क्यों नहीं चलता ? तू उसके क्यों पीछे चलता है ? जब वह चला तब तू क्यों नहीं चला ?

७ तू अब क्या चिंतता है ? वह तब क्या चिंतन करेगा ? मैंने किसका चिंतन किया ? वे बालक कुछ भी नहीं चिंता करते ।

८ तू क्या जपता है ? तू उस मंत्रको कब जपेगा ? जब तूने जप किया, तब उसने क्या किया ?

९ मैं अब खाता हूं ; वह नहीं अब खावेगा । तूने कब खाया ?

वे (दो) वहां कल भोजन करेंगे। वे सब वहां ही भोजन करेंगे॥

प्रथमगण परस्मैपदके धातु।

जि = (जय करना) = जयति, जेष्यति, अजयत्
जॄ = (जीर्ण होना) = जरति, जरिष्यति, अजरत्
ज्वर् = (ज्वर होना) = ज्वरति, ज्वरिष्यति, अज्वरत्
ज्वल् = (जलना) = ज्वलति, ज्वालिष्यति, अज्वलत्
तक्ष् = (छोटा बनाना) = तक्षति, तक्षिष्यति, अतक्षत्
तप् = (तपना) = तपति, तपिष्यति, अतपत्
तर्ज् = (निंदा करना) = तर्जति, तर्जिष्यति, अतर्जत्
तुड् = (तोडना) = तोडति, तोडिष्यति, अतोडत्
तॄ = (तैरना) = तरति, तरिष्यति, अतरत्
तेज् = (तेज करना) = तेजति, तेजिष्यति, अतेजत्
त्यज् = (त्याग करना) = त्यजति, त्यक्ष्यति, अत्यजत्
दल् = (मोडना) = दलति, दलिष्यति, अदलत्
दंश् = (काटना) = दशति, दंक्ष्यति, अदशत्
दंस् = (काटना) = दंसति, दंसिष्यति, अदंसत्
दह् = (दहन करना) दहति, धक्ष्यति, अदहत्
दा = (देना) = यच्छति, दास्यति, अयच्छत्
दृश् = (देखना) = पश्यति, द्रक्ष्यति, अपश्यत्
दृंह् = (बढाना) = दृंहति, दृंहिष्यति, अदृंहत्
दृ = (डरना) = दरति, दरिष्यति, अदरत्
द्रु = (जाना) = द्रवति, द्रोष्यति, अद्रवत्
ध्मा = (फूंकना, बांसरी बजाना) = धमति, ध्मास्यति, अधमत्
ध्यै = (विचार करना) = ध्यायति, ध्यास्यति, अध्यायत्
ध्वन् = (शब्द करना) = ध्वनति, ध्वनिष्यति, अध्वनत्

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ रामः तत्र जयति । त्वं तस्मिन् युद्धे जेष्यति वा न ? अर्जुनः युद्धे कथं अजयत् ? कर्णः किमर्थं न अजयत् ?

२ सर्वे प्राणिनः जरन्ति । योगी एव योगबलेन न जरति । कथं योगी न जरति इति त्वं जानासि किम् ?

३ तत्र अग्निः ज्वलति । अग्निः इदानीं न तत्र ज्वलति । अग्निः कदा तत्र अज्वलत् ?

४ त्वष्टा काष्ठानि तक्षति । त्वं काष्ठं तक्षिष्यसि किम् ? स केन शस्त्रेण तत्काष्ठं अतक्षत् ?

५ विश्वामित्रः तस्मिन् महारण्ये तपः अतपत् । त्वं कथं तत्र तपः तपसि ? अहं अपि तस्मिन् स्थाने तपिष्यामि ।

६ अहं नदीं तरिष्यामि इदानीम् । यूयं कथं न तरिष्यथ ? सर्वेऽपि तत्रैव तरन्ति । अहं परश्वः नदीं अतरम् ।

७ त्वं धनं किं त्यजसि ? सः राष्ट्रं ऐश्वर्यं वा कदापि नैव त्यक्ष्यति । सः सर्वं अपि धनं अत्यजत् ।

८ सर्पः नरं दशति । सर्पौ नरान् दशतः । सर्पाः मनुष्यान् दशन्ति । नागाः कथं तं दक्ष्यन्ति ?

९ अग्निः सर्वं काष्ठजातं दहति । प्रलयाग्निः सर्वं जगत् प्रलयकाले धक्ष्यति । त्वं तं अग्निना कथं अदहः ?

१० यथा सः पश्यति तथा एव अहं पश्यामि । राजा दुष्टं मानवं नैव इदानीं द्रक्ष्यति ।

११ पुरोहितः वेणुधमन्या अग्निं धमति । त्वं कथं अग्निं धमास्यसि ? सः तदा अग्निं अधमत् ।

भाषा-वाक्य

१ राम वहां जय करता है। तू उस युद्धमें जितेगा वा नही ? अर्जुनने युद्धमें कैसा जय किया ? कर्ण क्यों नहीं जीता ?

२ सब प्राणि जीर्ण होते हैं। योगी ही योगबलसे जीर्ण नहीं होता। कैसा योगी नहीं जीर्ण होता यह तू जानता है क्या ?

३ वहां अग्नि जलता है। अग्नि अब नहीं वहां जलता। अग्नि कब वहां जला ?

४ तर्खाण लकडियां बनाता है। तूं लकडीको छोटा बनायेगा क्या ? उसने किस शस्त्रसे उस लकडीको बनाया ?

५ विश्वामित्रने उस महा अरण्यमें तप तपा। तू कैसा वहां तप तपता है ? मैं भी इस स्थानमें तप करूंगा।

६ मैं नदीको तैर जाऊंगा अब। तुम (सब) कैसे नहीं तैरोंगे। सब ही वहां ही तैरते हैं। मैं परसूं नदीको यहां ही तैरा था।

७ तू धन क्यों दान देता है ? वह राष्ट्र और ऐश्वर्यको कदापि नहीं छोडेगा। उसने सभी धन दान दिया।

८ सांप मनुष्यको काटता है। (दो) सांप मनुष्योंको काटते हैं। (बहुत) सांप (बहुत) मनुष्योंको काटते हैं। नाग (बहुत) कैसे उसको काटेंगे।

९ अग्नि सब लकडियोंको जलाता है। प्रलयाग्नि सब जगत्को प्रलय-कालमें जलावेगा। तू उसे अग्निद्वारा कैसा जलाया।

१० जैसा वह देखता है, वैसाही मैं देखता हूं। राजा दुष्ट मनुष्यको नहीं अब देखेगा।

११ पुरोहित बांसकी नलीसे अग्निको फूंकता (जगाता) है। तू कैसे अग्निको फूंकेगा (जगायेगा) ? उसने उस समय अग्निको जगाया।

पाठ ४

आज्ञार्थ और विध्यर्थ ।

आज्ञा करना, सत्कार करना, प्रश्न पूछना, प्रार्थना करना, आशीर्वाद देना आदिका अर्थ व्यक्त करनेके लिये 'लोट्' के रूप होते हैं। 'भू' धातुके इसके रूप निम्न प्रकार होते हैं।

आज्ञार्थके रूप (लोट्)

	एक०	द्वि०	बहु०
१	भवतु, भवतात्	भवताम्	भवन्तु
२	भव ,,	भवतम्	भवत
३	भवानि	भवाव	भवाम

विध्यर्थके रूप (लिङ्)

पूर्वोक्त अर्थोंमें ही इस 'लिङ्' के भी रूपोंका उपयोग होता है। इसके रूप इस प्रकार बनते हैं-

	एक०	द्वि०	बहु०
१	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
२	भवेः	भवेतम्	भवेत
३	भवेयम्	भवेव	भवेम

इसके वाक्य ।

१ त्वं भव = तू हो, तू बन ।
२ सः भवतु = वह होवे, वह बने ।
३ अहं भवानि = मैं होऊं
४ सः भवेत् = वह होवे

५ त्वं भवेः = तू हो
६ अहं भव्वेयम् = मैं होऊं

इस प्रकार इनका उपयोग है। अब जो धातु दिये जाते हैं, इनमें इनके रूप भी साथ दिये जायंगे—

प्रथमगण परस्मैपदके धातु।

नट् = (नाचना) = नटति, नटिष्यति अनटत्, नटतु, नटेत्
नद् = (अस्पष्ट शब्द करना) = नदति, नदिष्यति, अनदत् नदतु, नदेत्
नंद् = (आनंद करना) = नंदति, नंदिष्यति, अनंदत्, नंदतु, नंदेत्
नम् = (नम्र होना) = नमति, नंस्यति, अनमत्, नमतु, नमेत्
नर्द् =(जोरसे पुकारना) = नर्दति, नर्दिष्यति, अनर्दत्, नर्दतु, नर्देत्
निंद् = (निंदना) निंदति, निंदिष्यति, अनिंदत्, निंदतु, निंदेत्
पठ् = (पढना) पठति, पठिष्यति, अपठत्, पठतु, पठेत्
पत् = (गिरना) पतति, पतिष्यति, अपतत्, पततु, पतेत्
पा = (पीना) = पिबति, पास्यति, अपिबत्, पिबतु, पिबेत्
पूष् = (बढना) = पूषति, पूषिष्यति, अपूषत्, पूषतु, पूषेत्
फल् = (फलना) = फलति, फलिष्यति, अफलत्, फलतु, फलेत्
बुध् = (जानना) = बोधति, बोधिष्यति, अबोधत्, बोधतु, बोधेत्
बृंह् = (बढना) = बृंहति, बृंहिष्यति, अबृंहत्, बृंहतु, बृंहेत्
भण् = (बोलना) = भणति, भणिष्यति, अभणत्, भणतु, भणेत्
भू = (होना) = भवति, भविष्यति, अभवत्, भवतु, भवेत्
भूष् = (भूषित करना) = भूषति, भूषिष्यति, अभूषत्, भूषतु, भूषेत्
मंड् =(भूषित करना) = मंडति, मण्डिष्यति, अमण्डत्, मण्डतु, मंडेत्
मंथ् = (हिलाना) = मंथति, मंथिष्यति, अमंथत्, मंथतु, मंथेत्

मार्ग = (ढूंढना) मार्गति, मार्गिष्यति, अमार्गत्, मार्गतु, मार्गेत्
मील् = (आंख बंद करना) = मीलति, मीलिष्यति, अमीलत्, मीलतु, मीलेत्
मुंड् = (मुंडन करना) मुंडति, मुण्डिष्यति, अमुंडत्, मुंडतु, मुण्डेत्
मूर्च्छ् = (मूर्छित होना) मूर्च्छति, मूर्च्छिष्यति, अमूर्च्छत्, मूर्च्छतु, मूर्च्छेत्
मूष् = (चोरना) = मूषति, मूषिष्यति, अमूषत्, मूषतु, मूषेत्
रक्ष् = (रक्षण करता)= रक्षति, रक्षिष्यति, अरक्षत्, रक्षतु, रक्षेत्
रट् = (रटना)= रटति, रटिष्यति, अरटत्, रटतु, रटेत्

संस्कृत-वाक्यानि।

१ नाटके नटः नटति। अहं अपि अद्य नटिष्यामि। स पुरुषः नटतु। सर्वे अपि अद्य नटन्तु। बालकाः तव आज्ञया नटन्तु। स नटेत्।

२ अहं अनेन कर्मणा नंदामि। अस्मिन् नगरे सर्वेऽपि मनुष्याः अद्य महोत्सवेन नंदिष्यन्ति। सर्वे बालकाः नंदन्तु।

३ स मां किमर्थं निन्दति। दुष्टाः मनुष्याः सर्वदा सर्वान् सत्पुरुषान्, निन्दन्ति। निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु। त्वां स कथं निंदेत्?

४ घनश्यामः तस्मिन् मार्गे पतति। तौ पुरुषौ कुत्रापि न पतिष्यतः। न जानामि अहं तत्र कथं अपतम्। स तत्र पततु।

५ अहं अद्यैव जलं पास्यामि। अहं ह्यः दुग्धं न अपिबम्। तव पुत्रः दुग्धं पिबतु। रुग्णः पुरुषः जलं न पिबेत्।

६ आम्रस्य वृक्षः अस्मिन् मासे फलति। तव सर्वेऽपि वृक्षाः आगामिनि मासे फलिष्यन्ति। मम वृक्षाः फलन्तु।

७ स मां बोधिष्यति। गुरुः मां अबोधत्। स सर्वान् बोधिष्यति। स बोधतु। कथं तं स बोधेत्?

८ स स्वं शरीरं भूषति। स नृपतिः तस्मिन् महोत्सवे सर्वं नगरं भूषिष्यति। सर्वे पुरुषाः स्वमंदिराणि भूषन्तु।

९ स्तेनः धनं मूषति। स तव द्रव्यं अमूषत्। किमर्थं स पुस्तकं मूषेत्? यदि स मूषितुं इच्छति तर्हि मूषतु।

१० राजपुरुषः नगरं रक्षति। द्वारपालाः मन्दिरं रक्षन्ति। तव भृत्यः तव उद्यानं किमर्थं न रक्षति?

भाषा-वाक्य।

१ नाटकमें नट नाचता है। मैं भी आज नाचूंगा। वह पुरुष नाचे। सब भी आज नाचें। बालक तेरी आज्ञासे नाचें। वह नाचे।

२ मैं इस कर्मसे आनन्दित होता हूं। उस नगरमें सब भी मनुष्य आज महोत्सवसे आनंदित हैं। सब बालक आनन्दित हों।

३ वह मुझे क्यों निंदता है? दुष्ट मनुष्य सदा सब सत्पुरुषोंकी निंदा करते हैं। निंदा करें नीतिज्ञ, अथवा स्तुति करें। तुम्हारी वह कैसी निंदा करे?

४ घनश्याम उस मार्गमें गिरता है। वे (दो) पुरुष कहां भी नहीं गिरते। नहीं जानता हूं मैं वहां कैसा गिर गया। वह वहां गिरे।

५ मैं आज ही जल पिऊंगा। मैंने कल दूध नहीं पिया। तेरा पुत्र दूध पिये। रोगी मनुष्य जल न पीवे।

६ आमका वृक्ष इस महिनेमें फलता है। तेरे सभी वृक्ष आगामि महिनेमें फलेंगे। मेरे वृक्ष फलें।

७ वह मुझे समझायेगा। गुरुने मुझे समझाया। वह सबको समझाता है। वह समझा देवे। कैसे उसे वह समझावे।

८ वह अपने शरीरको भूषित करता है। वह राजा उस महोत्सवमें सब नगर भूषित करता है। सब मनुष्य अपने घर सजावें।

९ चोर धन चोरता है। उसने तेरा धन चोरा। क्यों वह पुस्तक चोरे? यदि वह चोरनेकी इच्छा करता है तो चोरे।

१० राजाका नौकर नगरकी रक्षा करता है। द्वारपाल मंदिरकी रक्षा करता है। तेरा नौकर तेरे उद्यानकी रक्षा करता है।

धातुसाधित।

" तुं " प्रत्यय लगकर एक धातुसाधित बनता है। जिसका अर्थ ' के लिए ' जैसा है—

			मूलधातु	
१ गन्तुं	= जानेके लिए	... ...	गम्	(जाना)
२ कर्तुं	= करनेके ,,	... ...	कृ	(करना)
३ वक्तुं	= बोलनेके ,,	... ...	वच्	(बोलना)
४ पातुं	= पीनेके ,,	... ...	पा	(पीना)
५ खादितुं	= खानेके ,,	... ...	खाद्	(खाना)

इसी प्रकार अन्यान्य धातुओंके रूप बनते हैं। इससे बहुतसे वाक्य पाठक बना सकते हैं—

संस्कृत-वाक्यानि।

यदि त्वं जलं पातुं इच्छसि तर्हि तं कूपं प्रति गच्छ तत्र च जलं पिब। यदि सः नटितुं इच्छति तर्हि नाटकशालायां किं न गच्छति? अहं पठितुं एव अत्र आगतः न तु मोदकं खादितुम्। यदि सा स्त्री स्वशरीरं भूषितुं आभरणानि इच्छति तर्हि तस्यै तानि आभरणानि देहि। यदि त्वं स्तेनः भूत्वा धनं मूषितुं इच्छसि तर्हि तथा कुरु। तेन राजपुरुषः त्वां कारागृहे स्थापयिष्यति। केन कर्मणा त्वं जीवितुं इच्छसि? यदि त्वं अशुभेन कर्मणा एव जीवितुं इच्छसि तर्हि तथा करणं तुभ्यं न योग्यं अस्ति। यदि त्वं मंदिरं रक्षितुं अत्र आगतः तर्हि तेन शस्त्रेण सह अत्र आगच्छ मंदिरस्य रक्षां च कुरु। पूजनीयः गुरुः त्वां अनेन उपदेशेन बोधितुं इच्छति।

पाठ ५

पांचों लकारोंके रूप ।

पाठकोंकी सुबोधताके लिये पूर्वोक्त पांचों लकारोंके रूप यहां पुनः देते हैं ।

वद् (बोलना)
(प्रथमगण परस्मैपदी)
(१) लट् (वर्तमान-काल)

	एक०	द्वि०	बहु०
१ प्र०	वदति	वदतः	वदन्ति
२ म०	वदसि	वदथः	वदथ
३ उ०	वदामि	वदावः	वदामः

(२) लृट् (भविष्य-काल)

१ प्र०	वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति
२ म०	वदिष्यसि	वदिष्यथः	वदिष्यथ
३ उ०	वदिष्यामि	वदिष्यावः	वदिष्यामः

(३) लङ (अनद्यतन-भूत)

१ प्र०	अवदत्	अवदताम्	अवदन्
२ म०	अवदः	अवदतम्	अवदत
३ उ०	अवदम्	अवदाव	अवदाम

(४) लोट् (आज्ञार्थ)

१ प्र०	वदतु, वदतात्	वदताम्	वदन्तु
२ म०	वद ,,	वदतम्	वदत
३ उ०	वदानि	वदाव	वदाम

(५) लिङ् (विध्यर्थ)

१ प्र०	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः
२ म०	वदेः	वदेतम्	वदेत
३ उ०	वदेयम्	वदेव	वदेम

इसी प्रकार निम्नलिखित धातुओंके रूप पाठक बना सकते हैं—

प्रथमगण परस्मैपदी धातु ।

रण् – (शब्द करना) रणति, रणिष्यति, अरणत्, रणतु, रणेत्, रणितुम् ।
रुह् – (उगना) रोहति, रोक्ष्यति, अरोहत्, रोहतु, रोहेत् रोढुंम् ।
लप् –(बोलना) लपति, लपिष्यति, अलपत्, लपतु, लपेत्, लपितुम् ।
लुभ् – (लोभ करना) लोभति, लोभिष्यति, अलोभत्, लोभतु, लोभेत्, लोभितुम्, लोब्धुम् ।
वद् – (बोलना) वदति, वदिष्यति, अवदत्, वदतु, वदेत्, वदितुम् ।
वम् –(वमन करना) वमति, वमिष्यति, अवमत्, वमतु, वमेत्, वमितुम् ।
वस् – (रहना) वसति, वत्स्यति, अवसत्, वसतु, वसेत्, वस्तुम् ।
वृध् – (बढना) वर्धति, वर्धिष्यति, अवर्धत्, वर्धतु, वर्धेत्, वर्धितुम् ।
व्रज् – (जाना) व्रजति, व्रजिष्यति, अव्रजत्, व्रजतु, व्रजेत्, व्रजितुम् ।
शंस् – (स्तुति करना) शंसति, शंसिष्यति, अशंसत्, शंसतु, शंसेत्, शंसितुम् ।
शुन्ध् – (स्वच्छ करना) शुन्धति, शुन्धिष्यति, अशुन्धत्, शुन्धतु, शुन्धेत्, शुन्धितुम् ।
शुभ् – (प्रकाशयुक्त होना) शोभति, शोभिष्यति, अशोभत्, शोभतु, शोभेत्, शोभितुम् ।
श्लिष् – (आलिंगन करना) श्लेषति, श्लेक्ष्यति, अश्लिषत्, श्लेषतु, श्लेषेत्, श्लेष्टुम् ।
सह् – (सहना) सहति, सहिष्यति, असहत्, सहतु, सहेत्, सहितुम्, सोढुम् ।

सृप् – (भूमिके साथ चलना) सर्पति, सप्स्यति, असर्पत्, सर्पतु, सर्पेत्,
सर्प्तुं, स्रप्तुम्।

स्खल् – (ठोकर लगना) स्खलति, स्खलिष्यति, अस्खलत्, स्खलतु,
स्खलेत्, स्खलितुम्।

स्तन् – (गर्जना) स्तनति, स्तनिष्यति, अस्तनत्, स्तनतु, स्तनेत्, स्तनितुम्।

स्था – (ठहरना) तिष्ठति, स्थास्यति, अतिष्ठत्, तिष्ठतु, तिष्ठेत्, स्थातुम्।

स्फुट् – (टूटना) स्फोटति, स्फोटिष्यति, अस्फोटत्, स्फोटतु, स्फोटेत्,
स्फोटितुम्।

स्मृ – (स्मरण करना) स्मरति, स्मरिष्यति, अस्मरत्, स्मरतु, स्मरेत्
स्मर्तुम्।

स्रु – (चूना) स्रवति, स्रोष्यति, अस्रवत्, स्रवतु, स्रवेत्, स्रोतुम्।

हल् – (हल चलाना) हलति, हलिष्यति, अहलत्, हलतु, हलेत्,
हलितुम्।

हिंस् – (हिंसा करना) हिंसति, हिंसिष्यति, अहिंसत्, हिंसतु, हिंसेत्,
हिंसितुम्।

हृ – (हरण करना) हरति, हरिष्यति, अहरत्, हरतु, हरेत्, हर्तुम्।

यहां "तुम्" प्रत्ययान्त रूप प्रत्येक धातुके अन्तमें दिये हैं उनको ध्यान-पूर्वक पाठक देखें—

संस्कृत-वाक्यानि।

१ स राजकुमारः अश्वं आरोहति। तत्र क्षेत्रे वृक्षः रोहति। कथं वीरः हस्तिनं आरोढुं शक्नोति? स पुरुषः अश्वं आरोहतु।

२ त्वं किं लपसि? स किं न आलपति? त्वं किमर्थं तथा आलपिष्यसि? यदि त्वं आलपितुं इच्छसि तर्हि तथा कुरु। स तथा कदापि न अलपत्।

३ तौ किमर्थं न वदतः। ते सर्वेऽपि बालाः तत्र वदिष्यन्ति। ते कदापि

न अवदन् । सा पुत्रिका तथा वदतु परन्तु त्वं न वद। यदि त्वं वादितुं इच्छसि तर्हि प्रथमं पुस्तकं पठ ।

४ स ज्वरति अतः वमति । न, इदानीं स न ज्वरति परन्तु वमति । तेन वमनाय कषायः पीतः तेन स तथा वमति ।

५ स तस्मिन् गृहे वसति । त्वं कुत्र वत्स्यसि ? यदि स वस्तुं इच्छति तर्हि तत्र वसतु ।

६ स सर्पति । त्वं तथा सप्स्यसि किम् ? अहं सप्तुं न इच्छामि । अतः तत्र इदानीं नैव आगमिष्यामि ।

७ अहं न स्मरामि यत् त्वया तदानीं तत्र उक्तम् । तत् त्वमपि स्मरसि किं ? वद । स स्मरतु तेन यत् उक्तम् ।

८ तत् पात्रं स्रवति, अतः तस्मात् पात्रात् सर्वं जलं बहिः आगतम् ।

९ अहं भूमिं न हलामि । तर्हि कः हलिष्यति ? मम भृत्यः हलिष्यति । कदा स तत्र हलितुं गमिष्यति ?

१० तस्मात् कूपात् जलं आहरति । अहं कदापि न आहरामि परंतु स एव सदा आहरति । कः आहर्तुं इच्छति ? यः आहर्तुं इच्छति स एव जलं आहरतु ।

भाषा-वाक्य ।

१ वह राजकुमार घोडेपर चढता है । उस खेतमें वृक्ष उगता है । कैसा वीर हाथीपर चढनेके लिये समर्थ है ? वह पुरुष घोडेपर चढे ।

२ तू क्या बोलता है ? वह क्यों नहीं बोलता ? तूं क्यों वैसा बोलेगा ? यदि तूं बोलनेकी इच्छा करता है, तो वैसा कर । वह वैसा कदापि नहीं बोला ।

३ वे (दो) क्यों नहीं बोलते ? वे सब ही बालक वहां बोलेंगे ? वे कदापि नहीं बोले । वह लडकी वैसा बोले, परंतु तू न बोल । यदि तू बोलनेकी इच्छा करता है तो पहिले पुस्तक पढ ।

४ वह ज्वरित है, इसलिये वमन करता है। नहीं, अब वह नही ज्वरित, परन्तु कय करता है उसने वमनके लिये कषाय पिया है उससे वह वैसा कय करता है।

५ वह उस घरमें रहता है। तू कहां रहेगा? यदि वह यहां रहना चाहता है, तो वहां रहे।

६ वह रेंगता है। तू वैसा रेंगेगा क्या? मैं रेंगना नहीं चाहता, इसलिए वहाँ अब नहीं आऊंगा।

७ मैं नहीं स्मरता हूं जो तूने तब वहां कहा। वह तू भी स्मरता है क्या? बोल। वह स्मरण करे उसने जो कहा।

८ वह बर्तन चूवा है, इसलिये उस पात्रसे सब जल बाहर आया।

९ मैं भूमिपर नहीं हल चलाता। तब कौन हल चलावेगा? मेरा नौकर हल चलावेगा। अब वह वहां हल चलानेके लिए जायेगा।

१० उस कूवेसे वह जल लाता है। मैं कदापि नहीं लाता, परन्तु वह ही सदा लाता है। कौन लाना चाहता है? जो लाना चाहता है, वही जल लावे।

धातुसाधित।

'त्वा' प्रत्यय लगकर एक प्रकारका धातुसाधित बनता है। जैसा—

गम् (जाना) = गत्वा (जाकर)
पठ् (पढना) = पठित्वा (पढकर)
स्मृ (स्मरना) = स्मृत्वा (स्मरणकर)
दृश् (देखना) = दृष्ट्वा (देखकर)
अट् (घूमना) = अटित्वा (घूमकर)
नंद् (आनंद करना) = नंदित्वा (आनंद करके)
हिंस् (हिंसा करना) = हिंसित्वा (हिंसा करके)

धातुके पीछे उपसर्ग रहनेसे इसी "त्वा" प्रत्ययके स्थानपर "य" प्रत्यय उसी अर्थमें होता है जैसा—

सं-गम् = संगम्य (मिलकरके)
प्र-पठ् = प्रपठ्य (विशेष पढकरके)
वि-स्मृ = विस्मृत्य (भूल करके)
सं-दृश् = संदृश्य (उत्तम देखभाल करके)
अधि-अट् = अध्यट्य (ऊपर घूमवाम करके)
वि-नंद् = विनंद्य (विशेष आनंद करके)
वि-हिंस् = विहिंस्य (विशेष हिंसा करके)

" त्वा " प्रत्यय के पूर्व कई धातुओंको " इ " लगती है और कईयोंको नहीं लगती। परंतु उपसर्गसे युक्त धातुओंको कभी " इ " लगतीही नहीं। इतना साधारण नियम पाठक अवश्य स्मरणमें रखें। अब इन रूपोंका उपयोग वाक्योंमें कर सकते हैं। देखिये-

संस्कृत--वाक्यानि।

१ त्वं तं ग्रामं गत्वा किं करिष्यसि? अहं तत्र गत्वा, गुरुं नत्वा, ईश्वरं च प्रणम्य, गुरोः सकाशात् काव्यं पठित्वा, मम मित्रं दृष्ट्वा, श्वः सायंकाले पुनः अत्रैव त्वत्समीपं आगमिष्यामि।

२ त्वं कदा भोजनं करिष्यसि? अहं अद्य सायंकाले शीतोदकेन स्नात्वा, संध्यां उपास्य, परमेश्वरस्य ध्यानं कृत्वा, स्तोत्राणि च पठित्वा, वेदं अधीत्य, गुरोः दर्शनं च कृत्वा, पुनः गृहं आगत्य, मित्रैः सह संलापं कृत्वा, हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य, पश्चात् एव भोजनं करिष्यामि।

भाषा-वाक्य।

१ तू उस गांवको जाकर क्या करेगा? मैं वहां जाकर, गुरुको नमस्कार कर, ईश्वरको प्रणाम कर, गुरुके पाससे काव्य पढकर, मेरे मित्रको देख, कल सायंकालमें फिर यहां ही तेरे पास आऊंगा।

२ तू कब भोजन करेगा ? मैं आज सायंकालमें शीत जलसे स्नान कर, संध्या उपासना कर, परमेश्वरका ध्यान कर, स्तोत्र पढ, वेद अध्ययन कर, गुरुका दर्शन और पादवंदन कर, फिर घर आ, मित्रोंके साथ वार्तालाप कर हाथ पांव धोकर फिर ही भोजन करूंगा ।

यहां पाठक देख सकते हैं कि पूर्वोक्त " त्वा " और " य " प्रत्ययके रूप बनानेका ज्ञान होनेके कारण बडे बडे वाक्य बनाना अति सुगम हुआ है । इसलिये पाठक इस प्रकार रूप बनाकर वाक्य बना सकते हैं ।

पाठ ६

शेष लकारोंके परस्मैपदी रूप ।

पांच लकारोंके रूप पाठकोंको अब आने लगे हैं । एक लकार केवल वेदमंत्रोंमें ही प्रयुक्त होता है, इसलिये इसका विचार यहां करनेकी जरूरत नहीं है । शेष चार लकारोंके रूप यहां बताना है-

(१) अनद्यतन-परोक्षभूते लिट् ।

अनद्यतन अर्थात् जो आज बना नहीं और परोक्ष अर्थात् अपने सामने नहीं हुआ इस प्रकारके भूतकालके लिये " लिट् " होता है । जैसे- " राम राजा हुआ था ।" अर्थात् आज नहीं हुआ और हमारे सामने भी नहीं हुआ । इसके वाक्य ऐसे हैं- " रामः राजा बभूव । रावणः नाम राक्षसानां अधिपतिः बभूव । " इ० इस लिट्के रूप निम्न प्रकार होते हैं—

	एक०	द्वि०	बहु०
१ प्र०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
२ म०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
३ उ०	बभूव	बभूविव	बभूविम

" भू " धातुके ये रूप हैं । इसमें पहिले अक्षरको दुहराना होता है, जैसा-" भू " का " भूभू " बनता है और पश्चात् " बभू " शेष रहकर आगे प्रत्यय लगते हैं । अब " रक्ष् " धातुके लिट्के रूप देखिये—

"रक्ष्" (लिट्के रूप)

१ प्र०	ररक्ष	ररक्षतुः	ररक्षुः
२ म०	ररक्षिथ	ररक्षथुः	ररक्ष
३ उ०	ररक्ष	ररक्षिव	ररक्षिम

" बुध् " धातुके लिट्के रूप ।

१ प्र०	बुबोध	बुबोधतुः	बुबोधुः
२ म०	बुबोधिथ	बुबोधथुः	बुबोध
३ उ०	बुबोध	बुबोधिव	बुबोधिम

इसी प्रकार अन्यान्य धातुओंके रूप होते हैं। पाठकोंके लाभार्थ यहां " लिट् " के कुछ धातुओंके रूप देते हैं—

धातु	लिट्के रूप
अट्	= आट, आटतुः
अर्घ्	= आनर्घ, आनर्घतुः
अर्च्	= आनर्च, आनृचतुः
अर्ह्	= आनर्ह, आनर्हतुः
कण्	= चकाण, चकणतुः
कित्	= चिकित्सांचकार, चिकित्सांचक्रतुः
कित्	= चिकेत, चिकेततुः
कुज्	= चुकोज, चुकोजतुः
कुंथ्	= चुकुन्थ, चुकुन्थतुः
कृष्	= चकर्ष, चकृषतुः
क्रंद्	= चक्रन्द, चक्रन्दतुः

धातु	लिट्के रूप
खाद्	= चखाद, चखदतुः
गद्	= जगाद, जगदतुः
गर्ज	= जगर्ज, जगर्जतुः
घुष्	= जुघोष, जुघोषतुः
घृष्	= जघर्ष, जघृषतुः
चर्	= चचार, चेरतुः
चित्	= चिचेत, चिचेततुः
जप्	= जजाप, जजपतुः
जल्प्	= जजल्प, जजल्पतुः
भूष्	= बुभूष, बुभूषतुः
वस्	= उवास, ऊषतुः

क्रम् = चक्राम, चक्रमतुः
क्रीड् = चिक्रीड, चिक्रीडतुः
क्षर् = चक्षार, चक्षरतुः
स्था = तस्थौ, तस्थतुः
स्मृ = सस्मार, सस्मरतुः
हिंस् = जिहिंस, जिहिंसतुः

पाठक इन रूपोंको देखकर इनके तथा अन्यान्य धातुओंके रूप बना सकते हैं। पूर्व बताये रूपोंके अनुसार पाठक इनके रूप बनाकर कागजपर लिखेंगे, तो उनको अधिक लाभ होगा।

(२) अनद्यतन भविष्यति लुट्।

अनद्यतन अर्थात् जो आजका नहीं उस भविष्यकालके लिये "लुट्" के रूप बनते हैं-

" भू " धातुके " लुट् " के रूप।

	एक०	द्वि०	बहु०
१ प्र०	भविता	भवितारौ	भवितारः
२ म०	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
३ उ०	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

" बुध् " धातुके " लुट् " के रूप।

१ प्र०	बोधिता	बोधितारौ	बोधितारः
२ म०	,, तासि	,, तास्थः	,, तास्थ
३ उ०	,, तास्मि	,, तास्वः	,, तास्मः

इस " लुट् " के रूप बनाना अतिसुगम है। जो प्रत्यय यहां बताये हैं, उनको धातुके साथ लगानेसे रूप बन सकते हैं। कई धातुओंके प्रत्यय के पूर्व " ई " लगती है और कईयोंको नहीं। इसका ज्ञान संस्कृत ग्रंथ पढनेसे स्वयं होगा। अब इस " लुट् " रूपोंके विषयमें अधिक लिखनेकी जरूरत नहीं है।

(३) भूते लुङ्।

साधारण भूतकालके प्रयोगके लिए इस " लुङ् " के रूप प्रयुक्त होते हैं—

"भू" धातुके "लुङ्" के रूप।

	एक०	द्वि०	बहु०
१ प्र०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
२ म०	अभूः	अभूतम्	अभूत
३ उ०	अभूवम्	अभूव	अभूम

इसके अन्यान्य धातुओंके रूप बनाना थोडा कठिन है, इसलिये इस विषयमें जो आवश्यक संकेत करने हैं आगे किये जायंगे।

(४) हेतुहेतुमद्भावाद्यर्थे भविष्यति लृङ्।

"ऐसा होगा तो ऐसा होगा" इस प्रकार एक दूसरेके साथ हेतुभाव बतानेके अर्थमें इस "लृङ्" के रूप बनते हैं—

"भू" धातुके "लृङ" के रूप।

	एक०	द्वि०	बहु०
१ प्र०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
२ म०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
३ उ०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

इसमें पाठक देखें कि आरम्भका "अ" कार और अंतिम प्रत्यय तो "अनद्यतन भूत-लङ्" के हैं और मध्यमें "भविष्यलृट्" का "स्य" लगा है। अर्थात् "लङ्" और "लृट्" का मिलाप इसमें इस प्रकार हुआ है। यदि इतनी बात पाठक समझ लेंगे तो वे इसके रूप सुगमताके साथ बना सकते हैं।

यहां पाठकोंको शेष चारों लकारोंके रूप बनानेकी विधि बताई गई। पहिले पांच लकारोंके रूप आ चुके हैं और यहां शेष चार लकारोंके साथ

परिचय हुआ है। इस प्रकार ९ लकारोंके साथ पाठक परिचित हुए हैं। दसवां लकार वेदमंत्रोंमेंही आता है, इसलिये उसका विचार इस समय करनेकी आवश्यकता नहीं है।

इन रूपोंके प्रयोग तथा इनका उपयोग आगे बताया जायगा। पाठकोंको सुबोधताके लिये यहां पुनः नौ लकारोंके रूप बताये जाते हैं—

वस् धातुके रूप।

१ (लट्) वसति, वसतः वसन्ति। वससि, वसथः, वसथ। वसामि, वसावः, वसामः॥

२ (लृट्) वत्स्यति, वत्स्यतः, वत्स्यन्ति। वत्स्यसि, वत्स्यथः, वत्स्यथ। वत्स्यामि, वत्स्यावः, वत्स्यामः॥

३ (लङ्) अवसत्, अवसताम्, अवसन्। अवसः, अवसतम्, अवसत। अवसम्, अवसाव, अवसाम॥

४ (लोट्) वसतु-वसतात्, वसताम्, वसन्तु। वस-वसतात्, वसतम्, वसत। वसानि, वसाव, वसाम॥

५ (लिङ्) वसेत्, वसेताम्, वसेयुः। वसेः, वसेतम्, वसेत। वसेयम् वसेव, वसेम॥

६ (लिट्) उवास, ऊषतुः, ऊषुः। उवसिथ, ऊषथुः, ऊष। उवास, ऊषिव, ऊषिम॥

७ (लुट्) वस्ता, वस्तारौ, वस्तारः। वस्तासि, वस्तास्थः, वस्तास्थ। वस्तास्मि, वस्तास्वः, वस्तास्मः॥

८ (लुङ्) अवात्सीत्, अवात्ताम्, अवात्सुः। अवात्सीः, अवात्तम्, अवात्त। अवात्सम्, अवात्स्व, अवात्स्म॥

९ (लृङ्) अवत्स्यत्, अवत्स्यताम्, अवत्स्यन्। अवत्स्यः, अवत्स्यतम् अवत्स्यत। अवत्स्यम्, अवत्स्याव, अवत्स्याम॥

✿

" वस् " धातुके रूप विशेष प्रकारसे कठिन हैं, अतः यहां दिये हैं। अन्य धातुओंके रूप पाठक पूर्वोक्त सूचनाओंके अनुसार बना सकते हैं।
यहां प्रथम गण परस्मैपदके धातुओंका प्रकरण समाप्त हुआ।

पाठ ७

इस पाठमें निम्नलिखित श्लोक पढिये- (म. भारत वन० अ० २५९)

वैशम्पायन उवाच।

वने निवसतां तेषां पांडवानां महात्मनाम्।
वर्षाण्येकादशाऽतीयुः कृच्छ्रेण भरतर्षभ ॥ १ ॥
फलमूलाशनास्ते हि सुखार्हा दुःखमुत्तमम्।
प्राप्तकालमनुध्यान्तः सेहिरे वरपूरुषाः ॥ २ ॥
युधिष्ठिरस्तु राजर्षिरात्मकर्मापराधजम्।
चिंतयन्स महाबाहुर्भ्रातॄणां दुःखमुत्तमम् ॥ ३ ॥
न सुष्वाप सुखं राजा हृदि शल्यैरिवार्पितैः।
दौरात्म्यमनुपश्यंस्तत्काले द्यूतोद्भवस्य हि ॥ ४ ॥

हे भरतर्षभ! हे भरतश्रेष्ठ! तेषां महात्मनां पांडवानां वने निवसतामेकादश वर्षाणि कृच्छ्रेण कष्टेन व्यतीयुः व्यतीतानि ॥ १ ॥ ते हि सुखार्हाः सुखाय योग्या अपि फलमूलाशनाः फलमूलभक्षकाः भूत्वा प्राप्तकालं प्राप्तसमयमनुध्यान्तो विचारयन्तो वरपूरुषाः श्रेष्ठमनुष्याः उत्तममत्यन्तं दुःखं सेहिरे ॥ २ ॥ महाबाहू राजर्षिर्युधिष्ठिरस्तु राजश्रेष्ठो धर्मराजस्तु आत्मकर्मापराधजं आत्मनः स्वस्य कर्मणः अपराधात् जनितं उत्पन्नं भ्रातॄणां बंधूनां उत्तमं दुःखं चिंतयन् ॥ ३ ॥ स राजा हृदि अर्पितैः शल्यैः इव द्यूतोद्भवस्य द्यूतजनितस्य तत् दौरात्म्यं काले अनुपश्यन् सुखं न सुष्वाप ॥ ४ ॥

शब्दार्थ- कृच्छ्र = कष्ट। सेहिरे = सहन किया। चिंतयन् = विचार करनेवाला। अर्पित = रखा हुआ। सुष्वाप = सोया। दौरात्म्यं = बुराई। शल्यं = शस्त्र, बाण। सुखं न सुष्वाप = सुखसे नहीं सोया॥

संस्मरन्परुषा वाचः सूतपुत्रस्य पांडवः ।
निःश्वासपरमो दीनो बिभ्रत्कोपविषं महत् ॥ ५ ॥
अर्जुनो यमजौ चोभौ द्रौपदी च यशस्विनी ।
स च भीमो महातेजाः सर्वेषामुत्तमो बली ॥ ६ ॥
युधिष्ठिरमुदीक्षन्तः सेहुर्दुःखमनुत्तमम् ।
अवशिष्टमल्पकालं मन्वानाः पुरुषर्षभाः ॥ ७ ॥
वपुरन्यदिवाऽकार्षुरुत्साहामर्षचेष्टितैः ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ ८ ॥
आजगाम महायोगी पांडवानवलोककः ।
तमागतमभिप्रेक्ष्य कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

सूतपुत्रस्य कर्णस्य परुषाः रूक्षाः वाचः शब्दाः संस्मरन् स्मरन् पांडवो धर्मराजो महत् कोपविषं क्रोधस्य विषं बिभ्रत् धारयन् निःश्वासपरमो निःश्वासयुक्तो दीनश्च अभवत् ॥५॥ अर्जुनः उभौ यमजौ नकुलसहदेवौ यशस्विनी द्रौपदी च सर्वेषामुत्तमो बली बलिष्ठो महातेजाः महातेजस्वी स भीमश्च ॥ ६ ॥ एते सर्वे पुरुषर्षभाः युधिष्ठिरमुदीक्षन्तो अल्पकालमवशिष्टं मन्वानाः विचारयन्तोऽनुत्तममत्यन्तं दुःखं सेहुः सेहिरे ॥७॥ उत्साहामर्षचेष्टितैः अन्यत् भिन्नं इव वपुः शरीरं अकार्षुः । अथ कस्यचित् कालस्य पश्चात् सत्यवतीसुतो ॥ ८ ॥ महायोगी पांडवान् अवलोकको द्रष्टुकामो व्यास आजगाम। कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः तं व्यासं आगतं अभिप्रेक्ष्य अवलोक्य महात्मानं व्यासं प्रत्युद्गम्य संमुखं गत्वा यथाविधि विधिं अनुसृत्य प्रत्यगृह्णात् प्रतिग्रहं कृतवान् ॥९॥

शब्दार्थ- परुष=कठोर । कोपविषं=क्रोधका जहर । निःश्वासपरमः = बडे सांस लेनेवाला । अनुत्तम = अत्यंत उत्तम । मन्वानः = माननेवाला । सेहुः = सहन किया । अमर्ष = सहन न करना । चेष्टित = चेष्टा । वपुः = शरीर । अवलोककः=देखनेकी इच्छावाला । आजगाम=आया । उदीक्षन् = देखनेवाला

प्रत्युद्गम्य महात्मानं प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ।
तमासीनमुपासीनः शुश्रूषुर्नियतेन्द्रियः ॥ १० ॥
तोषयन्प्रणिपातेन व्यासं पांडवनंदनः ।
तानवेक्ष्य कृशान्पौत्रान्वने वन्येन जीवतः ॥ ११ ॥
महर्षिरनुकंपार्थमब्रवीद् बाष्पगद्गदम् ।
युधिष्ठिर महाबाहो शृणु धर्मभृतां वर ॥ १२ ॥
नातप्ततपसो लोके प्राप्नुवन्ति महासुखम् ।
सुखदुःखे हि पुरुषः पर्यायेणोपसेवते ॥ १३ ॥
न ह्यनन्तं सुखं कश्चित्प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
प्रज्ञावांस्त्वेव पुरुषः संयुक्तः परया धिया ॥ १४ ॥
उदयास्तमनज्ञो हि न हृष्यति न शोचति ।
सुखमापतितं सेवेद् दुःखमापतितं वहेत् ॥ १५ ॥

व्यासं आसीनं उपविष्टं पांडवनंदनः पांडुपुत्रः युधिष्ठिरः नियतेन्द्रियः संयतेन्द्रियः उपासीनः समीपमेव उपस्थितः शुश्रूषुः सेवां कर्तुकामः प्राणिपातेन नमस्कारेण तोषयन् संतोषयन् । तान् पौत्रान् पुत्रस्य पुत्रान् वन्येन कंदमूलफलादिना जीवतः जीवनं कुर्वतः अतएव कृशान् दुर्बलान् अवेक्ष्य दृष्ट्वा ॥ ११ ॥ महर्षिः अनुकंपार्थं दयार्थं बाष्पगद्गदं बाष्पपूरितनेत्राभ्यां गद्गदितकंठेन च अब्रवीत् उक्तवान् । हे युधिष्ठिर ! हे महाबाहो ! हे धर्मभृतांवर ! शृणु ॥ १२ ॥ लोके अस्मिन् लोके अतप्ततपसः महासुखं न प्राप्नुवन्ति । हि पुरुषः सुखःदुखे पर्यायेण उपसेवते ॥ १३ ॥ हे पुरुषर्षभ ! कश्चित् हि अनंतं सुखं न प्राप्नोति ॥ १४ ॥ प्रज्ञावान् बुद्धिमान् एव पुरुष परया धिया संयुक्तः उदयास्तमनज्ञः । उदयं अस्तमनं अस्तं च जानाति इति उदयास्तमनज्ञः न हृष्यति न च शोचति, न शोकं करोति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—शुश्रूषुः = सेवा करनेकी इच्छा करनेवाला । अतप्ततपाः = जिसने तप नहीं किया । पर्याय = हेरफेर ॥

कालप्राप्तमुपासीत सस्यानामिव कर्षकः ।
तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ॥ १६ ॥
नासाध्यं तपसः किंचिदिति बुध्यस्व भारत ।
सत्यमार्जवमक्रोधः संविभागो दमः शमः ॥ १७ ॥
अनसूयाऽविहिंसा च शौचमिन्द्रियसंयमः ।
पावनानि महाराज नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥ १८ ॥
अधर्मरुचयो मूढा तिर्यग्गतिपरायणाः ।
कृच्छ्रां योनिमनुप्राप्ता न सुखं विन्दते जनाः ॥ १९ ॥

आपतितं प्राप्तं सुखं सेवेत्, आपतितं दुःखं वहेत् । कर्षकः कृषिकर्मकर्ता सस्यानां कालप्राप्तं फलं इव उपासीत ॥ १६ ॥ हि तपसः तपश्चरणात् परं श्रेष्ठं किंचित् अपि नास्ति । तपसा महत् फलं विंदते प्राप्नोति । हे भारत ! युधिष्ठिर ! तपसः असाध्यं किंचिदपि नास्ति इति बुध्यस्व जानीहि ॥ १७ ॥ सत्यं, आर्जवं = ऋजुत्वं = सरलत्वं, अक्रोधः = क्रोधराहित्यं, संविभागः= समविभागः, दमः = इंद्रियदमनं, शमः = मनसः शांतिः, अनसूया = असूयाराहित्यं, अविहिंसा = अहिंसा शौचं, इंद्रियसंयमः ॥ १८ ॥ हे महाराज ! पुण्यकर्मणां नराणां एतानि पावनानि कर्माणि सन्ति । अधर्मरुचयः मूढाः तिर्यग्गतिपरायणाः अधोगतिं प्रति गच्छन्तः, कृच्छ्रां कष्टपदां योनिं अनुप्राप्ताः जनाः सुखं न विंदते ॥ १९ ॥

पाठ ८

आत्मनेपद-धातु ।

प्रथम गणके परस्मैपदी धातुओंके साथ पाठकोंका परिचय हुआ है। अब प्रथम गणके आत्मनेपदके धातुओंके साथ परिचय कराना है। वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो 'परस्मै (दूसरेके लिये) पद' का अर्थ दूसरेका संबंध बतानेवाला और आत्मने "(अपने लिये) पद" का अर्थ अपने साथ संबंध बतानेवाला है। यह अर्थ बहुत प्राचीन कालमें था, परंतु इस समय यह भाव किसी भी रूपसे व्यक्त नहीं होता है। परंतु ये नाम रूढ हुए हैं। अस्तु।

प्रथम गणके आत्मनेपदके धातुओंके भी पूर्वोक्त दस 'लकार' के प्रत्ययोंसे रूप होते हैं, इसके उदाहरण देखिये—

'क्रंद् (रोना)' प्रथमगण आत्मनेपद।

(१) लट् (वर्तमान--काल)

	एक०	द्वि०	बहु०
१	क्रंदते	क्रंदेते	क्रन्दन्ते
२	क्रंदसे	क्रंदेथे	क्रंदध्वे
३	क्रंदे	क्रंदावहे	क्रंदामहे

(२) लृट् (भविष्य--काल)

	एक०	द्वि०	बहु०
१	क्रंदिष्यते	क्रंदिष्येते	क्रंदिष्यन्ते
२	क्रंदिष्यसे	क्रंदिष्येथे	क्रंदिष्यध्वे
३	क्रंदिष्ये	क्रंदिष्यावहे	क्रंदिष्यामहे

(३) लङ् (भूतकाल)

१ अक्रंदत	अक्रंदेताम्	अक्रन्दन्त
२ अक्रंदथाः	अक्रंदेथाम्	अक्रंदध्वम्
३ अक्रंदे	अक्रंदावहि	अक्रंदामहि

(४) लोट् (आज्ञार्थ)

१ क्रंदताम्	क्रंदेताम्	क्रन्दन्ताम्
२ क्रंदस्व	क्रंदेथाम्	क्रंदध्वम्
३ क्रंदै	क्रंदावहै	क्रंदामहै

लिङ् (विध्यर्थ)

१ क्रंदेत	क्रंदेयाताम्	क्रंदेरन्
२ क्रंदेथाः	क्रंदेयाथाम्	क्रंदेध्वम्
३ क्रंदेय	क्रंदेवहि	क्रंदेमहि

इसी प्रकार निम्नलिखित धातुओंके रूप होते हैं—

प्रथमगण आत्मनेपद-धातु।

अंक् (चिह्न करना)- अंकते, अंकिष्यते, आंकत, अंकताम्, अंकेत ।

कत्थ् (प्रशंसा करना)- कत्थते, कत्थिष्यते, अकत्थत, कत्थताम्, कत्थेत्।

कम् (इच्छा करना)- कामयते, कामयिष्यते, अकामयत, कामयताम्, कामयेत ।

काश् (प्रकाशना)-काशते, काशिष्यते, अकाशत, काशताम्, काशेत ।

क्रंद् (रोना)-क्रंदते, क्रन्दिष्यते, अक्रंदत, क्रन्दताम्, क्रंदेत ।

क्षम् (सहना)-क्षमते, क्षमिष्यते, क्षंस्यते, अक्षमत, क्षमताम्, क्षमेत ।

खंड् (तोडना)-खंडते, खांडिष्यते, अखण्डत, खंडताम्, खण्डेत ।

गर्ह् (निंदा करना)-गर्हते, गर्हिष्यते, अगर्हत, गर्हताम्, गर्हेत ।

गाह् (स्नान करना) गाहते, गाहिष्यते, अगाहत, गाहताम्, गाहेत ।
ग्रस् (खाना) ग्रसते, ग्रसिष्यते, अग्रसत, ग्रसताम्, ग्रसेत ।
चंड् (क्रोध करना) चंडते, चंडिष्यते, अचण्डत, चण्डताम्, चण्डेत ।
चेष्ट् (चेष्टा करना) चेष्टते, चेष्टिष्यते, अचेष्टत, चेष्टताम्, चेष्टेत ।

डी (उडना) डयते, डयिष्यते, अडयत, डयताम् डयेत ।
त्रप्(लज्जित होना) त्रपते, त्रपिष्यते, त्रप्स्यते, अत्रपत, त्रपताम् त्रपेत।
त्रै (रक्षा करना) त्रायते, त्रास्यते, अत्रायत, त्रायताम्, त्रायेत ।
त्वर् (शीघ्रता करना) त्वरते, त्वरिष्यते, अत्वरत, त्वरताम्, त्वरेत ।
दध् (धारण करना) दधते, दधिष्यते, अदधत, दधताम्, दधेत ।
दय् (दया करना) दयते, दयिष्यते, अदयत, दयताम्, दयेत ।
देव् (खेलना) देवते, देविष्यते, अदेवत, देवताम्, देवेत ।
ध्वंस् (नष्ट होना) ध्वंसते, ध्वंसिष्यसे, अध्वंसत, ध्वसंताम्, ध्वंसेत ।
पण् (व्योपार करना) पणते, पणिष्यते, अपणत, पणताम्, पणेत ।
पू (पवित्र करना) पवते, पविष्यते, अपवत, पवताम्, पवेत ।
प्रथ् (प्रख्यात होना) प्रथते, प्रथिष्यते, अप्रथत, प्रथताम्, प्रथेत ।

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ अहं मम वस्त्रं अंके । त्वं किं तत्र अंकसे ? तौ द्वौ पुरुषौ अत्र न अंकेते । स कदा अंकिष्यते ? वयं नैव अंकिष्यामहे ।

२ अहं कत्थिष्ये । आवां कत्थिष्यावहे । वयं कत्थिष्यामहे । स तुभ्यं पुराणकथां कत्थताम् । ते सर्वे कथां अकत्थन्त ।

३ अहं ह्यः न अक्रंदे । यूयं एव तत्र ह्यः अक्रंदध्वम् । यदि स बालः क्रंदितु इच्छति, तर्हि स सुखं क्रन्दताम् ॥

४ स योगी शीतोष्णे क्षमते । अहं तव अपराधं नैव क्षंस्ये । सर्वे वयं क्षंस्यामहे । वयं तं क्षमामहे । कः न क्षमते ?

५ स एवं किमर्थं तं गर्हते ? यथा स तं गर्हते तथा त्वं तं न गर्हस्व । स तं सदैव गर्हिष्यते । कः तं अगर्हत ?

६ अहं तडागस्य शीते जले गाहे । त्वं किं न गाहसे ? ते सर्वे कदा अगाहन्त ? त्वं किं न अगाहथाः ? अहं तत्र ह्यः अगाहे ॥

७ कः तत्र एवं चेष्टते ? स एवं किमर्थं चेष्टते ? अहं तथा नैव चेष्टे, यथा स चेष्टते । अत्र कः एवं अचेष्टत ?

८ पक्षिणः आकाशे डयन्ते। विमानं आकाशे उड्डयते । त्वं कथं उड्डयिष्यसे ? अहं अधुना उड्डये । त्वं न उड्डयसे ।

९ क्षतात् त्रायते यः स क्षत्रियः भवति । स क्षत्रियः भूत्वा कथं प्रजा न त्रायते ? कथं स तान् न अत्रायत ?

१० त्वं किं न पणसे ? वयं सर्वे अपि अस्मिन् देशे पणामहे । किमर्थं स तस्मिन् स्थाने न पणते ? कः तत्र अपणत ?

११ त्वं इदानीं किमर्थं एवं त्वरसे ? सर्वे अपि ते त्वरन्ते । यदि वयं न एवं त्वरामहे, तर्हि कथं तत्र गमिष्यामः ?

भाषा–वाक्य ।

१ मैं अपने वस्त्रपर चिह्न करता हूं । तू क्यों वहां चिह्न करता है ? वे दो पुरुष वहां नहीं चिह्न करते । वह कब चिह्न करेगा ? हम नहीं चिह्न करेंगे ।

२ मैं प्रशंसा करूंगा । हम (दोनों) प्रशंसा करेंगे । हम सब नहीं प्रशंसा करेंगे । वह तुम्हारे लिये पुरानी कथा कहेगा । वे सब कथा कहेंगे ।

३ मैं कल नहीं रोया । तुम ही वहां कल रोये । यदि वह बालक रोना चाहता है, तो वह सुखसे रोवे ।

४ वह योगी शीतोष्ण सहता है । मैं तेरा अपराध नहीं सहूंगा । सब हम सहन करेंगे । हम उसको सहेंगे । कौन नहीं सहता ?

५ वही क्यों उसकी निंदा करता है ? जैसा वह उसको निंदता है, वैसा तूं उसको न निंद। वह उसकी सदा निन्दा करेगा। कौन उसको निंदता रहा ?

६ म तालावके शीत जलमें स्नान करता हूं। तू क्यों नहीं स्नान करता ? उन सबने कब स्नान किया ? तूने क्यों नहीं स्नान किया ? मैंने वहां कल स्नान किया।

७ कौन वहां ऐसी चेष्टा करता है ? वह ऐसी क्यों चेष्टा करता है ? मैं वैसी नहीं चेष्टा करता हूं, जैसी वह चेष्टा करता है। यहां किसने ऐसी चेष्टा की ?

८ पक्षी आकाशमें उडते हैं। विमान आकाशमें उडता है। तूं कैसा उडेगा ? मैं अब उडता हूं। तू नहीं उडता।

९ क्षतसे (दुःखसे) बचाता है जो वह क्षत्रिय होता है। वह क्षत्रिय होकर क्योंकर प्रजाकी रक्षा नहीं करता ? क्यों उसने उनकी नहीं रक्षा की?

१० तूं क्यों नहीं व्योपार करता है ? हम सभी इस देशमें व्योपार करते हैं। क्यों वह उस स्थानमें नहीं व्यवहार करता ? किसने वहां व्योपार किया ?

११ तू अब क्यों इस प्रकार शीघ्रता करता है ? सब ही वे त्वरा करते हैं। यदि हम नहीं ऐसे त्वरा करेंगे तो कैसे वहां पहुंचेंगे ?

पाठ ९

आत्मनेपद लकारोंके रूप।

१ लट् (वर्तमानकाल) = (भाष् धातु) = १ भाषते, भाषेते, भाषन्ते। २ भाषसे, भाषेथे, भाषध्वे। ३ भाषे, भाषावहे, भाषामहे।

२ लिट् (अनद्यतन परोक्ष भूतकाल) = (भाष् धातु) = १ बभाषे, बभाषाते, बभाषिरे। २ बभाषिसे, बभाषाथे, बभाषिध्वे। ३ बभाषे, बभाषिवहे, बभाषिमहे॥

३ लुट् (अनद्यतन भविष्यकाल) = (भाष् धातु) = १ भासिता, भासितारौ, भासितारः। २ भासितासे, भासितासाथे, भासिताध्वे। ३ भासिताहे, भासितास्वहे, भासितास्महे॥

४ लृट् = (भविष्यकाल) (भिक्ष् धातु) १ भिक्षिष्यते, भिक्षिष्येते, भिक्षिष्यन्ते। २ भिक्षिष्यसे, भिक्षिष्येथे, भिक्षिष्यध्वे,। ३ भिक्षिष्ये, भिक्षिष्यावहे, भिक्षिष्यामहे॥

५ लेट् (इसका प्रयोग केवल वेदमन्त्रोंमें ही होता है)

६ लोट् = (आज्ञार्थ) = (भृज् धातु) = १ भर्जताम्, भर्जेताम्, भर्जन्ताम्। २ भर्जस्व, भर्जेथाम्, भर्जध्वम्॥ ३ भर्जै भर्जावहै, भर्जामहै॥

७ लङ् = (अनद्यतन भूत) = (भ्रंस् धातु) १ अभ्रंसत, अभ्रंसेताम्, अभ्रंसन्त। २ अभ्रंसथाः, अभ्रंसेथाम्, अभ्रंसध्वम्। ३ अभ्रंसे, अभ्रंसावहि, अभ्रंसामहि॥

८ लिङ् = (विध्यर्थ) = (भ्राज् धातु) = १ भ्राजेत, भ्राजेयाताम्, भ्राजेरन्। २ भ्राजेथाः, भ्राजेयाथाम्, भ्राजेध्वम्॥ ३ भ्राजेय, भ्राजेवहि, भ्राजेमहि॥

विधिलिङ् = (आशीर्वाद) = (यत् धातु) = १ यतिषीष्ट,

यतिशीयास्ताम, यतिशीरन् । २ यतिषीष्ठाः, यतिषीयास्थाम्, यतिषीध्वम्। ३ यतिषीय, यतिषीवहि, यतिषीमहि ॥

९ लुङ् = (भूतकाल) = (व्यथ् धातु) = १ अव्यथिष्ट, अव्यथिषाताम्, अव्यथिषत । २ अव्यथिष्ठाः, अव्यथिषाथाम्, अव्यथिध्वम् । ३ अव्यथिषि, अव्यथिष्वहि, अव्यथिष्महि ॥

१० लृङ् = (हेतुमद्भावार्थ) = (स्रंस् धातु) = १ अस्रंसिष्यत, अस्रंसिष्येताम्, अस्रंसिष्यन्त । २ अस्रंसिष्येथाः, अस्रंसिष्येथाम्, अस्रंसिष्यध्वम् । ३ अस्रंसिष्ये अस्रंसिष्यावहि, अस्रंसिष्यामहि ॥

धातु ।

भाष्=(बोलना) भाषते, भाषिष्यते, अभाषत, भाषताम्, भाषेत ।
भास्=(प्रकाशित होना) भासते, भासिष्यते, अभासत, भासताम् ।
भिक्ष्=(भीख मांगना) भिक्षते, भिक्षिष्यते, अभिक्षत, भिक्षताम् भिक्षेत ।
भृज=(भूनना) भर्जते, भर्जिष्यते, अभर्जत, भर्जताम्, भर्जेत ।

अब निम्नलिखित धातुओंके केवल वर्तमान कालके ही रूप दिये जाते हैं, इनको देखकर भविष्य आदिके अन्य रूप पाठक बना सकते हैं—

भ्रंस् (गिर जाना) भ्रंसते
भ्राज् (चमकना) भ्राजते
मंह् (बढना) मंहते
मुद् (हर्ष करना) मोदते
म्रद् (मर्दन करना) म्रदते
यत् (यत्न करना) यतते
रम् (रममाण होना) रमते
रुच् (प्रकाशित होना, पसंद होना) रोचते
लंघ् (जाना) लंघते

लभ् (प्राप्त होना) लभते
लोक् (देखना) लोकते
लोच् (देखना) लोचते
वंद् (वंदन करना) वंदते
वर्च् (चमकना) वर्चते
वर्ष (वर्षा करना) वर्षते
वृत् (रहना) वर्तते
वृध् (बढना) वर्धते
वेप् (कांपना) वेपते
वेष्ट् (वेष्टन करना) वेष्टते

व्यथ् (दुःखी होना) व्यथते
शंक् (शंका करना) शंकते
आशंस् (इच्छा करना) आशंसते
शिक्ष् (सीखना) शिक्षते
शुभ् (शोभना) शोभते
श्लाघ् (प्रशंसा करना) श्लाघते
श्लोक् (कविता बनाना) श्लोकते
सह् (सहना) सहते
सेव् (सेवन करना) सेवते
स्पंद् (चलना) स्पंदते

स्पर्ध् (स्पर्धा करना) स्पर्धते
स्मि (हंसना) स्मयते
स्रंस् (गिरना) स्रंसते
स्वंज् (आलिंगन देना) स्वंजते
(भविष्य०) स्वंक्ष्यते
स्वाद् (स्वाद देना) स्वादते
स्विद् (पसीना आना) स्वेदते
हद् (शौच जाना) हदते
ह्लाद् (आनंदित होना) ह्लादते

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ त्वं इदानीं किं भाषसे ? तौ किं न भाषेते ? ते कदापि नैव भाषन्ते । वयं सर्वेऽपि तदानीं भाषामहे ।

२ स भिक्षुः किमर्थं न भिक्षते ? सर्वेऽपि भिक्षवः अत्र भिक्षन्ते । यथा त्वं भिक्षसे, तथैव स भिक्षते ।

३ यथा सूर्यः भ्राजते तथैव अग्निः अपि भ्राजते । यथा रात्रौ अग्निः भ्राजते तथा न दिवा ।

४ त्वं किं न यतसे ? अत्र कः यतते ? तौ यतेते । वयं न यतामहे । यथा त्वं यतसे तथा अहं अपि यते ।

५ स वृद्धः पुरुषः वेपते । स रोगेण व्यथते । किमर्थं त्वं वेपसे ?

भाषा-वाक्य ।

१ तू अब क्यों बोलता है ? वे (दो) क्यों नहीं बोलते ? वे कदापि नहीं बोलते । हम सब ही अब बोलते हैं ।

२ वह भीख मंगा क्यों नहीं भीख मांगता ? सभी भिक्षु यहां भीख मांगते हैं । जैसा तू भीख मांगता है, वैसाही वह भीख मांगता है ।

३ जैसा सूर्य चमकता है वैसाही अग्नि भी चमकता है। जैसा रात्रीमें अग्नि चमकता है, वैसा नहीं दिनमें।

४ तूं क्यों नहीं यत्न करता ? यह कौन यत्न करता है ? वे (दो) यत्न करते हैं। हम नहीं यत्न करते। जैसा तू यत्न करता है, वैसा मैं भी यत्न करता हूं।

५ वह वृद्ध पुरुष कांपता है। वह रोगसे पीडित है। क्यों तू ऐसा कांपता है ?

पाठक इस रीतिसे वाक्य बनावें और धातुओंके रूप बनानेका अभ्यास करें। अब निम्नलिखित श्लोक पढिये—

(महाभारत वन. अ. २७१)

स मुक्तोऽभ्येत्य राजानमभिवाद्य युधिष्ठिरम्।
ववंदे विह्वलो राजंस्तांश्च दृष्ट्वा मुनींस्तदा ॥ १९ ॥
तमुवाच घृणी राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
तथा जयद्रथं दृष्ट्वा गृहीतं सव्यसाचिना ॥ २० ॥
अदासो गच्छ मुक्तोऽसि मैवं कार्षीः पुनः क्वचित्।
स्त्रीकामं वा धिगस्तु त्वां क्षुद्रः क्षुद्रसहायवान् ॥ २१ ॥
एवंविधं हि कः कुर्यात्त्वदन्यः पुरुषाधमः।
गतसत्वामेव ज्ञात्वा कर्तारमशुभस्य तम् ॥ २२ ॥

स जयद्रथः मुक्तः बंधनात् मोचितः युधिष्ठिरं राजानं अभ्येत्य समीपं गत्वा तं च अभिवाद्य नमस्कृत्य, हे राजन् ! तदा मुनीन् दृष्ट्वा विह्वलः व्यथितः भूत्वा तान् ववन्दे वंदनं कृतवान् ॥ १९ ॥ धर्मपुत्रः युधिष्ठिरः घृणी दयामयः राजा सव्यसाचिना अर्जुनेन गृहीतं बद्धं जयद्रथं तथा दृष्ट्वा तं उवाच ॥ २० ॥ मुक्तः असि, अदासः दासभावरहितः गच्छ, एवं पुनः क्वचित् मा कार्षीः; त्वं क्षुद्रः क्षुद्रसहायवान् क्षुद्राणां पुरुषाणां सहायेन युक्तः असि, स्त्रीकामं त्वां धिक् अस्तु ॥ २१ ॥ त्वदन्यः कः पुरुषाधमः एवंविधं हि कुर्यात् ? अशुभस्य कर्मणः कर्तारं तं जयद्रथं गतसत्त्वं बलहीनं इव ज्ञात्वा ॥ २२॥

सम्प्रेक्ष्य भरतश्रेष्ठः कृपां चक्रे नराधिपः ।
धर्मे ते वर्धतां बुद्धिर्मा चाधर्मे मनः कृथाः ॥ २३ ॥
साश्वः सरथपादातः स्वस्ति गच्छ जयद्रथ ।
एवमुक्तस्तु सव्रीडं तूष्णीं किंचिदवाङ्मुखः ॥ २४ ॥
जगाम राजन्दुःखार्तो गंगाद्वाराय भारत ।

नराधिपः भरतश्रेष्ठः तं संप्रेक्ष्य दृष्ट्वा कृपां चक्रे । ते बुद्धिः धर्मे वर्धताम्, अधर्मे मनः मा कृथाः ॥ २३ ॥ हे जयद्रथ ! साश्वः अश्वयुक्तः सरथपादातः रथैः पदातिभिः युक्तः स्वस्ति गच्छ । हे राजन् भारत ! एवं उक्तः तु सव्रीडं सलज्जं तूष्णीं भूत्वा किंचित् अपि न उक्त्वा अवाङ्मुखो भूत्वा दुःखार्तः गंगाद्वाराय जगाम ॥ २४ ॥

पाठ १०

प्रथमगण उभयपदके धातु ।

उभयपदके धातु वे हैं कि जिनके रूप दोनों प्रकारोंसे अर्थात्, परस्मैपद-की रीतिसे और आत्मनेपदकी रीतिसे होते हैं । केवल परस्मैपदके रूप तथा केवल आत्मनेपदके रूप पूर्व स्थानमें बताये हैं । उक्त दोनों प्रकारकी रीतिसे अब इनके रूप बनाने चाहिये ।

पहिले बताया ही है कि आत्मनेपदका उपयोग प्रारंभमें अपने उद्देश्यसे ही किया जाता था और परस्मैपदका उपयोग दूसरेके उद्देश्यसे ही होता था । जैसा-- 'वद्' धातु प्रथम गण उभयपदी है, इसके रूप 'वदति, वदते' ऐसे होते है । 'वदति' परस्मैपदका रूप है, इसलिये इसका वास्तविक अर्थ वह "पर" अर्थात् दूसरेके साथ बोलता है, ऐसा होता है और 'वदते' रूप आत्मनेपदका है इसलिये इसका अर्थ वह अपने साथ बोलता है ऐसा

होता है। यद्यपि प्रथम आरंभमें यह भेद था, तथापि आगे संस्कृतभाषामें यह भेद रहा नहीं और दोनोंका उपयोग समानतया होने लगा।

यह बात यहां लिखनेका कारण इतना ही है कि संस्कृतसे उत्पन्न अन्यान्य भाषाओंमें यह भिन्नता अब भी दिखाई देती है। निरुक्तिके ज्ञानके लिए इसका स्मरण रहना आवश्यक है। अब इनके रूप देखिये—

लट् (वर्तमानकाल) = ('खन्' धातु) = (परस्मैपद) १ खनति खनतः, खनन्ति। २ खनसि, खनथः, खनथ। ३ खनामि, खनावः, खनामः॥

(आत्मनेपद) १ खनते, खनेते, खनन्ते। २ खनसे, खनेथे, खनध्वे। ३ खने, खनावहे, खनामहे॥

१ लङ् (अनद्यतन भूत) = ('बुध्' धातु) = (परस्मैपद) १ अबोधत, अबोधताम्, अबोधन्,। २ अबोधः, अबोधतम्, अबोधत॥ ३ अबोधम् अबोधाव, अबोधाम॥

(आत्मनेपद) १ अबोधत, अबोधेताम्, अबोधन्त। २ अबोधथाः, अबोधेथाम्, अबोधध्वम्। ३ अबोधे, अबोधावहि, अबोधामहि॥

पाठक इस प्रकार रूप बना सकते हैं। अब उभयपदके धातु यहां दिए जाते हैं–

प्रथमगण उभयपदी धातु।

खन् (खोदना) खनति, खनते। खनिष्यति, खनिष्यते।
गूह् (ढांपना) गूहति, गूहते। गूहिष्यति, गूहिष्यते।
चष् (भक्षण करना) चषति, चषते। चषिष्यति, चषिष्यते।
छद् (आच्छादन करना) छदति, छदते। छदिष्यति, छदिष्यते।
त्विष् (चमकना) त्वेषति, त्वेषते। त्वेषिष्यति, त्वेषिष्यते।
दाश् (देना) दाशति, दाशते। दाशिष्यति, दाशिष्यते।

दास् (देना) दासति, दासते । दासिष्यति, दासिष्यते ।
धाव् (दौडना, धोना,) धावति, धावते । धाविष्यति, धाविष्यते ।
धृ (धरना) धरति, धरते । धरिष्यति, धरिष्यते ।
नी (ले जाना) नयति, नयते । नेष्यति, नेष्यते ।
पच् (पकाना) पचति, पचते । पक्ष्यति, पक्ष्यते ।
बुध् (जानना) बोधति, बोधते । बोधिष्यति, बोधिष्यते ।
भक्ष् (खाना) भक्षति, भक्षते । भक्षिष्यति, भक्षिष्यते ।
भज् (सेवा करना) भजति, भजते । भक्ष्यति, भक्ष्यते ।
भृ (भरण करना) भरति, भरते । भरिष्यति, भरिष्यते ।
मृष् (सहना) मर्षति, मर्षते । मर्षिष्यति, मर्षिष्यते ।
मेथ् (जानना, हिंसा करना) मेथति, मेथते । मेथिष्यति, मेथिष्यते ।
यज् (पूजा, संगतिकरण तथा दान करना) यजति, यजते । यक्ष्यति, यक्ष्यते ।
याच् (याचना करना) याचति, याचते । याचिष्यति, याचिष्यते ।
रञ्ज् (रंगाना) रंजति, रंजते । रंक्ष्यति, रंक्ष्यते ।
राज् (प्रकाशना) राजति, राजते । राजिष्यति, राजिष्यते ।
लष् (इच्छा करना) लषति, लषते । लषिष्यति, लषिष्यते ।
वद् (बोलना) वदति, वदते । वदिष्यति, वदिष्यते ।
वप् (बोना) वपति, वपते । वप्स्यति, वप्स्यते ।
वह् (उठाकर ले जाना) वहति, वहते । वक्ष्यति, वक्ष्यते ।
वृ (वरना) वरति, वरते । वरिष्यति, वरिष्यते ।
वे (बुनना) वयति, वयते । वास्यति, वास्यते ।
शप् (शापना) शपति, शपते । शप्स्यति, शप्स्यते ।
श्रि (आश्रयसे रहना) श्रयति, श्रयते । श्रयिष्यति, श्रयिष्यते ।
ह्वे (आह्वान करना) ह्वयति, ह्वयते । ह्वास्यति, ह्वास्यते ।

इस स्थानपर प्रथम धातु, पश्चात् उसका अर्थ, तदनन्तर धातुके वर्तमानके

(परस्मै और आत्मनेपदी) रूप और अन्तमें भविष्यके दोनों प्रकारके रूप दिए हैं। पाठक अन्य रूप पीछेके अनुसार बना सकते हैं।

संस्कृत-वाक्यान।

१ सः खनते। तौ खनेते। ते सर्वे मिलित्वा तत्र खनन्ते। यदा त्वं खनिष्यसि तदा सः अपि खनतु। अहं नैव खनिष्ये।

२ बालः तेन मार्गेण धावते। बालकौ तत्र इदानीं धावेते। ते सर्वे इदानीं एव धाविष्यन्ते।

३ कः त्वां एवं अबोधत? अहं अबोधे। आवां अबोधावहे। वयं बोधामहे। ते सर्वे अबोधन्त।

४ भक्तः ईश्वरं भजते। सत्पुरुषौ परमात्मानं भजेते। साधवः जगत्पतिं भजन्ते।

५ याचकः धनं याचते। तौ भूमिं याचेते। कथं ते सर्वे जलं अयाचन्त? त्वंकिमर्थं याचसे?

भाषा-वाक्य।

१ वह खोदता है। वे (दो) खोदते हैं। वे सब मिलकर वहां खोदते हैं। जब तू खोदेगा, तब यह भी खोदेगा। मैं नहीं खोदूंगा।

२ बालक उस मार्गसे दौडता है। (दो) बालक वहां अब दौडते हैं। वे सब अब ही दौडेंगे।

३ कौन तुझे ऐसा बोध करता रहा? मैंने जाना। हम (दो) ने जान लिया। हमने जान लिया। वे सब जान गये।

४ भक्त ईश्वरका भजन करता है। (दो) सत्पुरुष परमात्माका भजन करते हैं। साधु जगत्पातिकी सेवा करते हैं।

५ याचक धन मांगता है। वे (दो) भूमिकी याचना करते हैं। कैसे सब जलकी याचना करते हैं? तू क्यों याचना करता है?

उपसर्गसहित धातु ।

संभज् = (भजन, सेवन करना । विभाग करना) संभजते ।

विराज् = (विशेष प्रकाशना) विराजति, विराजते ।

अभिलष्= (इच्छा करना) अभिलषति ।

संवद् = (संवाद करना) संवदति ।

इस प्रकार अन्यान्य धातुओंके साथ उपसर्ग लगाकर प्रयोग किए जा सकते हैं । किसी किसी धातुके पद उपसर्ग लगनेसे बदल भी जाते हैं । प्रयोग देखनेसे इस बातका पता पाठकोंको लग सकता है ।

यहां प्रथमगणके धातुओंका प्रकरण समाप्त हुआ है । यद्यपि सब धातुओंके रूप शीघ्र बनाना न भी आवे, तो भी संस्कृतमें बने हुए रूपोंकी पहचान हो गई तो भी बहुत ज्ञान हुआ, ऐसा समझना चाहिये । क्योंकि सब धातुओंके रूप बनाना बडी पंडिताईका काम है और वह विशेष अभ्याससे ही साध्य हो सकता है । इसलिये पाठक प्रत्येक लकारके रूपोंकी विशेषता ध्यानमें रखें । और संस्कृत पढनेका अभ्यास बढावें, तो आगे सब रूप स्वयं उपस्थित हो जायंगे ।

पाठ ११

(महाभारत वनपर्व अ. २७३)

जनमेजय उवाच- एवं हृतायां कृष्णायां प्राप्य क्लेशमनुत्तमम् ।
अत ऊर्ध्वं नरव्याघ्राः किमकुर्वत पांडवाः ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच-एवं कृष्णां मोक्षयित्वा विनिर्जित्य जयद्रथम् ।
आसांचक्रे मुनिगणैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २ ॥
तेषां मध्ये महर्षीणां शृण्वतामनुशोचताम् ।
मार्कण्डेयमिदं वाक्यमब्रवीत्पांडुनंदनः ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर उवाच- भगवन्देवर्षीणां त्वं ख्यातो भूतभविष्यवित् ।
संशयं परिपृच्छामि छिन्धि मे हृदि संस्थितम् ॥४॥
द्रुपदस्य सुता ह्येषा वेदिमध्यात्समुत्थिता ।
अयोनिजा महाभागा स्नुषा पांडोर्महात्मनः ॥ ५ ॥
मन्ये कालश्च भगवान्दैवं च विधिनिर्मितम् ।
भवितव्यं च भूतानां यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥ ६ ॥

जनमेजय उवाच- एवं कृष्णायां द्रौपद्यां हृतायां द्रौपदीहरणे जयद्रथेन कृते, अनुत्तमं अत्यन्तं क्लेशं दुःखं प्राप्य, अत ऊर्ध्वं नरव्याघ्रा नरश्रेष्ठाः पांडवाः किमकुर्वत ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच- कृष्णां द्रौपदीमेवं रीत्या मोक्षयित्वा, जयद्रथं विनिर्जित्य तस्य पराभवं कृत्वा, धर्मराजो युधिष्ठिरो मुनिगणैः सह आसांचक्रे उपविष्टः ॥ २ ॥ शृण्वतां अनुशोचतां तेषां महर्षीणां मध्ये मार्कंडेयं महर्षिं पांडुनंदनो धर्मराज इदं वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर उवाच- हे भगवन् ! त्वं देवर्षीणां मध्ये भूतभविष्यवित् ख्यातः । मे हृदि हृदये स्थितं संशयं परिपृच्छामि तं संशयं छिंधि दूरीकुरु ॥४॥ हि एषा द्रुपदस्य सुता वेदिमध्यात्समुत्थिता महाभाग्यवती महात्मनः पाण्डोः स्नुषा अस्ति ॥ ५ ॥ अहं मन्ये, भगवान् कालः अथवा विधिनिर्मितं दैवं अस्ति एव । भूतानां प्राणिनां यत् भवितव्यं अस्ति तस्य भवितव्यस्य व्यतिक्रमो विपर्ययो नास्ति ॥ ६ ॥

इमां हि पत्नीमस्माकं धर्मज्ञां धर्मचारिणीम् ।
संस्पृशेदीदृशो भावः शुचिं स्तैन्यमिवानृतम् ॥ ७ ॥
न हि पापं कृतं किंचित्कर्म वा निंदितं क्वचित् ।
द्रौपद्या ब्राह्मणेष्वेव धर्मः सुचरितो महान् ॥ ८ ॥
तां जहार बलाद्राजा मूढबुद्धिर्जयद्रथः ।
तस्याः संहरणात्पापः शिरसः केशपातनम् ॥ ९ ॥
पराजयं च संग्रामे ससहायः समाप्तवान् ।
प्रत्याहृता तथाऽस्माभिर्हत्वा तत्सैन्धवं बलम् ॥ १० ॥
तद्दारहरणं प्राप्तमस्माभिरवितर्कितम् ।
दुःखश्चायं वने वासो मृगयायां च जीविका ॥ ११ ॥
हिंसा च मृगजातीनां वनौकोभिर्वनौकसाम् ।
ज्ञातिभिर्विप्रवासश्च मिथ्या व्यवसितैरियम् ॥ १२ ॥

हि इमां अस्माकं धर्मचारिणीं धर्मज्ञां पत्नीं ईदृशो भावः ईदृग्विधं दुःखं संस्पृशेत्, शुचिं शुद्धाचारं नरं अनृतं स्तैन्यमिव । अहो इत्याश्चर्यं ॥ ७ ॥ द्रौपद्या किंचिदपि पापं कर्म न कृतम्, क्वचिन्निंदितं वाऽपि कर्म न कृतम् । ब्राह्मणेष्वेव महान् धर्मः सुचरितः सुष्ठु आचरितः ॥८॥ तां मूढबुद्धिर्जयद्रथो राजा बलाज्जहार । तस्याः संहरणात् द्रौपद्या हरणात् पापः ससहायो जयद्रथः शिरसः केशपातनं केशवपनम् ॥ ९ ॥ संग्रामे युद्धे च पराजयं समाप्तवान् प्राप्तवान् तथा अस्माभिः सैंधवं सिंधुदेशाधिपतेर्बलं हत्वा द्रौपदी प्रत्याहृता ॥ १० ॥ अस्माभिः अवितर्कितं न वितर्कितं तत् दारहरणं प्राप्तं । एवं प्रकारेण अयं वनवासः दुःखः दुःखकरः । मृगयायां च जीविका दुःखप्रदा एव अस्ति ॥ ११ ॥ वनौकोभिर्वननिवासिभिरस्माभिर्वनौकसां वनचराणां मृगजातीनां इयं हिंसा, मिथ्याव्यवसितैः मिथ्याव्यवहारैः द्यूतादिभिः ज्ञातिभिः विप्रवासः ग्रामाद् बहिर्निःसारणं आदिकं सर्वमेव दुःखकरं अस्ति ॥ १२ ॥

अस्ति नूनं मया कश्चिदल्पभागतरो नरः ।
भवता दृष्टपूर्वो वा श्रुतपूर्वोऽपि वा भवेत् ॥ १३ ॥

(वनपर्व अ० २७४)

मार्कण्डेय उवाच– प्राप्तमप्रतिमं दुःखं रामेण भरतर्षभ ।
रक्षसा जानकी तस्य हृता भार्या बलीयसा ॥ १ ॥
आश्रमाद्राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।
मायामास्थाय तरसा हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥ २ ॥
प्रत्याजहार तां रामः सुग्रीवबलमाश्रितः ।
बध्वा सेतुं समुद्रस्य दग्ध्वा लंकां शीतैः शरैः ॥ ३ ॥

नूनं मया सदृशः अल्पभाग्यतरः हीनभाग्ययुक्तः नरः मनुष्यः भवता दृष्टपूर्वो वा श्रुतपूर्वो वा अपि अस्ति ? पूर्वं दृष्टः पूर्वं श्रुतः वाऽपि भवेत् ?

मार्कंडेय उवाच– हे भरतर्षभ ! अप्रतिमं दुःखं रामेण प्राप्तम् । तस्य–भार्या जानकी बलीयसा रक्षसा रावणेन हृता ॥ १ ॥ दुरात्मना राक्षसेन्द्रेण रावणेन मायां कपटं आस्थाय जटायुषं गृध्रं हत्वा तरसा वेगेन (सीता हृता) ॥ २ ॥ तां सीतां सुग्रीवबलं आश्रितः रामः प्रत्याजहार पुनः आनीतवान् समुद्रस्य सेतुं बध्वा, शितैः शरैः लंकां दग्ध्वा ॥ ३ ॥

शतपथ-बोधामृत

शतपथके बोध-वचनोंका संग्रह मू. ।≈) डा. व्य. ~)

धर्मशिक्षाके ग्रन्थ

बालक और बालिकाओंकी पाठशालाओंमें तथा घरोंमें बालबच्चोंकी धार्मिक पढाईके लिये ये ग्रन्थ विशेष रीतिसे तैयार किये हैं।

बालकोंकी धर्म शिक्षा

(१) **वैदिक पाठमाला** (तृतीय श्रेणीके लिये) मू. ।) डा. व्य.-)

छूत और अछूत

इस पुस्तकमें श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, धर्मसूत्र आदिकें प्रमाणोंसे छुताछुतका विचार किया है।

प्रथम भाग मूल्य १) डा. व्य. ।~)

द्वितीय भाग मूल्य १) डा. व्य. ।~)

आगम-निबंध-माला

वेद अनंत विद्याओंका समुद्र है। इस वेद-समुद्रका मंथन करनेसे अनेक 'ज्ञानरत्न' प्राप्त होते हैं, इन रत्नोंकी यह माला है।

	मू.	डा. व्य.
१ वैदिक स्वराज्यकी महिमा	॥।)	=)
२ वैदिक सर्पविद्या	॥=)	=)
३ वेदमें चर्खा	॥=)	=)
४ वेदमें लोहेके कारखाने	॥)	~)
५ इंद्रशक्तिका विकास	॥।)	=)
६ वैदिक चिकित्सा	१॥)	॥)

मंत्री- स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम' किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

संस्कृत-पाठ-माला

(संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

चतुर्दशो भागः ।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मण्डल, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

सप्तम वार

संवत २००७, शके १८७२, सन १९५०

मूल्य ८ आने ।

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य–

ऋषि दर्शन

[१] मधुच्छन्दा १) रु. [२] मेधातिथि २) रु. [३] शुनःशेप १) रु. [४] हिरण्यस्तूप १) रु. [५] कण्व २) रु. [६] सव्य १) रु. [७] नोधा १) रु. [८] पराशर १) रु. [९] गोतम २) रु. [१०] कुत्स २) रु. [११] त्रित १॥) रु. [१२] संवनन ॥) रु, [१३] हिरण्यगर्भ ॥) रु. [१४] नारायण १) रु. [१५] बृहस्पति १) रु. [१६] वागाम्भृणी ऋषिका १) रु. [१७] विश्वकर्मा १॥) रु. [१८] सप्तऋषि ।≈) रु.

ऋग्वेदानुक्रमणी, ऋगर्थदीपिका मू. ४) रु. डा. व्य. ।॥) रु.

ऋग्वेदके अग्निसूक्त

ऋग्वेदके अग्निसूक्तोंका मनन। मू. २) रु. डा. व्य. ॥)

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय १ श्रेष्ठतम कर्मका आदेश १॥) रु.
,, ३६ सच्ची शांतीका सच्चा उपाय १॥) ,,
,, ४० आत्मज्ञान–ईशोपनिषद् २) ,,
,, ३२ एक ईश्वरकी उपासना
अर्थात् पुरुषमेध १॥) ,,

शतपथ–बोधामृत

शतपथके बोध-वचनोंका संग्रह। मू. ।≈) डा. व्य. ≠)

केन उपानिषद् मू. १॥) रु. डा. व्य. ।≈)

मंत्री– स्वाध्यायमण्डल, ' किल्ला-पारडी (जि० सूरत)

संस्कृत-पाठ-माला ।

(संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

चतुर्दश भाग ।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष – स्वाध्यायमंडल, साहित्यवाचस्पति

सप्तम वार

संवत् २००७, शक १८७२, सन १९५१

दशम गणके क्रियापद

इसके पूर्व पुस्तकमें प्रथम-गणके क्रियापद दिये हैं। सब क्रियापदोंमें प्रथम और दशम-गणके क्रियापद संख्यामें अधिक और विशेष उपयोगके हैं। इसलिये पूर्व पुस्तकमें प्रथम गणके क्रियापद कहनेके पश्चात् इस पुस्तकमें दशम-गणके क्रियापद बताये जाते हैं।

यदि पाठक इन दो गणोंके क्रियापदोंका ठीक ठीक अध्ययन करेंगे, तो आवश्यक सब क्रियापदोंका ज्ञान उनको हो सकता है। आशा है कि इतना अभ्यास करके संस्कृत-मंदिरमें पाठक प्रविष्ट हो जायेंगे।

जितने धातु इन दो गणोंमें हैं उतनेही लगभग अन्य आठ गणोंमें हैं। इसलिये प्रथम और दशम इन दो गणोंके धातुओंका अध्ययन होनेसे आधा क्रियापद संग्रह पाठकोंके पास हो जायगा। यदि पाठक इनका योग्य रीतिसे उपयोग करेंगे तो उनका बहुत लाभ हो सकता है।

स्वाध्याय-मण्डल
'आनंदाश्रम'
किल्ला-पारडी (जि० सूरत)

लेखक
श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर बी. ए.
भारत-मुद्रणालय, 'आनंदाश्रम' किल्ला-पारडी (जि० सूरत)

ॐ

संस्कृत-पाठ-माला।

चतुर्दशो भागः।

पाठ १

दशमगणके धातु।

प्रथमगणके धातुओंके समानही सुगम रीतिसे दशम गणके धातुओंके रूप होते हैं। प्रथम गणके धातुओंको धातु और प्रत्ययके मध्यमें जहां " अ " लगता है वहां दशम गणके धातु और प्रत्ययमें " अय " लगता है। इतना ही मुख्य भेद है। प्रायः शेष रूप समान रीतिसे ही होते हैं। उदाहरणके लिये रूप देखिये—

" पत् " (गिरना) यह धातु प्रथम और दशम गणमें है। इसलिये इसके रूप यहां बताये जाते हैं—

' पत् ' (गिरना)

प्रथमगण।	दशमगण।
१ पतति	पतयति।
२ पतिता	पतयिता।
३ पतिष्यति	पतयिष्यति।

❀

प्रथम गणके धातुओंको जहां " अ " नहीं लगता वहांके रूपोंमें कोई विशेष भेद नहीं होता, केवल लिट् (भूत-काल) के रूपोंमें थोडासा भेद है। देखिये-

प्रथम गण	दशम गण
१ पपात	पतयाञ्चकार

अब पाठकोंकी सुगमताके लिये हम दशमगणके रूप देते हैं-

" पत् " धातु (गिरना)

१ लट् = (वर्तमान काल) परस्मैपदके रूप-

१ पतयति, पतयतः, पतयन्ति। २ पतयसि, पतयथः, पतयथ। ३ पतयामि, पतयावः, पतयामः।

आत्मनेपदके रूप—

१ पतयते, पतयेते, पतयन्ते। २ पतयसे, पतयेथे पतयध्वे। ३ पतये, पतयावहे, पतयामहे।

इसी धातुके रूप और भी निम्न प्रकार होते हैं—

परस्मैपदमें —

१ पातयति, पातयतः, पातयन्ति।

तथा आत्मनेपदमें—

१ पातयते, पातयेते, पातयन्ते।

अन्य रूप " प " के स्थानपर इसी प्रकार " पा " समझ कर करने-योग्य हैं। पुनः दूसरे धातुके रूप देखिये—

" चुर् " (चुराना)

१ लट् (वर्तमान) परस्मैपदके रूप--

१ चोरयति, चोरयतः, चोरयन्ति। ३ चोरयसि, चोरयथः, चोरयथ। ३ चोरयामि, चोरयावः, चोरयामः।

आत्मनेपदके रूप--

१ चोरयते, चोरयेते, चोरयन्ते। २ चोरयसे, चोरयेथे, चोरयध्वे। ३ चोरये, चोरयावहे, चोरयामहे।

"तड्" (ताडन करना)

२ लङ् (अनद्यतन-भूत) परस्मैपदके रूप—

१ अताडयत्, अताडयताम्, अताडयन्। २ अताडयः, अताडयतम्, अताडयत। ३ अताडयम्, अताडयाव, अताडयाम।

आत्मनेपदके रूप–

१ अताडयत, अताडयेताम्, अताडयन्त। २ अताडयथाः, अताडयेथाम्, अताडयध्वम्। ३ अताडये, अताडयावहि, अताडयामहि।

"भू" (विचार करना)

३ लोट् (आज्ञार्थ) परस्मैपदके रूप—

१ भावयतु, भावयताम्, भावयन्तु। २ भावय, भावयतम्, भावयत। ३ भावयानि, भावयाव, भावयाम।

आत्मनेपदके रूप—

१ भावयताम्, भावयेताम्, भावयन्ताम्। २ भावयस्व, भावयेथाम् भावयध्वम्। ३ भावयै, भावयावहै, भावयामहै।

इस प्रकार रूप होते हैं। इस दशम गणमें केवल परस्मैपदके धातु बहुधा नहीं हैं, थोडेसे आत्मनेपदके हैं और शेष धातु उभय-पदके हैं। इन उभय-पदके धातुओंके रूप परस्मैपद और आत्मनेपदके रूपोंके समान होते हैं जैसे कि ऊपर दिये हैं।

लिट् (अनद्यतन परोक्ष-भूत) के रूप दशम गणके धातुओंके अतिसुगम हैं, क्योंकि, धातुका रूप इस प्रकार बनता है—

"चुर्" (चुराना)

परस्मैपद।	आत्मनेपद।
चोरयामास	चोरयामास
चोरयाम्बभूव	चोरयाम्बभूव
चोरयाञ्चकार	चोरयाञ्चक्रे

अर्थात् " आस, बभूव, चकार " ये रूप लगाकर रूप बनते हैं । हरएक धातुके इसी प्रकार रूप होनेके कारण ये रूप बनाना अति सुगम है—

परस्मैपद्के रूप-

१ चकार, चक्रतुः, चक्रुः । २ चकर्थ, चक्रथुः, चक्र । ३ चकार (चकर), चकृव, चकृम ।

आत्मनेपद्के रूप-

१ चक्रे, चक्राते, चक्रिरे । २ चकृषे, चक्राथे, चकृढ्वे । ३ चक्रे, चकृवहे, चकृमहे ।

ये रूप किसी धातुके आगे लगकर लिट्के रूप होते हैं जैसे-

१ चोरयांचकार, चोरयांचक्रतुः, चोरयांचक्रुः । इत्यादि । सभी धातुओंके विषयमें प्रायः यही नियम है । अब यहां कुछ धातु देते हैं-

दशम गणके धातु

उभय-पद

अघ् = पाप करना । अघयति, अघयते । अघयांचकार-चक्रे । अघयिता, अघयिष्यति, अघयिष्यते ।

अंक् = चिन्ह करना । अंकयति, अंकयते । अंकयांचकार-चक्रे । अंकयिता, अंकयिष्यति, अंकयिष्यते ।

अंग् = चिन्ह करना । अंगयति, अंगयते । इत्यादि० ।

अंध् = अंधा होना । अंधयति, अंधयते । अंधयांचकार-चक्रे । अंधयिता अंधयिष्यति ।

अम् = रोग होना । आमयति-ते । आमयांचकार-चक्रे । आमयिता । आमयिष्यति ।

अर्क् = स्तुति करना । अर्कयति-ते । अर्कयांचकार-चक्रे । अर्कयिता ।

अर्घ् = पूजा करना । अर्घयति-ते । अर्घयांचकार-चक्रे । अर्घयिता । अर्घयिष्यति-ते ।

अर्च् = पूजा करना । अर्चयति-ते । अर्चयांचकार-चक्रे । (पूर्ववत्)

अर्ह् = पूजा करना । अर्हयति-ते । अर्हयांचकार-चक्रे । अर्हयिता । अर्हयिष्यति-ते ।

अवधीर् = अपमान करना । अवधीरयति-ते । अवधीरयांचकार-चक्रे । अवधीरयिता । अवधीरयिष्यति-ते ।

अंश् = विभाग करना । अंशयति-ते । अंशयांचकार-चक्रे । अंशयिता । अंशयिष्यति-ते ।

इस स्थानमें धातु, उसका अर्थ, पश्चात् (लट्) वर्तमान कालका रूप, पश्चात् (लिट्) अनद्यतन भूतकालका रूप,आगे (लुट्) अनद्यतन भविष्यके रूप और पश्चात् (लृट्) भविष्यके रूप दिये हैं । इससे पाठक स्वयं रूप बना सकते हैं—

संस्कृत-वाचन-पाठः ।

१ स वस्त्रं अंकयति । स किं अंकयांचक्रे ? अहं न किमपि अंकयांचक्रे । त्वं कदा तत् अंकयिष्यसि ?

२ किमर्थं स अघयति । यदा स अघयांचकार तदा त्वया किं कृतम् ? वयं न अघयांचकृम ।

३ ते सर्वे सूर्यं अर्कयांचक्रुः । ईश्वरं सर्वेऽपि अर्कयिष्यन्ति । कः तत्र अर्कयिष्यति ? कथं स अर्कयिष्यति ? कः एवं अर्कयते ।

४ त्वं देवं अर्चय । अहमपि परमात्मानं मनसा एव अर्चयामि । यदा स तं अर्चयांचकार तदा त्वया किं कृतम् ?

५ सदा दुष्टः मनुष्यः सत्पुरुषं अवधीरयति ।

इस प्रकार पाठक वाक्य बना सकते हैं और अपना अभ्यास बढा सकते हैं । थोडेसे विचारपूर्वक यत्न करनेसे पाठकोंको बहुत वाक्य बनानेकी शक्ति यहां प्राप्त हो सकती है ।

पाठ २

शब्दार्थ

विपाकः = परिणाम
उपस्थितः = प्राप्त
सांप्रतं = अब
नृशंस = दुष्ट
सकाम = इच्छाकी पूर्तिसे युक्त
द्रोणी = पात्र
बीजं = बीज
प्रकीर्यन्ते = फेकी या बोयी जाती हैं
त्वरमाणः = शीघ्रता करनेवाला
एकैकशः = एकएकसे
अनुजाने = आज्ञा देता हूं
शुनः = कुत्ते
श्वा = कुत्ता
उपायनं = भेंट
सप्तरात्र = सात रात्री
तुमुल = बडा
आलयं = मंदिर
उपाघ्राय = सूंघकर
अत्यगात् = गया
आख्याहि = कह
पश्चिमं संदेशं = अंतिम निवेदन

विवासन = शहरसे निकालना
अयशः = अकीर्ति
निवर्तयिष्यामि = वापस लाऊँगा
अनुत्तमं = सबसे उत्तम
मोक्षयित्वा = बंधनसे छोडकर
आसांचक्रे = बैठ गया
छिन्धि = छेदन कर
स्नुषा = बहु
स्तैन्यं = चोरी
सैन्धवः = सिंधुदेशका
दारहरणं = स्त्री चुराना
वनौकाः = वनमें घर करनेवाले
विप्रवासः = शहरसे बाहर करना
अक्लिष्ट = कष्टरहित

धातु

उप-स्था = उपस्थित होना
सं-त्यज् = फेंकना
अप-नी = दूर ले जाना
आ-नी = लाना
आ-ख्या = कहना
वि-लप् = रोना

विलपन् = रोता हुआ	आ-घ्रा = सूंघना
प्रष्टुं = पूछनेके लिये	उप-क्रम् = प्रारंभ करना
उपचक्रमे = प्रारंभ किया	नि-वृत् = वापस होना
परदारा = परस्त्री	मुच् = मुक्त करना

हे कौसल्ये ! तस्यैव मम कर्मणोऽयं विपाक उपस्थितः। तस्य मुनेः शापकारणादद्यैव मे मरणं आगतमिति मन्ये। अद्याहं पुत्रशोकेन जीवितं संत्यक्ष्यामि। सांप्रतमेवाहं चक्षुर्भ्यां न पश्यामि त्वामपि। अतः, हे कौसल्ये ! त्वं हस्तेन मां स्पृश। मया रामे योग्यं आचरणं न कृतम्। यत्तु रामेण कृतं तत्तु शोभनमेव। अतस्तस्य रामस्य शोको मम प्राणाञ्छोषयति। क्षीणतैलो दीप इव मम हृदयं शाम्यति। हा राम ! हा राम ! सुत कुत्र गतोऽसि। अत्र त्वां न पश्यामि। हा कौसल्ये ! हा सुमित्रे ! इति विलपन् राजा दशरथः प्राणान् जहौ।

दशरथे नृपे एवं शान्ते कौसल्या मूर्च्छिता भूत्वा भुवि निपतिता। तां तथा पतितां दृष्ट्वा सर्वं नरेन्द्रस्य भवनं रोदनमयं बभूव। गतप्रभं राज्ञः दशरथस्य मुखमवलोक्य कौसल्या कैकेयीमब्रवीत्-' नृशंसे ! कैकेयी ! सकामा भव। अकंटकं राज्यं भुंक्ष्व। अहं तु अत ऊर्ध्वं जीवितुमपि नोत्सहे। का खलु भर्तारं परित्यज्य जीवितुमिच्छेत् ? कैकेय्या अद्य राघवाणां कुलं हतम्। न रामो जानाति मां अद्यैव विधवां जाताम्। साहं गमिष्यामि पतिलोकमद्यैव। प्रवेक्ष्यामि वा अग्निम्।'

नृपतेः शरीरमेवालिंगयन्तीं कौसल्यां सेवकास्ततः स्थानात् दूरं अपनिन्युः। राज्ञः शरीरं तैलद्रोण्यां संवेश्य ते तस्य सर्वाणि कर्माणि चक्रुः। व्यतीतायां तु रजन्यां द्विजातयो राजसभां ईयुस्तत्र श्रेष्ठं राजपुरोहितं वसिष्ठं चोचुः।

ऋषय ऊचुः-' अद्यैव कश्चित् राजा इक्ष्वाकूणां विधीयताम्। अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्। अराजके जनपदे पर्जन्योऽपि न वर्षति।

न च केनापि बीजानि प्रकीर्यन्ते । पुत्रः पितुर्वशेन वर्तते, नापि भार्या स्वामिनः वशे भवति । अराजके जनपदे मत्स्या इव जनाः परस्परं भक्षयन्ति । नरेन्द्रो हि राष्ट्रस्य धर्मरक्षकः । अतः अद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम् । '

वसिष्ठ उवाच– ' अहो ! वयं किं समीक्षामहे ? शोकं त्यक्त्वा मम शासनाद्भरतः शीघ्रं दूतसहाय्येनानीयताम् । हे दूत ! त्वं भरतं प्रति त्वरमाणो याहि । कथय च तं पुरोहितः त्वां कुशलं प्राह । आगच्छ च शीघ्रमिति । तस्मै च पितरं मृतं, रामं च वने गतं, मा कथय । '

तथा आज्ञप्ता दूता ययुः । यथाऽऽदिष्टं च भरतमूचुः । वस्त्राण्याभरणानि भरताय तस्य मातुलाय च ददुः । भरतोऽपि तत्सर्वं स्वीकृत्य सर्वेषां कुशलमेकैकशः पप्रच्छ । दूतैः प्रेरितो भरतो मातामहमुवाच ' राजन् ! गच्छामि पितुः सकाशमिति । ' तं शिरसि आघ्राय मातामह उवाच– ' गच्छ तात ! अनुजाने त्वाम् । सुप्रजा त्वया कैकेयी । मदर्थे सर्वेषां कुशलं ब्रूयाः ' इति ।

एवं सत्कृत्य राजा कैकेयः भरताय बहु धनं ददौ । अंते–

पुरेऽतिसंवृद्धान् महाकायाञ् शुनश्चोपायनं ददौ । शत्रुघ्नसहितः भरतस्ततो रथमारुह्य ययौ । सप्तरात्रदूर्ध्वं सालवनं प्राप्यायोध्यामरुणोदयसमये ददर्श । पुरुषव्याघ्रः अयोध्यां पुरीं दृष्ट्वा सारथिनमब्रवीत्– ' नाहं अयोध्यायाः तुमुलं शब्दं शृणोमि । उद्यानानि यथापूर्वाणि प्रफुल्लानि न दृश्यन्ते । सूत ! कथय कथमेतत् ? मे बंधुषु कुशलं वर्तते वा न ? '

एवं दुःखार्तो भरतो अयोध्यां प्रविवेश । पितुरालये पितरमपश्यन्, मातुरालये मातरं द्रष्टुं जगाम । तं समुपाघ्राय कैकेयी कुशलं पप्रच्छ । भरतः सर्वं कथयामास । मातरं पप्रच्छ च ' किमिति राजानं न पश्यामि ' इति । कैकेयी कथयामास– ' या सर्वेषां भूतानां गतिस्तां गतिं ते पिता गतः ' इति । श्रुत्वैव तद्भरतो भूमौ निपपात । उवाच च ताम् ' केन व्याधिना राजाऽत्यगात् ? रामोऽपि कुत्र गतः तच्छीघ्रमाख्याहि । पितैव हि ज्येष्ठो भ्राता धर्मं जानतः आर्यस्य । तथा पितुः पश्चिमं संदेशं श्रोतुमिच्छामि । '

एवं पृष्टा कैकेयी यथाभूतमकथयत्। यथा 'हा राम, हा सीते, हा लक्ष्मणेति, विलपन् राजा परलोकं गतः। लक्ष्मणानुचरो रामोऽपि सीतया सह वनं गतः।' श्रुत्वैतत् भरतः पुनः प्रष्टुमुपचक्रमे। 'कच्चिद्रामेण ब्राह्मण-धनं न हृतम्? कच्चिन्न विहिंसितोऽपापः? न वा कच्चित्परदारानभिमन्यते येन विवासितः?' इति।

कैकेयी तमुवाच–'अभिषेचनमिह रामस्य श्रुत्वा तव पिता मया याचितः, राज्यं त्वदर्थं भवतु, रामस्य च वने विवासनं भवत्विति।'

श्रुत्वैतत्संतप्तो भरतस्तां तदोवाच। 'राजानं मृत्युवशं रामं च तापसं कृत्वा त्वया मे दुःखमेव संवर्धितम्। त्वं कुलस्य कालरात्रिरेव प्रत्यक्षं संजाता। कथं तव ईदृशी पापमयी बुद्धिः समुत्पन्ना? अस्मिन् जीवलोके त्वयाऽहं अयशः प्रापितः। एष इदानीं गमिष्यामि रामं प्रति निवर्तयिष्यामि च तं भ्रातरं वनात्।' मातरं इत्युक्त्वा कैकेयीभवनात्कौसल्यागारं सशत्रुघ्नो भरतः प्राप्तः।

पाठ ३

पाठकोंकी सुविधाके लिये दशमगणके धातुओंके कुछ रूप यहां देते हैं–

लिट् (अनद्यतन परोक्षभूत)

"ईड्" (स्तुति करना) परस्मैपद—

१ ईडयांचकार, ईडयांचक्रतुः, ईडयांचक्रुः। २ ईडयांचकर्थ, ईडयांचक्रथुः, ईडयांचक्र। ३ ईडयांचकार (चकर), ईडयांचकृव, ईडयांचकृम।

आत्मनेपद—

१ ईडयांचक्रे, ईडयांचक्राते, ईडयांचक्रिरे। २ ईडयांचकृषे, ईडयां-चक्राथे, ईडयांचकृढ्वे। ३ ईडयांचक्रे, ईडयांचकृवहे, ईडयांचकृमहे।

इस रीतिसे दशमगणके धातुओंके रूप होते हैं। इसी प्रकार निम्न-लिखित रूप लगकर भी होते हैं—

१ आस, आसतुः, आसुः। २ आसिथ, आसथुः, आस। ३ आस, आसिव, आसिम। इन रूपोंसे निम्नप्रकार रूप होते हैं—

१ ईडयामास, ईडयामासतुः, ईडयामासुः। २ ईडयामासिथ, ईडयामासथुः, ईडयामास। ३ ईडयामास, ईडयामासिव, ईडयामासिम।

इस प्रकार पाठक दो पद्धतियोंसे (लिट्) अनद्यतन परोक्षभूतके रूप बना सकते हैं। अब निम्नलिखित धातु देखिये—

दशमगणके उभयपदी धातु।

आंदोल् = डोलना। आंदोलयति–ते। आंदोलयांचकार-चक्रे। आंदोलयिता। आंदोलयिष्यति-ते।

आप् = प्राप्त होना। आपयति–ते। आपयांचकार-चक्रे। आपयिता। आपयिष्यति-ते।

ईड् = स्तुति करना। ईडयति-ते। ईडयांचकार-चक्रे। ईडयिता। ईडयिष्यति-ते।

ऊन् = न्यून होना। ऊनयति-ते। ऊनयांचकार-चक्रे। ऊनयिता। ऊनयिष्यति-ते।

ऊर्ज् = बलिष्ठ होना। ऊर्जयति-ते।

ओलण्ड् = उल्लंघना। ओलण्डयति-ते।

कथ् = कथन करना। कथयति-ते।

कर्त् = काटना। कर्तयति-ते।

कल् = जाना, गिनना। कलयति-ते।

काल् = समय गिनना। कालयति-ते।

कित् = रहना। केतयति-ते।

कुंठ् = वेष्टन करना। कुंठयति-ते।

कुप् = बोलना। कोपयति-ते।

कुमार् = खेलना। कुमारयति-ते।

कृप् = समर्थ होना। कल्पयति-ते।
क्लृप् = ,, । कल्पयति-ते।
कृत् = कथन करना। कीर्तयति-ते।
केत् = बुलाना। केतयति-ते।
आक्रन्द् = रोना। आक्रन्दयति-ते।

यहांके कई धातुओंके एक वर्तमान कालके ही रूप दिये हैं इस स्थानपर तथा आगे भी अन्यरूप पूर्ववत् पाठक बना सकते हैं।

केतयति-ते। ईडयांचकार-चक्रे।

इस प्रकार संक्षिप्त रूप दिये हैं। इसका अर्थ— (परस्मै०) केतयति, (आत्मने०) केतयते। (परस्मै०) ईडयांचकार, (आत्मने०) ईडयांचक्रे। इस प्रकार रूप होते हैं यह भाव समझना चाहिये। यदि इस संकेतको ध्यानमें रखेंगे तो प्रायः किसी भी स्थान पर पाठकोंको कोई कठिनता नहीं रहेगी।

संस्कृत-वाक्यानि।

१ वीरः ऊर्जयति। कः तदा ऊर्जयांचकार। स किमर्थं ऊर्जयिष्यति। ते सर्वे नैव ऊर्जयन्ति।

२ इदानीं बालकः आक्रंदयति। सर्वेऽपि बालकाः एवं आक्रंदयन्ति। कदा ते सर्वे आक्रंदयांचक्रुः?

३ यदा ते कर्तयिष्यन्ति तदा त्वं किं करिष्यसि? कथं ते कर्तयांचक्रुः? किमर्थं ते एवं कर्तयांचक्रुः?

४ त्वं कथय यत् त्वया तदानीं तत्र श्रुतम्। रामचंद्रः स्वकीयां कथां कथयांचकार। स न कथयिष्यति।

अब थोडे धातु देखिये—

दशम-गणके उभयपद धातु।

क्षप् = प्रेरणा करना। क्षपयति-ते।
क्षल् = धोना। क्षालयति-ते।
खण्ड् = टुकडे करना। खण्डयति-ते।

गण् = गिनना। गणयति-ते।
गर्ज् = गर्जना करना। गर्जयति-ते। (प्रथमगण—गर्जति)
गर्ह् = निंदा करना। गर्हयति-ते।
गवेष् = ढूंढना। गवेषयति-ते।
अवगुण्ठ = वेष्टन करना। अवगुंठयति-ते।
गुण् = गुणना। गुणयति-ते।
ग्रन्थ् = बांधना, संबंध जोडना। ग्रंथयति-ते।
ग्रस् = निगल लेना। ग्रासयति-ते।
ग्राम् = निमन्त्रण देना। ग्रामयति-ते।
घट् = इकट्ठा करना। घटयति-ते।
घण्ट् = शब्द करना। घण्टयति-ते।
चण्ड् = कोप करना। चण्डयति-ते।
चर्व् = चबाना। चर्वयति-ते।
चल् = चलाना। चालयति-ते।
चित्र् = चित्र करना। चित्रयति-ते।
चिन्त् = चिन्तन करना। चिन्तयति-ते।
चिन्ह् = चिन्ह करना। चिन्हयति-ते।
चुद् = प्रेरणा करना। चोदयति-ते।
चुम्ब् = हिंसा करना। चुम्बयति-ते।

संस्कृत-वाक्यानि।

१ अहं वस्त्राणि अत्रैव प्रक्षालयामि। ते सर्वे कदा स्वकीयानि वस्त्राणि प्रक्षालयांचक्रुः। यः पुरुषः वस्त्रं प्रक्षालयिष्यति स एव अत्र आगच्छतु।

२ त्वं किं खण्डयसि? त्वं तत्काष्ठं केन शस्त्रेण खण्डयसि। कः तत् अखण्डयत्? यदि त्वं खण्डयितुं इच्छसि तर्हि काष्ठं खण्डय। वयं तत् नैव खण्डयांचकृम।

३ स रूप्यकान् गणयति। अहं रूप्यकान् अगणयम्। विश्वामित्रः सर्वं गणयांचकार।

४ मेघः आकाशे गर्जति। कदा मेघाः गर्जन्ति । यदा वृष्टिसमयः आगच्छति तदा एव मेघाः आकाशे गर्जन्ति। सर्वे मेघाः गर्जयांचक्रुः ।

५ चित्रकारः सुंदरं चित्रं चित्रयति। कस्य चित्रं सः चित्रयति ? यदा तच्चित्रं चित्रितं भविष्यति तदा स किं करिष्यति ?

६ मनुष्यः अन्नं चर्वयति। यथा स चर्वयति तथैव त्वं चर्वय। सर्वे अपि चर्वयन्ति ।

पाठक इस रीतिसे पूर्वोक्त धातुओंके रूप बनाकर वाक्य बनावें और अपना अभ्यास बढावें ।

पाठ ४

धनंजयश्च तेजस्वी प्रणिपत्य पुरंदरम् ।
भृत्यवत्प्रणतस्तस्थौ देवराजसमीपतः ॥ ८ ॥

" तेजस्वी तेजोयुक्तः धनंजयः अर्जुनः च पुरंदरं शत्रुनगरविध्वंसकं इंद्रं प्रणिपत्य प्रणम्य देवराजसमीपतः इंद्रस्य समीपं एव भृत्यवत् दाससमानं प्रणतः नम्रः भूत्वा तस्थौ स्थितवान्।"

आघ्राय तं महातेजाः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
धनंजयमभिप्रेक्ष्य विनीतं स्थितमन्तिके ॥ १० ॥
जटिलं देवराजस्य तपोयुक्तमकल्मषम् ।
हर्षेण महताऽऽविष्टः फाल्गुनस्याथ दर्शनात् ॥ ११ ॥

" महातेजाः अतितेजाः कुन्तीपुत्रः कुंतीनंदनः युधिष्ठिरः तं देवराजस्य इंद्रस्य अंतिके समीपभागे एव स्थितं विनीतं नम्रं जटिलं प्रशस्ताभिः जटाभिः युक्तं, तपोयुक्तं तपसा युक्तं, अकल्मषं पापरहितं तं धनंजयं अर्जुनं अभिप्रेक्ष्य अवलोक्य, तं अर्जुनं आघ्राय च तस्य गन्धं आघ्राय च अथ फाल्गुनस्य दर्शनात् महता हर्षेण आविष्टः युक्तः अभूत् । "

बभूव परमप्रीतो देवराजं च पूजयन् ।
तं तथाऽदीनमनसं राजानं हर्षसंप्लुतम् ॥ १२ ॥

उवाच वचनं धीमान्देवराजः पुरंदरः।
त्वमिमां पृथिवीं राजन्प्रशासिष्यसि, पांडव।
स्वस्ति प्राप्नुहि कौन्तेय काम्यकं पुनराश्रमम् ॥ १३ ॥

"(सः युधिष्ठिरः) देवराजं इंद्रं च पूजयन् पूजयित्वा परमप्रीतो बभूव। तं राजानं धर्मराजानं हर्षसंप्लुतं हर्षयुक्तं तथा अदीनमनसं दीनमनोभावरहितं युधिष्ठिरं धीमान् पुरंदरः शत्रुनगरभेत्ता देवराजः इंद्रः इदं वचनं अब्रवीत्। हे पांडव! हे धर्मराज! हे राजन्! त्वं इमां पृथिवीं प्रशासिष्यसि राष्ट्रस्य शासनं करिष्यसि। हे कौन्तेय! कुंतीनंदन! धर्मराज! पुनः काम्यकं आश्रमं स्वस्ति प्राप्नुहि।"

अस्त्राणि लब्धानि च पांडवेन सर्वाणि मत्तः प्रयतेन राजन्।
कृतप्रियश्चास्मि धनंजयेन जेतुं न शक्यस्त्रिभिरेष लोकैः ॥१४॥
(म. भारत. वन. २६६)

"हे राजन्! मत्तः मत्सकाशात् पांडवेन पंडुनंदनेन अर्जुनेन सर्वाणि अखिलानि अस्त्राणि प्राप्तानि। धनंजयेन अर्जुनेन अहं कृतप्रियः अस्मि। तेन मम अतीव प्रियं कार्यं कृतं इति अभिप्रायः। अतः एष अर्जुनः त्रिभिः लोकैः जेतुं न शक्यः। एवं सर्वत्र विजयी एव संजातः॥"

अब इसके अध्ययनके पश्चात् पाठक निम्नलिखित श्लोक पढें--

युधिष्ठिर उवाच कस्मिन्रामः कुले जातः किं वीर्यः किं पराक्रमः।
रावणः कस्य पुत्रो वा किं वैरं तस्य तेन ह ॥ ४ ॥
एतन्मे भगवन्सर्वं सम्यगाख्यातुमर्हसि।
श्रोतुमिच्छामि चरितं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ५ ॥
मार्कंडेय उवाच- अजो नामाभवद्राजा महानिक्ष्वाकुवंशजः।
तस्य पुत्रो दशरथः शश्वत्स्वाध्यायवाञ्छुचिः ॥ ६ ॥
अभवंस्तस्य चत्वारः पुत्रा धर्मार्थकोविदाः।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्च महाबलः ॥ ७ ॥

रामस्य माता कौसल्या कैकेयी भरतस्य तु।
सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायाः परंतपौ ॥ ८॥

(म. भा. वन. अ. २७४)

युधिष्ठिर उवाच- कस्मिन्कुले रामो जातः? स किं वीर्यः? किं पराक्रमः? रावणो वा कस्य पुत्रः? तस्य रावणस्य तेन रामेण सह किं निमित्तं वैरम्? ॥४॥ हे भगवन्! एतत् सर्वं मे सम्यक् आख्यातुं अर्हसि। अक्लिष्टकर्मणो रामस्य चरितं श्रोतुमिच्छामि ॥ ५ ॥ मार्कंडेय उवाच- इक्ष्वाकुवंशजः अजो नाम महान् राजा अभवत्। तस्य पुत्रः दशरथः शश्वत् निरन्तरं स्वाध्यायवान् स्वाध्याययुक्तः शुचिः पवित्रः ॥ ६ ॥ तस्य दशरथस्य धर्मार्थ-कोविदाः चत्वारः पुत्राः अभवन्। राम-लक्ष्मण-शत्रुघ्नाः महाबलः भरतश्च ॥७॥ रामस्य माता कौसल्या, भरतस्य तु माता कैकेयी, सुमित्रायाः सुतौ परन्तपौ शत्रुतापकौ लक्ष्मण-शत्रुघ्नौ द्वौ एव अभवताम्।

ततो गर्भः समभवत्पृथाया पृथिवीपते।
शुक्ले दशोत्तरे पक्षे तारापतिरिवाम्बरे ॥ १ ॥
सा बांधवभयाद् बाला गर्भं तं विनिगूहति।
धारयामास सुश्रोणी न चैनां बुबुधे जनः ॥ २ ॥
न हि तां वेद नार्यन्या काचिद्धात्रेयिकामृते।
कन्यापुरगतां बालां निपुणां परिरक्षणे ॥ ३ ॥
ततः कालेन सा गर्भं सुषुवे वरवर्णिनी।
कन्यैव तस्य देवस्य प्रसादादमरप्रभम् ॥ ४ ॥

(म. भा. वन. अ. ३०८)

हे पृथिवीपते! ततः पृथायाः कुन्त्याः गर्भः समभवत्। अम्बरे आकाशे दशोत्तरे शुक्ले पक्षे तारापतिः चंद्रः इव ॥ १ ॥ सा बाला सुश्रोणी कन्या कुन्ती बांधवभयात् विनिगूहति गूढं गुप्तं यथा भवति तथा कृत्वा रक्षन्ती तं गर्भं धारयामास। जनः एनां च न बुबुधे न ज्ञातवान्। कन्यापुरगतां परिरक्षणे निपुणां बालां धात्रेयिकां ऋते धात्रीं विहाय काचित् काऽपि अन्या

नारी अन्या स्त्री तां न वेद न ज्ञातवान् । ततः ऊर्ध्वं कालेन समयेन सा वरवर्णिनी उत्तमवर्णयुक्ता कुन्ती तस्य देवस्य प्रसादात् अमरप्रभं देवसदृशं गर्भं पुत्रं कन्या एव सुषुवे उत्पादितवती ।

कर्ण उवाच – भगवन्तमहं भक्तो यथा मां वेत्थ गोपते ।
तथा परमतिग्मांशो नास्त्यदेयं कथं चन ॥ १ ॥
न मे दारा न मे पुत्रा न चान्यद्दैवतं दिवि ।
तथेष्टा वै सदा भक्त्या यथा त्वं गोपते मम ॥ २ ॥
इष्टानां च महात्मानो भक्तानां च न संशयः ।
कुर्वन्ति भक्तिमिष्टां च जानीषे त्वं च भास्कर ॥ ३ ॥
इष्टो भक्तश्च मे कर्णो न चान्यद्दैवतं दिवि ।
जानीत इति वै कृत्वा भगवानाह मद्धितम् ॥ ४ ॥
भूयश्च शिरसा याचे प्रसाद्य च पुनः पुनः ।
इति ब्रवीमि तिग्मांशो त्वं तु मे क्षन्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
(म० भा० वन० ३०२)

हे परमतिग्मांशो अति तीक्ष्ण किरण हे गोपते पृथ्वीपते सूर्य ! यथा मां त्वं वेत्थ जानासि तथा एव अहं भगवन्तं त्वां भक्तः अस्मि । अतः कथं चन किंचिदपि अदेयं दातुं अयोग्यं नास्ति ॥ १ ॥ हे गोपते ! हे सूर्य ! यथा त्वं मम भक्त्या सदा इष्टः असि तथा अन्यत् दिवि दैवतं न, न मे पुत्राः न च मे दाराः स्त्रियः इष्टाः सन्ति ॥ २ ॥ हे भास्कर सूर्य ! महात्मानः सज्जनाः इष्टानां च भक्तानां च इष्टां भक्तिं कुर्वन्ति इति त्वं जानीषे, मम संशयः न ॥ ३ ॥ कर्णः मे इष्टः भक्तः च तस्य अन्यत् दैवतं दिवि नास्ति इति कृत्वा एव भगवान् मद्धितं मम हितं आह ॥ ४ ॥ अतः पुनः पुनः भूयः शिरसा प्रसाद्य याचे याचामि, इति एवं ब्रवीमि । हे तिग्मांशो ! त्वं मे तत् भाषणं क्षन्तुं अर्हसि योग्योऽसि ॥ ५ ॥

पाठ ५

पुनः इस पाठमें कई धातुओंके रूप बनाये जाते हैं, पाठक इनकी ओर विशेष ध्यान दें—

(१) चूर्ण् = चूरण करना।

(लट्) वर्तमानकालके रूप (परस्मैपद)

१ चूर्णयति, चूर्णयतः चूर्णयन्ति। २ चूर्णयसि, चूर्णयथः, चूर्णयथ। ३ चूर्णयामि, चूर्णयावः, चूर्णयामः ॥

(आत्मनेपद)

१ चूर्णयते, चूर्णयेते, चूर्णयन्ते। २ चूर्णयसे, चूर्णयेथे, चूर्णयध्वे। ३ चूर्णये, चूर्णयावहे, चूर्णयामहे ॥

(२) छिद्र् = छेद करना।

(लङ्) अनद्यतनभूत (परस्मैपद)

१ अच्छिद्रयत्, अच्छिद्रयताम्, अच्छिद्रयन्। २ अच्छिद्रयः, अच्छिद्रयतम्, अच्छिद्रयत। ३ अच्छिद्रयम्, अच्छिद्रयाव, अच्छिद्रयाम ॥

(आत्मनेपद)

१ अच्छिद्रयत, अच्छिद्रयेताम्, अच्छिद्रयन्त। २ अच्छिद्रयथाः, अच्छि-द्रयेथाम्, अच्छिद्रयध्वम्। ३ अच्छिद्रये, अच्छिद्रयावहि, अच्छिद्रयामहि।

(३) आ-ज्ञा = आज्ञा करना

(लोट्) आज्ञार्थ। (परस्मैपद)

१ आज्ञापयतु, आज्ञापयताम्, आज्ञापयन्तु। २ आज्ञापयः, आज्ञापयतम्, आज्ञापयत। ३ आज्ञापयानि, आज्ञापयाव, आज्ञापयाम ॥

(आत्मनेपद)

१ आज्ञापयताम्, आज्ञापयेताम्, आज्ञापयन्ताम्। २ आज्ञापयस्व, आज्ञापयेथाम्, आज्ञापयध्वम्। ३ आज्ञापयै, आशापयावहै, आज्ञापयामहै।

(४) तुल् = तोलना।

(लिङ्) विध्यर्थ (परस्मैपद)

१ तोलयेत्, तोलयेताम्, तोलयेयुः। २ तोलयेः, तोलयेतम्, तोलयेत।

*

३ तोलयेयम्, तोलयेव, तोलयेम।

(आत्मनेपद)

१ तोलयेत, तोलयेयाताम्, तोलयेरन् । २ तोलयेथाः, तोलयेयाथाम्, तोलयेध्वम् । ३ तोलयेय, तोलयेवहि, तोलयेमहि ॥

(५) दुःख् =दुःख देना।

(लिट्) अनद्यतन-परोक्षभूत । (परस्मैपद)

१ दुःखयांचकार, दुःखयांचक्रतुः, दुःखयांचक्रुः। २ दुःखयांचकर्थ, दुःखयांचक्रथुः, दुःखयांचक्र। ३ दुःखयांचकार (चकर), दुःखयांचकृव, दुःखयांचकृम ॥

(आत्मनेपद)

१ दुःखयांचक्रे, दुःखयांचक्राते, दुःखयांचक्रिरे। २ दुःखयांचकृषे, दुःखयांचक्राथे, दुखयांचकृढ्वे। ३ दुःखयांचक्रे, दुःखयांचकृवहे, दुःखयांचकृमहे।

(६) तिज् = तेज करना।

(लृट्) भविष्यकाल (परस्मैपद)

१ तेजयिष्यति, तेजयिष्यतः, तेजयिष्यन्ति। २ तेजयिष्यसि, तेजयिष्यथः, तेजयिष्यथ । ३ तेजयिष्यामि, तेजयिष्यावः, तेजयिष्यामः।

(आत्मनेपद)

१ तेजयिष्यते, तेययिष्येते, तेजायिष्यन्ते । २ तेजयिष्यसे, तेजयिष्येथे, तेजयिष्यध्वे, । ३ तेजयिष्ये, तेजयिष्यावहे, तेजयिष्यामहे ।

पाठक इस रीतिसे रूप बनावें।

दशमगण उभयपद धातु

चूर्ण् = चूरण करना । चूर्णयति ते ।

छद् = आच्छादन करना। छादयति-ते ।

छन्द् = ढांपना। छन्दयति-ते ।

छर्द् =वमन करना । छर्दयति-ते ।

छिद्र् = छिद्र करना। छिद्रयति-ते ।

छिद् = छेदन करना। छेदयति-ते ।

जुष् = संतुष्ट होना । जोषयति-ते ।
जॄ = बढा होना । जारयति-ते ।
ज्ञप् = जानना । ज्ञपयति-ते ।
आ-ज्ञा = आज्ञा करना । आज्ञापयति-ते ।
तड् = ताडन करना । ताडयति-ते ।
तप् = तपाना । तापयति-ते ।
तर्क् = विचार करना । तर्कयति-ते ।
तर्ज् = निंदा करना । तर्जयति-ते ।
तिज् = तेज करना । तेजयति-ते ।
तिल् = तेल लगाना । तेलयति-ते ।
तुल् = तोलना । तोलयति-ते ।
तृप् = तृप्त होना । तर्पयति-ते ।
त्रस् = विरोध करना । त्रासयति-ते ।
दण्ड् = दण्ड देना । दण्डयति-ते ।
दुःख् = दुःख देना । दुःखयति-ते ।

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ वैद्यस्य भृत्यः वनस्पतिमूलानि चूर्णयति । कः एवं चूर्णयांचकार ? वयं न चूर्णयामहे । कौ चूर्णयिष्येते ?

२ अहं एवं तर्कयामि । त्वं किं न तर्कयसि ? तौ द्वौ अपि पुरुषौ तर्कयिष्यतः । त्वं तर्कय । स तर्कयतु ।

३ वैश्यः धान्यं कदा तोलयिष्यति ? यदि सः न तोलयिष्यति तर्हि त्वं तोलयस्व । यदि त्वं अपि न तोलयिष्यसि तर्हि अहं तोलयिष्यामि ।

४ कथं स कीटः एतत् काष्ठं छिद्रयति । कुत्र छिद्रयति ? यदा त्वं पश्यसि तदा स कीटः न छिद्रयति ।

५ आज्ञापय तव भृत्यं यत् स मम गृहं प्रति न आगच्छतु । त्वं किमर्थं मां एवं आज्ञापयसि ? यदा स नृपः अत्र आगमिष्यति तदा एव स आज्ञापयिष्यति ।

६ सः भद्रः पुरुषः पितॄन्, देवान्, अतिथीन् च तर्पयति। यदा स तान् सर्वान् तर्पयांचकार तदा तेऽपि तृप्ताः सन्तः स्वं स्थानं गताः।

७ काष्ठकारः काष्ठं शस्त्रेण छेदयति। यदि सः तत् छेदयिष्यति तर्हि त्वं तत्र गच्छ, पश्य च तं यदि स छेत्तुं इच्छति वा न।

८ वीरः पुरुषः खड्गं तेजयति। नापितः क्षुरं तेजयति। ज्ञानी पुरुषः वाचं तेजयति।

९ यदि त्वं जोषयसि। तर्हि सः तत्र गच्छतु। त्वं किमर्थं तं जोषयितुं इच्छसि ?

पाठक इस प्रकार वाक्य करें और अभ्यास बढावें। अब निम्नलिखित धातुओंका अभ्यास कीजिये--

दशमगण उभयपद धातु

दुल् = हिलाना। दोलयति-ते।

धू = हिलाना। धूनयति-ते; धावयति-ते। दुधाव, धूनयांचकार-चक्रे। धूनयिता, धविता। धूनयिष्यति-ते। धविष्यति-ते।

धृ = धारण करना। धारयति-ते।

धृष् = अपमान करना। धर्षयति-ते।

ध्वन् = शब्द करना। ध्वनयति-ते।

नट् = बोलना। नाटयति-ते।

नद् = शब्द करना। नादयति-ते।

निवास् = ढांपना। निवासयति-ते।

पक्ष् = स्वीकार करना। पक्षयति-ते।

पञ्च् = विवेचन करना। पञ्चयति-ते।

पट् = बोलना। पटयति-ते।

पत् = गिरना। पतयति-ते।

पार् = समाप्त करना। पारयति-ते।

पिण्ड् = इकट्ठा करना। पिण्डयति-ते।

पीड् = पीडा करना। पीडयति-ते।

पुष् = पुष्ट करना। पोषयति-ते।
पुज् = पूजा करना। पूजयति-ते।
पुर् = भरना। पूरयति-ते।
पूर्ण् = पूर्ण करना। पूर्णयति-ते।
पाल् = पालन करना। पालयति-ते।

संस्कृत-वाक्यानि।

१ राजा राष्ट्रं धारयति। मनुष्यः प्राणं धारयति। देही देहं धारयति। वृक्षाः पुष्पाणि धारयन्ति।

२ विज्ञानी पुरुषः शास्त्रसिद्धान्तं प्रपञ्चयति। कः एवं प्रपञ्चयितुं शक्नोति? त्वं किं न प्रपञ्चयसे?

३ स चोरः नदीं पारयते। तौ पुरुषौ नदीं पारयितुं न शक्नुतः। पाठशालायाः सर्वेऽपि बालकाः नदीं पारयिष्यन्ति नात्र संशयः।

४ जलेन तत् पात्रं पूरय। अहं इदानीं तत्पात्रं जलेन नैव पूरयामि। श्वः वा परश्वः वा पूरयिष्यामि। कः तत् पात्रं अपूरयत्।

५ यथा त्वं तं पुरुषं पीडयसि तथा स त्वां नैव पीडयति। त्वं किमर्थं तं एवं पीडयसि? स कं पीडयांचकार।

६ ते पुरुषाः ताः स्त्रियः धर्षयांचक्रिरे। कः एवं स्त्रीं धर्षयेत्। किमर्थं त्वं तां अधर्षयः? यः एवं स्त्रीं धर्षयति स राजपुरुषैः दण्ड्यते।

७ वायुः वृक्षं कथं दोलयति, पश्य। त्वं तं किमर्थं आंदोलयसि? यदि त्वं वृक्षं एवं दोलयसि तर्हि वृक्षात् सर्वाणि फलानि पतिष्यन्ति।

८ त्वं एवं किमर्थं पिष्टं पिण्डयसि? अपूप-निर्माणाय अहं एवं पिष्टं पिण्डयामि। कः अपूपान् करिष्यति?

सूचना

पाठक इस प्रकार वाक्य बनावें और अपनी बोलचालकी तैयारी करें। इस प्रकारके अभ्याससे पाठक शीघ्रही संस्कृतमें बातचीत कर सकते हैं।

पाठ ६

(म० भा० वन० अ० ६५)

बृहदश्व उवाच – सा तच्छ्रुत्वाऽनवद्यांगी सार्थवाहवचस्तदा ।
जगाम सह तेनैव सार्थेन पतिलालसा ॥ १ ॥
अथ काले बहुतिथे वने महति दारुणे ।
तडागं सर्वतो भद्रं पद्मसौगन्धिकं महत् ॥ २ ॥
ददृशुर्वणिजो रम्यं प्रभूतयवसेन्धनम् ।
बहुपुष्पफलोपेतं नानापक्षिनिषेवितम् ॥ ३ ॥
निर्मलस्वादुसलिलं मनोहारि सशीतलम् ।
सुपरिश्रान्तवाहास्ते निवेशाय मनो दधुः ॥ ४ ॥
संमते सार्थवाहस्य विविशुर्वनमुत्तमम् ।
उवास सार्थः सुमहान्वेलामासाद्य पश्चिमाम् ॥५॥

बृहदश्व उवाच– सा अनवद्यांगी सुंदरशरीरावयवा दमयन्ती तदा तत् सार्थवाहवचः श्रुत्वा तस्य वणिजः भाषणं श्रुत्वा सा पतिलालसा दमयन्ती तेन एव सार्थेन वणिजां समूहेन सह जगाम अग्रे गतवती ॥ १ ॥ अथ अनंतरं बहुतिथे बहुदिने काले समये व्यतीते बहुकालानंतरं, महति दारुणे वने सर्वतोभद्रं सर्वतः कल्याणं पद्मसौगन्धिकं पद्मानां कमलानां सुगंधिना युक्तं महत् तडागं कासारम् ॥ २ ॥ रम्यं, प्रभूतयवसेन्धनं बहुतृणकाष्ठयुक्तं नानापक्षिनिषेवितं अनेकैः पक्षिभिः सेवितं वणिजः ददृशुः ॥ ३ ॥ निर्मल-स्वादुसलिलं निर्मलमधुरजलयुक्तं मनोहारि मनोहरं सुशीतलं अतिशीतलं तडागं दृष्ट्वा ते सुपरिश्रान्तवाहाः अतिपरिश्रान्तवाहनाः तत्र एव निवेशाय मनः दधुः ॥ ४ ॥ सार्थवाहस्य मुख्यस्य वणिजः संमते संमत्या उत्तमं वनं विविशुः प्रविष्टाः । तत्र पश्चिमां वेलां आसाद्य स सुमहान् सार्थः उवास तत्रैव निवासं चकार ॥ ५ ॥

अथार्धरात्रसमये निःशब्दस्तिमिते तदा।
सुप्ते सार्थे परिश्रान्ते हस्तियूथमुपागमत् ॥ ६ ॥
पानीयार्थं गिरिनदीं मदप्रस्रवणाविलाम्।
अथापश्यत सार्थं तं सार्थजान्सुबहून्गजान् ॥ ७ ॥
ते तान्ग्राम्यगजान्दृष्ट्वा सर्वे वनगजास्तदा।
समाद्रवन्त वेगेन जिघांसन्तो मदोत्कटाः ॥ ८ ॥
तेषामापततां वेगः करिणां दुःसहोऽभवत्।
नगाग्रादिव शीर्णानां शृंगाणां पततां क्षितौ ॥ ९ ॥
स्पन्दतामपि नागानां मार्गा नष्टा वनोद्भवाः।
मार्गं संरुध्य संसुप्तं पद्मिन्याः सार्थमुत्तमम् ॥ १० ॥
ते तं ममर्दुः सहसा चेष्टमानं महीतले।
हाहाकारं प्रमुञ्चन्तः सार्थिकाः शरणार्थिनः ॥ ११ ॥

अथ निःशब्दस्तिमिते शब्दरहिते स्तब्धे शांते वा अर्धरात्रसमये मध्यरात्रसमये तदा परिश्रान्ते सार्थे सुप्ते सति तत्र हस्तियूथं हस्तिनां गजानां यूथं आगमत् आगतम् ॥ ६ ॥ मदप्रस्रवणाविलां मदस्रावकलुषितां गिरिनदीं पानीयार्थं जलपानार्थं तत् हस्तियूथं आगमत्। अथ तत् गजयूथं सार्थजान् सार्थगतान् सुबहून् गजान् तं सार्थं च तत्र अपश्यत ॥ ७ ॥ तदा ते सर्वे मदोत्कटाः वनगजाः तान् ग्राम्यगजान् दृष्ट्वा तान् जिघांसन्तः हिंसितुमिच्छन्तः वेगेन समाद्रवन्त तेषां उपरि अभ्यधावन्त ॥ ८ ॥ तेषां आपततां आक्रमणकारिणां गणानां वेगः दुःसहः सहनाय अयोग्यः अभवत्। नगाग्रात् पर्वताग्रात् शीर्णानां भिन्नानां अतएव क्षितौ भूम्यां पततां शृंगाणां वेगः यथा दुःसहः भवति तथा स तेषां वेगः दुःसहः अभवत् ॥ ९ ॥ नागानां हस्तिनां स्पन्दतां धावतां वनोद्भवाः वने उद्भूताः मार्गाः नष्टाः नाशं प्राप्ताः। पद्मिन्याः कमलिन्याः सकाशे मार्गं संरुध्य उत्तमं सार्थं संसुप्तं आसीत् ॥१०॥ ते सर्वे वनगजाः तं महीतले चेष्टमानं यतमानं सार्थं ममर्दुः। शरणार्थिनः सार्थिकाः वणिजः हाहाकारं प्रमुञ्चन्तः कुर्वन्तः ॥ ११ ॥

वनगुल्मांश्च धावन्तो निद्रान्धा बहवोऽभवन् ।
केचिद्दन्तैः करैः केचित्केचित्पद्भ्यां हता गजैः ॥ १२ ॥
निहतोष्ट्राश्वबहुलाः पदातिजनसंकुलाः ।
भयादाधावमानाश्च परस्परहतास्तदा ॥ १३ ॥
घोरान्नादान्विमुञ्चन्तो निपेतुर्धरणीतले ।
वृक्षेष्वारुह्य संरब्धा पतिता विषमेषु च ॥ १४ ॥
एवं प्रकारैर्बहुभिर्दैवेनाक्रम्य हस्तिभिः ।
राजन्विनिहतं सर्वं समृद्धं सार्थमण्डलम् ॥ १५ ॥
आरावः सुमहांश्चासीत्त्रैलोक्यभयकारकः ।
एषोऽग्निरुत्थितः कष्टस्त्रायध्वं धावताधुना ॥ १६ ॥
रत्नराशिर्विशीर्णोऽयं गृह्णीध्वं किं प्रधावत ।
सामान्यमेतद् द्रविणं न मिथ्या वचनं मम ॥ १७ ॥

बहवः मनुष्याः वनगुल्मान् वनस्थितान् वृक्षस्तंभान् धावन्तः निद्रान्धा अभवन् । केचिद् मनुष्या दन्तैः करैः शुण्डाभिः केचिद् पद्भ्यां गजैः हताः ॥ १२ ॥ निहतोष्ट्राश्वबहुलाः बहुलाः उष्ट्राः अश्वाः च निहताः, पदातिजन-संकुलाः पदातिजनाः संकुलिताः, भयात् आधावमानाः च तदा परस्परहताः परस्पराघातेनैव हताः ॥ १३ ॥ ते मनुष्याः घोरान् नादान् विमुञ्चन्तः धरणीतले निपेतुः । वृक्षेषु आरुह्य संरब्धाः संभ्रान्ताः विषमेषु विषमस्थानेषु पतिताः ॥ १४ ॥ एवं बहुभिः प्रकारैः हस्तिभिः दैवेन दैवप्रेरणेन आक्रम्य, हे राजन् ! सर्वं समृद्धं धनयुक्तं सार्थमंडलं विनिहतं विशेषेण नाशितम् ॥ १५ ॥ तदा तत्र त्रैलोक्यभयकारकः सुमहान् आरावः कोलाहल शब्द आसीत् । एषः कष्टः कष्टप्रदः अग्निः उत्थितः उत्पन्नः, त्रायध्वं, रक्षध्वं, अधुना धावत ॥ १६ ॥ अयं रत्नराशिः रत्नानां राशिः विशीर्णः पतितः तं गृह्णीध्वं, किं प्रधावत ? एतत् द्रविणं सामान्यं साधारणं उभयोः समं वर्तते, अस्मिन् विषये मम वचनं मिथ्या न ॥ १७ ॥

एवमेवाभिभाषन्तो विद्रवन्ति भयत्तदा।
पुनरेवाभिधास्यामि चिन्तयध्वं सकातराः॥ १८॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने दारुणे जनसंक्षये।
दमयन्ती च बुबुधे भयसंत्रस्तमानसा॥ १९॥
अपश्यद्वैशसं तत्र सर्वलोकभयंकरम्।
अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा बाला पद्मनिभेक्षणा॥ २०॥

तदा एवं एव अभिभाषन्तः भयात् विद्रवन्ति। हे सकातराः सभयाः जनाः! पुनः एव अभिधास्यामि कथयिष्यामि, चिन्तयध्वं विचारयध्वम् ॥ १८॥ तस्मिन् दारुणे भयंकरे जनसंक्षये जनानां नाशे तथा वर्तमाने सति भयसंत्रस्तमानसा भयेन त्रस्तमानसा दमयन्ती बुबुधे जागृतिं प्राप्ता॥ १९॥ तत्र सर्वलोकभयंकरं सर्वलोकभयावहं वैशसं क्लेशं अपश्यत् पद्मनिभेक्षणा कमलसदृशलोचना बाला दमयन्ती तत् अदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा भयभीता॥ २०॥

पाठ ७

१ (लट्) वर्तमानकाल परस्मैपद=१ भक्षयति, भक्षयतः, भक्षयन्ति। २ भक्षयसि, भक्षयथः, भक्षयथ। ३ भक्षयामि, भक्षयावः, भक्षयामः॥

(आत्मनेपद) = भक्षयते, भक्षयेते, भक्षयन्ते। २ भक्षयसे, भक्षयेथे, भक्षयध्वे। ३ भक्षये, भक्षयावहे, भक्षयामहे।

२ (लिट्) अनद्यतन परोक्ष–भूतकाल परस्मैपद = १ भक्षयांचकार, भक्षयांचक्रतुः, भक्षयांचक्रुः। २ भक्षयांचकर्थ, भक्षयांचक्रथुः, भक्षयांचक्र।३ भक्षयांचकार-चकर, भक्षयांचकृव, भक्षयांचकृम।

(आत्मनेपद) = १ भक्षयांचक्रे, भक्षयांचक्राते, भक्षयांचक्रिरे। २ भक्षयांचकृषे, भक्षयांचक्राथे, भक्षयांचकृद्वे। ३ भक्षयांचक्रे, भक्षयांचकृवहे, भक्षयांचकृमहे।

[सूचना—यहां " भक्षयां " के पश्चात् " आस, बभूव " आदिरूप लगकर भी रूप होते हैं । इस विषयमें पूर्वस्थलमें लिखा ही है ।]

३ (लुट्) अनद्यतन-भविष्यकाल-परस्मैपद = १ भक्षयिता, भक्षयितारौ, भक्षयितारः । २ भक्षयितासि, भक्षयितास्थः, भक्षयितास्थ । ३ भक्षयितास्मि, भक्षयितास्वः, भक्षयितास्मः ।

(आत्मनेपद) = १ भक्षयिता, भक्षयितारौ, भक्षयितारः । २ भक्षयितासे, भक्षयितासाथे, भक्षयिताध्वे । ३ भक्षयिताहे, भक्षयितास्वहे, भक्षयितास्महे ।

४ (लृट्) भविष्यकाल-परस्मैपद = १ भक्षयिष्यति, भक्षयिष्यतः, भक्षयिष्यन्ति । २ भक्षयिष्यसि, भक्षयिष्यथः, भक्षयिष्यथ । ३ भक्षयिष्यामि, भक्षयिष्यावः भक्षयिष्यामः ॥

(आत्मनेपद) = १ भक्षयिष्यते, भक्षयिष्येते, भक्षयिष्यन्ते। २ भक्षयिष्यसे, भक्षयिष्येथे, भक्षयिष्यध्वे । ३ भक्षयिष्ये, भक्षयिष्यावहे, भक्षयिष्यामहे ।

५ (लेट्) इसका प्रयोग वेदमेंही होता है ।

६ (लोट्) आशीर्वाद-परस्मैपद = १ भक्षयतु- भक्षयतात्, भक्षयताम्, भक्षयन्तु । २ भक्षय-भक्षयतात्, भक्षयतम्, भक्षयत । भक्षयानि, भक्षयाव, भक्षयाम ।

(अत्मनेपद) = १ भक्षयताम्, भक्षयेताम्, भक्षयन्ताम् । २ भक्षयस्व, भक्षयेथाम्, भक्षयध्वम् । ३ भक्षयै, भक्षयावहै, भक्षयामहै ।

७ (लङ्) अनद्यतन-भूतकाल-परस्मैपद = १ अभक्षयत्, अभक्षयताम्, अभक्षयन् । २ अभक्षयः, अभक्षयतम्, अभक्षयत । ३, अभक्षयम्, अभक्षयाव, अभक्षयाम ।

(आत्मनेपद) = १ अभक्षयत, अभक्षयेताम्, अभक्षयन्त । २ अभक्षयथाः, अभक्षयेथाम्, अभक्षयध्वम् । ३ अभक्षये, अभक्षयावहि, अभक्षयामहि ।

८ (लिङ्) विध्यर्थ-परस्मैपद = १ भक्षयेत्, भक्षयेताम्, भक्षयेयुः २ भक्षयेः, भक्षयेतम्, भक्षयेत। ३ भक्षयेयम्, भक्षयेव, भक्षयेम। (आत्मनेपद) = १ भक्षयेत, भक्षयेयाताम्, भक्षयेरन्। २ भक्षयेथाः भक्षयेयाथाम्, भक्षयेध्वम्। ३ भक्षयेय, भक्षयेवहि, भक्षयेमहि।

अब दशमगणके देखिये—

दशमगण उभयपद धातु।

प्रथ् = प्रख्यात होना। प्रथयति-ते। प्रथयांचकार।
प्री = संतुष्ट होना। प्रीणयति-ते। प्रीणयांचकार।
बध् = बांधना। बाधयति-ते। बाधयांचकार।
बंध् = ,, बंधयति-ते। बंधयांचकार।
भक्ष् = खाना। भक्षयति-ते। भक्षयांचकार।
भू = विचार करना। भावयति-ते। भावयांचकार।
भूष् = अलंकार धारण करना। भूषयति-ते। भूषयांचकार।
मण्ड् = भूषित करना। मण्डयति-ते। मण्डयांचकार।
मन्त्र् = विचार करना। मंत्रयति-ते मंत्रयांचकार।
मह् = पूजा करना। महयति-ते महयांचकार।
मान् = सम्मान करना। मानयति-ते। मानयांचकार।
मार्ग् = ढूंढना। मार्गयति-ते। मार्गयांचकार।
मार्ज् = शुद्ध करना। मार्जयति-ते। मार्जयांचकार।
मिश्र् = मिश्रण करना। मिश्रयति-ते। मिश्रयांचकार।
मुच् = मुक्त करना। मोचयति-ते। मोचयांचकार।
मूत्र् = मूतना। मूत्रयति-ते। मूत्रयांचकार।
मृज् = शुद्ध करना। मार्जयति-ते। मार्जयांचकार।
मृष् = सहन करना। मर्षयति-ते मर्षयांचकार।
यंत्र् = बंधन करना। यंत्रयति-ते। यंत्रयांचकार।

यम् = बांधना । यमयति-ते । यमयांचकार ।
युज् = योजना करना । योजयति-ते । योजयांचकार ।
रच् = रचना करना । रचयति–ते । रचयांचकार ।
रस् = रस लेना । रसयति–ते । रसयांचकार ।

संस्कृत वाक्यानि ।

१ विश्वामित्रः ग्रन्थं रचयति । कः एतत् अरचयत् ? यः एवं अरचयत् स इदानीं कुत्रः गतः ?

२ भृत्यः प्रभातसमये मम स्थानं मार्जयति । ते सर्वे दासाः तत्र न मार्जयांचक्रुः । त्वं च मार्जयिष्यसि किम् ?

३ यथा अश्वः मूत्रयति तथा श्वा न मूत्रयति । हस्ती प्रभूतं मूत्रयति । परन्तु मत्स्या न मूत्रयन्ति ।

४ मनुष्यः स्वदेहं अलंकारैः भूषयति । ज्ञानी पुरुषः एवं न भूषयति तस्य विद्या एव अलंकारः भवति ।

५ इदानीं कः अन्नं भक्षयति ? यः भक्षयितुं न इच्छति स इतः स्थानात् दूरं गच्छतु ।

६ रामः प्रजां प्रीणयांचकार । युधिष्ठिरः अपि सर्वाणि मित्राणि अप्रीणयत् । किं त्वं तथा प्रीणयिष्यसि ?

७ सर्वाणि अपि भैषज्यानि तस्मिन् पात्रे मिश्रय । त्वं तत् सर्वं मिश्रयितुं समर्थः असि वा न ? कदा ते वैद्याः भैषज्यानि मिश्रयांचक्रुः ?

८ राजा प्रीत्या सर्वान् दासान् अद्य वा श्वो वा मोचयिष्यति । ते राज–पुरुषाः तान् सर्वान् मोचयांचक्रुः ?

पाठक इस प्रकार वाक्य बनावें और धातुओंका उपयोग करनेका अभ्यास बढावें ।

पाठ ८

तत्र स्थितां कौसल्यां दृष्ट्वा भरतशत्रुघ्नौ रुरुदतुः । कौसल्याऽपि भरत-शत्रुघ्नौ दृष्ट्वा रुदती प्राह । हे भरत ! इदं ते निष्कण्टकं राज्यं प्राप्तम् । तव माता कैकेयी मां अपि तत्रैव प्रस्थापयितुं इच्छति यत्र कमलनेत्रो रामो गतः। त्वं वा तत्र नय यत्र रामः अस्ति। कौसल्यया एवमुक्तो भरतः कौसल्यायाश्चरणयोः पपात उवाच च। आर्ये! त्वं रामचन्द्रे मे विपुलां प्रीतिं जानास्येव । अजानन्तं निरपराधिनं मां किं एवं गर्हसे ?

तदा भरतं कौसल्याऽब्रवीत् । ते आत्मा धर्मान्न चलितः । वत्स ! त्वं सत्यप्रतिज्ञोऽसि । अतः सतां लोकान् अवाप्स्यसि । इत्युक्त्वा भ्रातृवत्सलं भरतं समीपं आनीय आलिंग्य च प्रभूतं रुरोद। एवं तयोर्विलपतोः शोकेन सा रात्रिर्जगाम।

एवं शोकसन्तप्तं भरतं वसिष्ठ ऋषिः उवाच। अलं शोकेन । नरपतेः दशरथस्य उत्तमं संयानं कुरु। तस्य वसिष्ठस्य आज्ञया धर्मज्ञो भरतो राज्ञः प्रेतकृत्यानि सर्वाण्यपि कारयामास । " क्व गतोऽसि तात मां कौसल्यां च त्यक्त्वा " इत्युक्त्वा भरतशत्रुघ्नौ विलेपतुः ।

वसिष्ठस्तु तावुत्थाप्याह । " युवयोः पितुः प्रेतस्य त्रयोदशोऽयं दिवसः । अतः शोकं त्यक्त्वा स्वानि कार्याणि कर्तुं उत्तिष्ठतम् । " इति ।

अथ चतुर्दशे दिवसे राजकर्मचारिणः समेत्य भरतमब्रुवन् - " त्वं अद्य अस्माकं राजा भव " इति ।

तच्छ्रुत्वा भरत उवाच- " हे जनाः । एतत् आभिषेचनिकं गृहीत्वा रामहेतोः अहं वनं गमिष्यामि । राम एव नः राजा भवतु । " इति ।

रामदर्शनेच्छया शीघ्रमेव भरतः प्रययौ । तस्याग्रतो मन्त्रिणः प्रययुः । सकैकेय्यश्च सर्वा अपि मातरः तान् एव अनुजग्मुः। यदा ते सर्वे शृंगवेरपुरं गंगातीरं च प्राप्ताः तदा तत्र गुह आगत्याब्रवीत् । " भरत ! धन्योऽसि त्वं यत् अयत्नादागतं राज्यं अपि त्यक्तुं इच्छसि रामहेतोः । " इति । तदा

भरतेन परिपृष्टो गुहोऽकथयत्– "एतादिंगुदीमूलं तृणं च, यत्र रामलक्ष्मणौ शयितौ।" इति। भरत आह– "हा हतोऽस्मि। सभार्यो रामो मम कृते ईदृशीं तृणशय्यां अधिशेते, अहमपि अद्यप्रभृति भूमौ तृणेषु एव शयिष्ये फलमूलाशनो भूत्वा जटाचीराणि च तथैव धारयामि यथा रामो धारयति।" इति।

दाशैः गंगां संतीर्य भरतो वनं प्रययौ। ततो भरद्वाजाश्रमं गत्वा नरश्रेष्ठो भरतः क्रोशादेव सर्वं जनं अवस्थाप्य वसिष्ठेनैव च केवलेन सह भरद्वाजं प्रणनाम। अनामयं च ते परस्परं पप्रच्छुः। भरद्वाजस्तु भरतमुवाच–"राज्यं खलु प्रशासतस्तव इहागमने किं कार्यम्? आचक्ष्व सर्वम्। नहि मे मनः शुध्यति।" तच्छ्रुत्वा भरत उवाच– "हतोऽस्मि, यदि भगवानपि एवं मां मन्यते न ममेष्टं मातुर्वचनं, नापि तदहं आददे। अयोध्यामेव प्रतिनेतुं रामं प्रसादयितुमहमागतोऽस्मि।"

भरद्वाजस्ततो भरतमुवाच– "युक्तमेवैतत्त्वयि राघववंशजे। अयं ते भ्राता रामश्चित्रकूटे वसति। तं श्वः गन्तासि।" ससैन्यः सपरिवारस्तां रजनीं तत्र व्युष्य भ्रातृवत्सलो भरतो चित्रकूटप्रदेशं प्राप्तः।

लक्ष्मणस्तु भरतसैन्यशब्दं श्रुत्वा अब्रवीत्– "व्यक्तं, कैकेय्याः सुतो भरतः आवां हन्तुं ससैन्य अत्राभ्येति। अतः वध्य एव हि सः।" इति। तं परिसांत्व्य राम आह– "भरतं हत्वा किं करिष्यामि, पितुः शासनान्मया, वन एव वस्तव्यम्। अहं तु मन्ये भरतः मां अयोध्यां नेतुं मां द्रष्टुं वा आगतः। अतः त्वया स निष्ठुरं न वाच्यः।" इति।

रामसंदर्शनाय उत्सुको भरतः स्वसैन्यं शैलस्य अधस्तात् एव संस्थाप्य, मातॄः मे शीघ्रं आनयेति गुरुं वसिष्ठं उक्त्वा, स्वयं अग्रे भूत्वा जगाम। गिरिशिखरं गत्वा तत्र रामं जटाजिनधरं चीरवाससं दृष्ट्वा तमभ्यधावत तस्य पादयोः पपात च "आर्य" इत्युक्त्वा पुनः किंचिदपि वक्तुं न शशाक। तं मूर्ध्नि आघ्राय, भरतं अंके आरोप्य तं सादरं पर्यपृच्छत्– "हे सत्यपराक्रम! पितुः शुश्रूषसे कच्चित्, किं निमित्तं राज्यं हित्वा इमं देशं प्रस्थितोऽसि?"

भरतस्ततो राममुवाच– "आर्य ! पुत्रशोकेन पीडितः तातः स्वर्गं गतः । नरके पतिष्यति मे जननी । दासभूतस्य मे प्रसादं कर्तुमर्हसि । अद्यैव राज्ये अभिषिच्यस्व। एतदर्थं हि सर्वा मातरः प्रजाश्चानुप्राप्ताः। प्राप्नुहि राज्यं कुरु च अस्मान् सर्वान् सकामानिति ।" सबाष्प एव भरतो रामस्य पादौ जग्राह ।

तदा राम उवाच– " मद्विधः सत्यव्रतः राज्यहेतोः पापं कथं आचरेत् न सूक्ष्ममपि पश्यामि त्वयि दोषम् । नापि जननीमर्हसि विगर्हितुम् । समादिष्टोऽस्मि मातापितृभ्यां वनं गच्छेति । कथं ततोऽन्यत्समाचरे । त्वया एव प्राप्तव्यं राज्यम् । दण्डकारण्ये पुनर्मया वस्तव्यम् । पित्रा दत्तं राज्यं त्वमुपभोक्तुमर्हसि । अहं तु दुर्जातः यस्य शोकेन पिता मृतः । हे पितः ! कुत्र गतोऽसि ? सीते ! हा मृतोऽस्मि। हे लक्ष्मण ! त्वमिदानीं पितृहीनोऽसि ।" एवं दीर्घमाक्रोशं कृत्वा रामो लक्ष्मणमुवाच । ' तातस्य जलक्रियार्थं गमिष्यामि । ' इति ।

शब्दार्थ

रुदू = रोना
रुदती = रोनेवाली
निष्कंटक = कांटोंसे रहित
विपुल = बहुत
अवाप्स्यसि = प्राप्त करेगा
विलपन् = रोनेवाला
संयान = प्रस्थान
आभिषेचनिकं=अभिषेकके संबन्धी
अनुजग्मुः = पीछे गये
इंगुदीमूलं = इंगुदी वृक्षका मूल
शयितः = सोया हुआ
दाश = धीवर लोग
क्रोश = कोस, दो मील
अनामय = नीरोगिता
रजनी = रात्री
व्युष्य = रहकर
परिसांत्व्य = शांत करके
निष्ठुर = क्रूरताके साथ
शैल = पहाड
अधस्तात् = नीचे
अग्रे भूत्वा = आगे होकर
चीरवासस् = वल्कलधारी
मद्विधः = मेरे समान
सूक्ष्म = थोडा भी
विगर्हितुं = निंदा करनेके लिये
वस्तव्य = रहना
दुर्जातः = अशुभ जन्मवाला
आक्रोश = कोलाहल

पाठ ९

दशमगणके उभयपदी धातु ।

रिच् = विभक्त करना। रेचयति-ते। रेचयांचकार।

लक्ष् = ध्यान देना। लक्षयति-ते। लक्षयांचकार।

लंघ् = उल्लंघन करना। लंघयति-ते। लंघयांचकार।

लोक् = प्रकाशना। लोकयति-ते। लोकयांचकार।

वच् = बोलना। वाचयति-ते। वाचयांचकार।

वर् = इच्छा करना। वरयति-ते। वरयांचकार।

वर्ण् = वर्णन करना, रंग देना। वर्णयति-ते। वर्णयांचकार।

वर्ध् = वर्धन करना। वर्धयति-ते। वर्धयांचकार।

वस् = निवास करना। वासयति-ते। वासयांचकार।

विडम्ब् = मखौल करना। बिडम्बयति-ते। बिडम्बयांचकार।

वृ = आवरणे। वारयति-ते। वारयांचकार।

वृज् = दूर करना। वर्जयति-ते। वर्जयांचकार।

व्यय् = व्यय करना। व्यययति-ते। व्यययांचकार।

शिष् = शेष रहना। शेषयति-ते। शेषयांचकार।

श्लिष् = आलिंगन देना। श्लेषयति-ते। श्लेषयांचकार।

सद् = प्राप्त होना। सादयति-ते। सादयांचकार।

सान्त्व् = शांति करना। सान्त्वयति-ते। सान्त्वयांचकार।

साम् = शांत करना। सामयति-ते। सामयांचकार।

सुख् = सुख देना। सुखयति-ते। सुखयांचकार।

स्तन् = शब्द करना। स्तनयति-ते। स्तनयांचकार।

स्तेन् = चोरी करना। स्तेनयति-ते। स्तेनयांचकार।

संस्कृत वाक्यानि।

१ स नैव लक्षयति। तौ कथं लक्षयतः ? ते सर्वेऽपि सर्वदा लक्षयन्ति। अहं लक्षयिष्ये। आवां लक्षयिष्यावहे। वयं सर्वेऽपि न लक्षयिष्यामहे॥

२ स हनुमान् इदानीं महासागरं लंघयति । कः एवं नदीं अलंघयत् । यूयं कदा सागरं लंघयिष्यथ ?

३ अहं न लोकयामि । त्वं विलोकयिष्यसि किम् ? कः तदा लोकयांचकार ? मम पुत्राः विलोकयांचक्रुः ।

४ पुत्राः इदानीं पुस्तकानि वाचयन्ति किम् ? के मनुष्याः पुस्तकानि वाचयितुं न शक्नुवन्ति ? ये वाचयांचक्रुः ते कुत्र गताः ?

५ चित्रकारः चित्रं वर्णयति । कवयः काव्येषु नायकान् वर्णयन्ति । त्वं किं अवर्णयः ? स वर्णयांचकार ।

६ धीरः पुरुषः तं सान्त्वयति । तथा तं त्वं सान्त्वयसि तथा स न सान्त्वयितुं शक्नोति । तं परिसान्त्वय इदानीम् ।

७ पुरुषः स्त्रीं सुखयति । मित्रं मित्रं सुखयति । ते पुत्रान् सुखयांचक्रुः । त्वं कं असुखयः ?

८ मेघः आकाशे स्तनयति । मेघाः आकाशे स्तनयांचक्रुः । स किमर्थं एवं स्तनयति ।

९ चोरः तत्र स्तेनयति । कः एवं अत्र अस्तेनयत् ? यः स्तेनयति सः स्तेन इति कथ्यते ।

१० पुरुषः स्त्रीं वरयति । स्त्री पुरुषं अवरयत् । के पुरुषाः वरयांचक्रुः ?

दशमगण उभयपद धातु ।

स्तोम् = प्रशंसा करना । स्तोमयति-ते । स्तोमयांचकार ।

स्निह् = स्नेह करना । स्नेहयति-ते । स्नेहयांचकार ।

स्पृह् = इच्छा करना । स्पृहयति-ते । स्पृहयांचकार ।

स्फुट् = फटना । स्फोटयति-ते । स्फोटयांचकार ।

स्वद् = रुचि लेना । स्वदयति-ते । स्वदयांचकार ।

हिंस्= हिंसा करना । हिंसयति-ते । हिंसयांचकार।

❀

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ ऋत्विक् देवतां स्तोमयति । यजमानः स्तोमयांचकार ।
२ अहं मोदकान् स्वादयामि । कः रसं अस्वादयत् ?
३ नरः पशून् हिंसयति । सिंहः हस्तिनं हिंसयति ।

पाठक इस प्रकार वाक्य करें और अपना अभ्यास बढावें । यदि पाठक इतने दशमगणके धातुओंको स्मरण करेंगे अथवा ध्यानमें धारण करेंगे, तो उनको संस्कृत-भाषा अतिशीघ्र आ जायगी । क्योंकि धातुओंको यथावत् जाननेसे ही संस्कृतमें सुगमतापूर्वक प्रवेश हो सकता है ।

ये दशमगण उभयपदके धातु दिये हैं। दशमगणमें प्रायः केवल परस्मैपदी धातु नहीं हैं । उभयपदमें परस्मैपद और आत्मनेपदके रूप होते हैं । परंतु केवल आत्मनेपदी थोडेसे हैं उनमेंसे कई यहां दिये जाते हैं—

दशमगण आत्मनेपदके धातु ।

अर्थ् = मांगना । अर्थयते । अर्थयांचक्रे । अर्थयिता । अर्थयिष्यते ।
कुत्स् = निंदा करना । कुत्सयते । कुत्सयांचक्रे । कुत्सयिता । कुत्सयिष्यते ।
गंध् = हिंसा करना । गंधयते । गंधयांचक्रे । गंधयिता ।
गर्व् = घमंड करना । गर्वयते । गर्वयांचक्रे । गर्वयिता । गर्वयिष्यते ।
चित् = विचार करना । चेतयते । चेतयांचक्रे ।
तर्ज् = निंदा करना । तर्जयते । तर्जयांचक्रे ।
त्रुट् = टूटना, काटना । त्रोटयते । त्रोटयांचक्रे ।
दंश् = काटना, दंश करना । दंशयते । दंशयांचक्रे ।
दंस् = काटना, दंश करना । दंसयते । दंसयांचक्रे ।
भर्त्स् = निंदा करना । भर्त्सयते । भर्त्सयांचक्रे ।
मृग् = ढूंढना । मृगयते । मृगयांचक्रे ।

यक्ष् = पूजा करना। यक्षयते। यक्षयांचक्रे।
वीर् = वीर्यवान् होना। वीरयते। वीरयांचक्रे।
संग्राम् = युद्ध करना। संग्रामयते। संग्रामयांचक्रे।

इनके रूप केवल आत्मनेपदके रूपोंके समान ही होते हैं। आत्मनेपदके रूप पूर्व पाठोंमें दिये ही हैं अब इनके रूप बनाकर वाक्य कीजिये—

संस्कृत-वाक्यानि।

१ भिक्षुकः धनं प्रार्थयते। त्वं किं न प्रार्थयसे? अहं अर्थये। स तद् अर्थयांचक्रे। ते अर्थयांचक्रिरे।

२ वीरः गर्वयते। वीरपुरुषौ गर्वयिष्येते। त्वं एवं मा गर्वय। यूयं गर्वयांचकृढ्वे।

३ त्वं चेतयसे। सर्वे चेतयिष्यन्ते। स चेतयांचकार।
४ सर्पः मनुष्यं दंशयते। सर्पा मनुष्यान् दंशयिष्यन्ते।
५ राजा राजपुरुषान् भर्त्सयते। क एन एवं भर्त्सयेत्।
६ राजा वने व्याघ्रं मृगयते। त्वं मृगयसे किम्?
७ यः वीरयते स एव वीरः भवति।
८ सर्वे पुरुषाः पानिपतनगरे संग्रामयांचक्रुः।
९ त्वं गंधयिष्यसे चेत् तर्हि स किं करिष्यति?
१० भ्रातरः परस्परं कुत्सयांचक्रुः।

इस प्रकार वाक्य बनाकर उनका बोलनेमें उपयोग करें और अपना अभ्यास बढावें।

पाठ १०

एवं शोचतां तेषां रामभरतादीनां रजनी न्यवर्तत। प्रभाते भरतो रामचन्द्रं सुहृन्मध्ये उपविष्टमब्रवीत्। 'मे माता कैकेयी त्वया सान्त्विता। राज्यं च मह्यं दत्तम्। तदेव राज्यं तुभ्यमहं ददामि। अकंटकं भुंक्ष्व राज्यम्' इति। रामस्तु तदा भरतं समाश्वासयत्।

राम उवाच– "न आत्मनः कामचारो हि पुरुषः। किंतु अनीश्वरः। सर्वेऽपि निचयाः क्षयान्ताः। संयोगा वियोगान्ताः। मरणान्तं च जीवितम्। अतस्त्वं स्वस्थो भव। अयोध्यां गच्छ, शोकं त्यज। यथा पित्रा नियुक्तोऽसि तथा कुरु। अहमपि पुण्यकर्मणा तेनैव पित्रा यत्र नियुक्तोऽस्मि तत्रैवा-स्यार्यस्य शासनं करिष्यामि उभयोरपि आवयोः स पिता मान्य एव।"

भरत उवाच– "हे सत्यप्रतिज्ञ राम! मयि प्रोषिते तव अनिष्टं पापं क्षुद्रया मात्रा कृतम्। बद्धोऽस्मि धर्मबंधेन तेन इमां मातरं पापकारिणीं न हन्मि। तातं च न परिगर्हे स अस्माकं दैवतम्। को हि धर्मज्ञ ईदृशं कुर्यात्? स्त्रियः प्रियचिकीर्षवः अन्तकाले हि पुरुषाः मुह्यन्ति इति श्रुतम्। तत्प्रत्यक्षीकृतमत्र। त्रायताम् भवान् सर्वान्। क्व च अरण्यं क्व च क्षात्रं। क्व जटाः क्व च प्रजापालनम्। अहं हि भवतः बालः ज्ञानेन स्थानेन जन्मना च सोऽहं भवति तिष्ठति कथं भूमिं पालयिष्यामि? मां किल्बि-षाद्रक्ष। नोचेद्भवता सार्धं अहमपि गमिष्यामि वनम्।" इति।

एतच्छ्रुत्वा लक्ष्मणाग्रजो रामः पुनः प्रत्युवाच – हे भ्रातः! पुरा किल तव पित्रा देवासुरसंग्रामे तव जनन्यै द्वौ वरौ दत्तौ। ताभ्यां वराभ्यां सा तव माता तव राज्यं मम प्रव्राजनं अयाचत। सोऽहं पितुः सत्यवादे स्थितः भवानपि पितरं सत्यवादिनं कर्तुमर्हति। सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः। भूमिः कीर्तिः यशो लक्ष्मीः सत्यमेव समनुवर्तन्ते। सत्यमेव ततो भजेत्। मम जीवता पित्रा यद्विक्रीतं, आहितं, क्रीतं वा तद्भरतेन मया वा न शक्यं लोपयितुम्। अहं पुनः वनात् भ्रात्रा लक्ष्मणेन सह यदा प्रत्यागतो भविष्यामि तदा पृथिव्याः पतिर्भविष्यामि।" इति।

पुनः भ्रातुः पादयोर्निपत्य भृशं प्रार्थयामास भरतः । " अहमेकस्तु सुमहद्राज्यं नोत्सहे रक्षितुं त्वं हि शक्तः लोकस्य परिपालने । " इति ।

रामः पुनरुवाच– " हे भरत ! लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयात् हिमवान् वा पर्वतः हिमं त्यजेत्, सागरो वा वेलामतीयात्, न त्वहं प्रतिज्ञां त्यजेयम् । " इति ।

भरतेनापि प्रतिज्ञातम् । स आह च– " आर्य ! देहि तव पादुके, एते हि सर्वराज्यस्य योगक्षेमं विधास्यतः " इति ।

तदा रामस्तथा कृत्वा पादुके भरताय प्रायच्छत् । सोऽपि पादुके संप्रणम्य उवाच– " चतुर्दश वर्षाण्यहं जटाचीरधारी वसिष्यामि नगराद् बहिः, आगमनं तव आकांक्षन्, ते पादुकयोः उपरि राज्यतंत्रं न्यस्यामि । संपूर्णे हि चतुर्दशे वर्षेऽहनि यदि न द्रक्ष्यामि त्वां हुताशनमेव प्रवेक्ष्यामि । " इति ।

तथेति रामः प्रतिज्ञाय सादरं शत्रुघ्नं भरतं च परिष्वज्य उवाच– " रक्ष मातरं कैकेयीम्, मा तां प्रति रोषं कुरु । " इति।

इत्युक्त्वा अश्रुपरीताक्षः रामः भ्रातरं भरतं विससर्ज । भरतोऽपि राघवं प्रदक्षिणं चकार । संपरिगृह्य पादुके च स अयोध्यां आजगाम ।

ततो मातृः अयोध्यायां निक्षिप्य भरतोऽब्रवीत्– " अहं नंदिग्रामे गमिष्यामि " ततो मंत्रिणामनुमते भरतो मुनिवेषधरो नंदिग्रामेऽवसत् । अभिषिच्य तत्रार्यपादुके सर्वदा तदधीनो राज्यं कारयामास ।

सर्वेषु भरतादिषु अपयातेषु सलक्ष्मणो रामचंद्रस्तत्र वासं नारोचयत् । ततो मुनिभिरभ्यनुज्ञातो रामचंद्रः सभार्यः वनं प्रविवेश ।

दण्डकारण्यं प्रविश्य तु रामस्तापसाश्रममंडलं ददर्श । तत्रत्यास्तापसाः सिद्धाश्च तान् रामचंद्रादीन् यथान्यायं तर्पयामासुः । कृतातिथ्यास्तु ते मुनीनामंत्र्य वनमेवान्वगाहन्त । रामलक्ष्मणौ तत्र भैरवं पुरुषादं विरोधं नाम राक्षसं ददृशतुः । अपक्रम्य वैदेहीं विराधोऽब्रवीत् । " भविष्यति

ममेयं भार्या । रुधिरं च युवयोः पास्यामि " इति । रामलक्ष्मणौ तु ततो दीप्तं शरवर्षं ववर्षतुः । सौमित्रिः सव्यं रामोऽपि तस्य दक्षिणं बाहुं बभञ्ज । रामबाणेन विद्धः विराधः भूमौ पपात, ममार च ।

एवं विराधं राक्षसं हत्वा ते शरभंगस्याश्रमं अभिजग्मुः । शरभंगोऽपि रामस्य आतिथ्यं यथायोग्यं चकार ।

शब्दार्थ

शोचत् = शोक करनेवाला	भजेत् = सेवा की जाय
रजनी = रात्री	विक्रीत = बिका, विक्रीत किया
सुहृद् = मित्र	आहित = रखा
सान्त्वित = शांत किया	क्रीत = खरीद लिया
अकंटक = निष्कंटक, दुःखरहित	भूयम् पुनः
समाश्वासयत् = धीरज दिया	अपेयात् = चली जाय
कामचारः = मन माना व्यवहार	हिमवत् = हिमालय पर्वत
क्षयान्तम् = नाश जिसके अंतमें है	हिमम् = बर्फ
स्वस्थ = शांत	वेला = सीमा
नियुक्त = प्रेरित	अतीयात् = उल्लंघन करे
शासन = आज्ञा	पादुका = खडावें
प्रोषित = प्रवासमें गया	प्रायच्छत् = दिया
गर्ह् = निंदा करना (धातु)	संप्रणम्य = नमन करके
प्रियचिकीर्षुः = प्रिय करनेवाला	आकांक्षन् = इच्छा करता हुआ
प्रत्यक्षीकृत = प्रत्यक्ष किया	हुताशन = अग्नि
त्रायताम् = रक्षण करे	परिष्वज्य = आलिंगन देकर
किल्बिष = पाप	रोषः = क्रोध
सत्यवाद = सत्यवचन	अश्रुपरिताक्षः = आंसुओंसे जिसके आंख भरे हैं ।
अनुवर्तते = पीछे चलता है	

विससर्ज = छोड दिया
प्रदक्षिणम् = प्रदक्षिणा
अपयात = गत, गए हुए
वासः = रहना
अरोचयत् = पसंद हुआ
अभ्यनुज्ञात = आज्ञा किया हुआ
मंडलम् समूह
आमंत्र्य = बुलाकर
भैरव = भयंकर
पुरुषाद = मनुष्य-भक्षक
सौमित्रिः = लक्ष्मण

समासाः ।

१ रामभरतादयः = रामश्च भरतश्च रामभरतौ। रामभरतौ आदी येषां ते रामभरतादयः।
२ सुहृन्मध्यम् = सुहृदां मध्यं ।
३ अकंटकम् = न विद्यन्ते कंटकाः यस्मिन् तत् ।
४ कामचारः = कामं यथा स्यात् तथा चरति ।
५ अनीश्वरः = नः ईश्वरः ।
६ क्षयान्तः = क्षयः अन्ते यस्य ।
७ मरणान्तम् = मरणं अन्ते यस्य ।
८ स्वस्थः = स्वस्मिन् स्थितः ।
९ पुण्यकर्मन् = पुण्यं कर्म यस्य ।
१० सत्यप्रातिज्ञः = सत्या प्रतिज्ञा यस्य ।
११ धर्मज्ञः = धर्मं जानाति इति ।
१२ प्रजापालनम् = प्रजानां पालनम् ।

पाठ ११

(महाभारत वनपर्व अ० ९४)

वामदेव उवाच— अयुद्धेनैव विजयं वर्धयेद्वसुधाधिपः ।
जघन्यमाहुर्विजयं युद्धेन च नराधिपः ॥ १ ॥

न चाप्यलब्धं लिप्सेत मूले नातिदृढे सति ।
नहि दुर्बलमूलस्य राज्ञो लाभो विधीयते ॥ २ ॥

यस्य स्फीतो जनपदः संपन्नप्रियराजकः ।
संतुष्टपुष्टसचिवो दृढमूलः स पार्थिवः ॥ ३ ॥

यस्य योधाः सुसंतुष्टाः सान्त्विताः सूपधास्थिताः ।
अल्पेनापि स दण्डेन महीं जयति पार्थिवः ॥ ४ ॥

वामदेव उवाच— वसुधाधिपः पृथिवीपतिः अयुद्धेनैव युद्धेन विना एव विजयं वर्धयेत जयं सम्पादयेत् । हे नराधिप, राजन्, युद्धेन विजयं युद्धद्वारा प्राप्तं विजयं जघन्यं निकृष्टं आहुः कथयन्ति ॥ १ ॥ तथा मूले नातिदृढे न सति, निर्बले राज्यशासने सति, अलब्धं अप्राप्यं न लिप्सेत न इच्छेत् । हि यस्मात्कारणात् दुर्बलमूलस्य अशक्तमूलस्य राज्ञः नरपतेः लाभः न विधीयते न भवति ॥ २ ॥ यस्य नराधिपस्य जनपदः प्रजासमूहः स्फीतः समृद्धिं गतः, संपन्नप्रियराजकः संपन्नाश्च प्रियाश्च राज्यशासकाः यस्य सः, सन्तुष्टपुष्टसचिवः सन्तुष्टाश्च पुष्टाश्च मन्त्रिणः यस्य सः, पार्थिवः राजा 'दृढमूलः' भवति ॥ ३ ॥ यस्य राज्ञः योधाः सैनिकाः सुसंतुष्टाः सम्यग् तुष्टाः सान्त्विताः सुखिताः सूपधास्थिताः सम्यग परीक्षिताः भवन्ति, स पार्थिवः धराधिपः अल्पेनापि लघुनापि दण्डेन महीं पृथिवीं जयति ॥ ४ ॥

पौरजानपदा यस्य भूतेषु च दयालवः ।
सधना धान्यवन्तश्च दृढमूलः स पार्थिवः ॥ ५ ॥

प्रतापकालमधिकं यदा मन्येत चात्मनः ।
तदा लिप्सेत मेधावी परभूमिं धनान्युत ॥ ६ ॥

भोगेषूदयमानस्य भूतेषु च दयावतः ।
वर्धते त्वरमाणस्य विषयो रक्षितात्मनः ॥ ७ ॥

तक्षेदात्मानमेवं स वनं परशुना यथा ।
यः सम्यग् वर्तमानेषु स्वेषु मिथ्या प्रवर्तते ॥ ८ ॥

नैव द्विषन्तो हीयन्ते राज्ञो नित्यमनिघ्नतः ।
क्रोधं निहन्तुं यो वेद तस्य द्वेष्टा न विद्यते ॥ ९ ॥

यस्य पार्थिवस्य पौरजानपदाः पुरवासिनः प्रजाश्च भूतेषु प्राणिमात्रेषु दयालवः दयावन्तः, सधना धनेन सहिता धान्यवन्तश्च धान्ययुक्ताश्च भवन्ति सः पार्थिवः 'दृढमूलः' मन्तव्यः ॥ ५ ॥ यदा राजा आत्मनः स्वस्य अधिकं विशेषं प्रतापकालं प्रभावसमयं मन्येत अवबुध्येत, तदा मेधावी बुद्धिमान् (स राजा) परभूमिं परेषां भूमिं, उत तथा धनानि द्रव्याणि लिप्सेत इच्छेत् ॥ ६ ॥ भोगेषु उदयमानस्य वर्धमानस्य, च तथा भूतेषु प्राणिषु दयावतः करुणाशीलस्य, त्वरमाणस्य कर्म शीघ्रं सम्पादयतः, रक्षितात्मनः आत्मरक्षायां समर्थस्य राज्ञ एव विषयः राष्ट्रं वर्धते वृद्धिं प्राप्नोति ॥ ७ ॥ यः सम्यक् वर्तमानेषु विद्यमानेषु स्वेषु आत्मीयजनेषु मिथ्या प्रवर्तते आचरते स आत्मानं एवं तक्षेत् यथा वनं अरण्यं परशुना तक्षेत् ॥ ८ ॥ नित्यं सर्वदा अनिघ्नतः राज्ञः अहिंसकस्य पृथिवीपतेः द्विषन्तः शत्रवः नैव हीयन्ते न न्यूनाः भवन्ति, यः क्रोधं निहन्तुं नियन्तुं वेद जानाति तस्य द्वेष्टा द्वेषकर्ता न विद्यते नैव भवति ॥ ९ ॥

यदार्यजनविद्विष्टं कर्म तन्नाचरेद् बुधः ।
यत्कल्याणमभिध्यायेत्तत्रात्मानं नियोजयेत् ॥१०॥

नैवमन्येऽवजानन्ति नात्मना परितप्यते ।
कृत्यशेषेण यो राजा सुखान्यनुबुभूषति ॥ ११ ॥

इदं वृत्तं मनुष्येषु वर्तते यो महीपतिः ।
उभौ लोकौ विनिर्जित्य विजये सम्प्रतिष्ठते ॥१२॥

भीष्म उवाच— इत्युक्तो वामदेवेन सर्वं तत्कृतवान्नृपः ।
तथा कुर्वंस्त्वमप्येतौ लोकौ जेता न संशयः ॥१३॥

यत् कर्म कार्यं आर्यजनविद्विष्टं श्रेष्ठपुरुषैः निंदितं अस्ति तत् कर्म बुधः बुद्धिमान् राजा न आचरेत् न कुर्यात् । यत्कल्याणं अभिध्यायेत् येन कर्मणा मङ्गलं स्यात् तत्र आत्मानं नियोजयेत् ॥ १० ॥ यो राजा नरपतिः कृत्यशेषेण कर्तव्यपालनेन सुखानि अनुबुभूषति अनुभवितुं इच्छति तं राजानं अन्ये नैव अवजानन्ति तस्य अवज्ञां नैव कुर्वन्ति ॥ ११ ॥ यः महीपतिः यः राजा मनुष्येषु प्रजासु इदं वृत्तं व्यवहारं वर्तते आचरते स राजा उभौ लोकौ मर्त्यलोकं स्वर्गं च विनिर्जित्य विजये सम्प्रतिष्ठते सर्वथा साफल्यं प्राप्नोति ॥ १२ ॥ भीष्म उवाच—ऋषिना वामदेवेन इत्युक्तः इत्थं उपदिष्टः नृपः वसुमना नाम नृपतिः तत्सर्वं कृतवान् । त्वमपि (हे युधिष्ठिर, त्वमपि) तथा तद्वत् कुर्वन् एतौ उभौ जेता भविष्यसि, न संशयः अस्मिन् विषये संशयो नास्ति ॥ १३ ॥

वेद-प्रवेश

(मरुद्देवताका मन्त्रसंग्रह)

'**वेदप्रवेश**' परीक्षाकी पाठविधि, ५०० मन्त्रोंकी पढाई । इसमें भी उपर्युक्त प्रकार मंत्र, अन्वय, अर्थ, भावार्थ और टिप्पणी है । मू. ५) रु.डा.व्य. ॥।) रु.

आश्विनौ-देवताका मंत्रसंग्रह

इसमें भी मंत्र, पद, अन्वय, अर्थ, भावार्थ और टिप्पणी आदि हैं । इसम ६८९ मंत्र हैं । मूल्य ५) रु. डा. व्य. १) रु.

वेदपरिचय

(भाग १-२-३)

'**वेदपरिचय**' परीक्षाके लिये ये पुस्तक तैयार किये हैं । ये ग्रन्थ इतने सुबोध, सुपाठ्य और आसान बनाये हैं कि इनसे अधिक सुबोध पाठविधि होही नहीं सकती । सर्वसाधारण स्त्रीपुरुष भी अपना थोडासा नियत समय इस कार्यके लिये प्रतिदिन देंगे, तो ४-५ वर्षोंमें वे वेदज्ञ हो सकते हैं। इन तीन भागोंमें ३०० वेद-मंत्र हैं ।

इनमें मंत्र, उसके पद, अन्वय, अर्थ, प्रत्येक पदका अर्थ, भावार्थ, मन्त्रका बोध, प्रत्येक पदके विशेष अर्थ, मन्त्रके पाठभेद, उनका अर्थ यह दिया है । प्रथम भाग मू. १॥); द्वितीय भाग मू. १॥); तृतीय भाग मू. २) रु.

वेदका स्वयं-शिक्षक, भाग १-२

जो पाठक प्रतिदिन आधा घंटा इसके अध्ययनके लिये देंगे, उनका प्रवेश वेदके मंदिरमें सुगमतासे हो सकता है । इसके दो भाग हैं । प्रत्येक भागका मू. १॥ रु. तथा डा. व्य. ।-)

मन्त्री- **स्वाध्याय-मण्डल**, 'आनंदाश्रम' **किल्ला-पारडी**, (सूरत)

संस्कृत-पाठ-माला

(संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

पंचदशो भागः ।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मण्डल, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

अष्टम वार

संवत २००७, शके १८७२, सन १९५०

मूल्य ८ आने ।

वेदोंकी संहिताएँ

	मू.	डा. व्य.
(१) **ऋग्वेद** (इसमें सर्वानुक्रम, देवतासूची, ऋषिसूची, मंत्रसूची आदि भी है।)	६)	१॥)
(२) **यजुर्वेद** (वाजसनेयि-संहिता)	३)	१॥)
(३) [यजुर्वेद] काण्व-संहिता	४)	॥)
(४) ,, मैत्रायणी-संहिता	६)	१)
(५) ,, काठक-संहिता	६)	१)
(६) **यजुर्वेद-सर्वानुक्रम सूत्र**	१॥)	॥)
(७) **यजुर्वेद** वा० सं० **पादसूची**	१॥)	॥)
(८) **ऋग्वेद-मंत्रसूची**	२)	॥)

सामवेद कौथुमशाखीयः
ग्रामगेय (वेय प्रकृति) गानात्मकः
प्रथमः तथा द्वितीयो भागः

(१) इसके प्रारंभमें संस्कृत भूमिका है और पश्चात् '**प्रकृतिगान**' तथा '**आरण्यकगान**' है। प्रकृतिगानमें **आग्नेयपर्व** (१८१ गान) **ऐन्द्रपर्व** (६३३गान) तथा '**पवमानपर्व**' (३८४ गान) ये तीन पर्व और कुल ११९८ गान हैं। **आरण्यकगानमें अर्कपर्व** (८९ गान), **द्वन्द्वपर्व** (७७ गान), **शुक्रियपर्व** (८४ गान), और **वाचोव्रतपर्व** (४० गान) ये चार पर्व और कुल (२९० गान) हैं।

इसमें पृष्ठके प्रारंभमें ऋग्वेद-मंत्र है आर सामवेदका मंत्र है और पश्चात् गान है। इसके पृष्ठ ४३४ और मूल्य ६) रु- तथा डा. व्य. ॥) रु. है।

(२)

उपर्युक्त पुस्तक केवल गान मात्र छपा है। उसके पृष्ठ २८४ और मूल्य ४) रु. तथा डा. व्य. ॥) रु. है।

संस्कृत-पाठ-माला ।

(संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

पञ्चदशो भागः ।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

अध्यक्ष - स्वाध्यायमंडल, साहित्यवाचस्पति

अष्टम वार

संवत् २००७, शक १८७२, सन १९५१

द्वितीय, चतुर्थ और षष्ठ गणके
क्रियापद ।

गत १३ वें भागमें प्रथमगण और १४ वे भागमें दशम गणके क्रिया-पद बनानेकी विधि बताई है । ये ही गण विशेष उपयोगी धातुओंसे परिपूर्ण हैं और इनमें ही सबसे अधिक धातुओंकी संख्या है । इसलिये ये दो गण अच्छी प्रकार हुए तो आधेसे अधिक धातु हो चुके । अब थोडेसे धातु अन्य आठ गणोंमें हैं । उनमेंसे तीन गण अर्थात् द्वितीय, चतुर्थ और षष्ठ गणोंके धातुओंसे क्रियापद बनानेकी विधि इस पुस्तकमें बतानी है । आशा है कि पाठक इसका अच्छा अभ्यास करेंगे ।

सुबोधताके लिए इस पुस्तकमें प्रथम षष्ठगण, पश्चात् चतुर्थ गण और अंतमें द्वितीयगणके धातु दिये हैं ।

स्वाध्याय-मण्डल 'आनंदाश्रम' किल्ला-पारडी (जि० सूरत)	लेखक श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर बी. ए.
भारत-मुद्रणालय, 'आनंदाश्रम' किल्ला-पारडी (जि० सूरत)

ॐ

संस्कृत-पाठ-माला ।

पञ्चदशो भागः ।

पाठ १

षष्ठगणके धातु ।

इससे पूर्व बताया है कि प्रथम गणके धातुओंको प्रत्यय लगनेके पूर्व " अ " लगता है और दशम गणके धातुओंको " अय " लगता है उसी प्रकार इस षष्ठ गणके धातुओंको ' अ ' लगता है । परन्तु प्रथम गणका ' अ ' ह्रस्व स्वरोंका गुण करनेवाला है और प्रायः यह षष्ठ गणका ' अ ' गुण नहीं करता । जैसा—

१ बुध् (जानना) प्रथम गण = बोधति, बोधतः, बोधन्ति ।

२ गुज् (शब्द करना) षष्ठ गण = गुजति, गुजतः, गुजन्ति ।

यदि ' बुध् ' धातु षष्ठ गणमें होता तो उसका ' बुधति ' हो जाता और यदि ' गुज् ' धातु प्रथम गणमें होता तो उसका रूप ' गोजति ' हो जाता । इतना इन गणोंमें भेद है । पाठक इस भेदको ध्यानमें धारण करें । शेष षष्ठ गणके धातुओंके रूप बहुत अंशमें प्रथम गणके समान ही होते हैं, परन्तु पूर्वोक्त गुण होने न होनेका भेद ही विशेष प्रधान स्थान रखता है । अब देखिये इसके रूप निम्न प्रकार होते हैं—

' चल् ' (चलना)

१ लट् (वर्तमान काल) = १ चलति, चलतः, चलन्ति । २ चलसि चलथः, चलथ । ३ चलामि, चलावः, चलामः ।

२ लिट् (अनद्यतन परोक्षभूत) १ चचाल, चेलतुः, चेलुः । २ चेलिथ चेलथुः, चेल । ३ चचाल, चेलिव, चेलिम ।

३ लुट् (अनद्यतन भविष्य) = १ चलिता, चलितारौ, चलितारः । २ चलितासि, चलितास्थः, चलितास्थ । ३ चलितास्मि, चलितास्वः, चलितास्मः ।

४ लृट् (भविष्य) = १ चलिष्यति, चलिष्यतः, चलिष्यन्ति । २ चलिष्यसि, चलिष्यथः, चलिष्यथ । ३ चलिष्यामि, चलिष्यावः, चलिष्यामः ।

५ लेट् = (इसका प्रयोग वेदमें होता है)

६ लोट् (आज्ञार्थ) १ चलतु, चलताम्, चलन्तु । २ चल, चलतम्, चलत । ३ चलानि, चलाव, चलाम ।

७ लङ् (अनद्यतन भूत) १ अचलत्, अचलताम्, अचलन् । २ अचलः अचलतम्, अचलत । ३ अचलम्, अचलाव, अचलाम ।

८ लिङ् (विधिलिङ्) = १ चलेत्, चलेताम्, चलेयुः । २ चलेः चलेतम्, चलेत । ३ चलेयम्, चलेव, चलेम । (आशीर्लिङ्) = १ चल्यात्, चल्यास्ताम्, चल्यासुः । २ चल्याः, चल्यास्तम्, चल्यास्त । ३ चल्यासम्, चल्यास्व, चल्यास्म ।

९ लुङ् (भूतकाल) = १ अचालीत्, अचालिष्टाम्, अचालिषुः । २ अचालीः, अचालिष्टम्, अचालिष्ट । ३ अचालिषम्, अचालिष्व, अचालिष्म ॥

१० लृङ् (हेतुहेतुमद्भावार्थ)= १ अचलिष्यत्, अचलिष्यताम्, अचलिष्यन् । २ अचलिष्यः, अचलिष्यतम्, अचलिष्यत । २ अचलिष्यम्, अचलिष्याव, अचलिष्याम ॥

पाठक इस प्रकार षष्ठगणके धातुके परस्मैपदी रूप बनावें-

षष्ठ-गण परस्मैपदके धातु ।

इष् = इच्छा करना । इच्छति । इषेय । एषिता, एष्टा । एषिष्यति ।
उज्झ् = छोडना । उज्झति । उज्झाञ्चकार । उज्झिता । उज्झिष्यति ।

ऋच् = स्तुति करना। ऋचति। आनर्च। अर्चिता। अर्चिष्यति।
ऋच्छ् = जाना। ऋच्छति। आनर्च्छ। ऋच्छिता। ऋच्छिष्यति।
कुच् = संकोच होना। कुचति। चुकोच। कुचिता। कुचिष्यति।
कुट् = कुटित होना। कुटति। चुकोट। कुटिता। कुटिष्यति।
कृत् = काटना। कृन्तति। चकर्त। कर्तिता। कर्तिष्यति, कर्त्स्यति।
कॄ = फेंकना। किरति। चकार। करिता। करिष्यति।
क्षुर् = खुरचना। क्षुरति। चुक्षोर। क्षोरिता। क्षोरिष्यति।
गु = शौच करना। गुवति। जुगाव। गुता। गुष्यति।
गुज् = शब्द करना। गुजति। जुगोज। गुजिता। गुजिष्यति।
गुञ्ज् = अस्पष्ट शब्द करना। गुञ्जति। जुगुञ्ज। गुंजिता।
गुञ्जिष्यति।
गुम्फ् = माला करना। गुम्फति। जुगुम्फ। गुम्फिता। गुम्फिष्यति।
गॄ = निगलना। गिरति। जगार। गरिता। गरिष्यति।
गिलति। जगाल। गलिता। गलिष्यति।
घुर् = शब्द करना। घुरति। जुघोर। घोरिता। घोरिष्यति।
घूर्ण = घुमाना। घूर्णति। जुघूर्ण। घूर्णिता। घूर्णिष्यति।
चल् = चलना। चलति। चचाल। चलिता। चालिष्यति।

१ त्वं किं इच्छसि? तौ किं इच्छतः? ते क्रीडितुं इच्छन्ति। स कदा क्रीडां कर्तुं एषिष्यति? सर्वे बालकाः धावितुं एषिष्यन्ति किम्?

२ पण्डिताः परमात्मानं ऋचन्ति। कः एवं देवं आनर्च? यदि त्वं अर्चिष्यसि तर्हि अहमपि देवं तथा अर्चिष्यामि।

३ यथा काष्ठकारः काष्ठं कृन्तति तथा वयं न कृन्तामः। नापितः केशान् कृन्तति।

४ बालकः बालकेन सह गुजति। तदा एवं कः जुगोज? यूयं कदा गुजिष्यथ? सर्वे पुरुषाः तत्र गुजन्ति।

५ बालिकाः पुष्पाणां मालाः गुम्फन्ति। मालाकारः उद्यानात् पुष्पाणि

आनयति मालां च गुम्फति । त्वं कदा मालां गुम्फिष्यसि ?

६ यंत्रकारः चक्राणि घूर्णति । त्वं किं घूर्णसि ? यदा स घूर्णिष्यति तदा त्वं किं करिष्यसि ?

७ सर्वे मानवाः सायंकाले भ्रमणाय चलिष्यन्ति किम् ? बालकाः भ्रमणाय चलन्तु । त्वं अपि भ्रमणाय चल ।

पाठक इस प्रकार धातुओंके रूप बनाकर वाक्य बनावें, और अपना अभ्यास बढावें । अपने व्यवहारके इस प्रकार वाक्य बनानेसे ही संस्कृतमें बातचीत करनेका अभ्यास बढ सकता है ।

पाठ २

अब इस पाठमें षष्ठगण परस्मैपदी धातुओंके कुछ रूप पाठकोंकी सुगमताके लिए दिये जाते हैं ।

' जुड् ' = (जोडना)

१ लट् = (वर्तमान काल) = १ जुडति, जुडतः, जुडन्ति । २ जुडसि, जुडथः, जुडथ । ३ जुडामि, जुडावः, जुडामः ।

' तिल् ' = (तेल लगाना)

२ लिट् = (अनद्यतन-परोक्षभूत) १ तितेल, तितिलतुः, तितिलुः, २ तितेलिथ, तितिलथुः, तितिल । ३ तितेल, तितिलिव तितिलिम ।

' तृप् ' = (तृप्त होना)

३ लुट् = (अनद्यतन-भविष्य) = १ तर्पिता, तर्पितारौ, तर्पितारः २ तर्पितासि, तर्पितास्थः, तर्पितास्थ । ३ तर्पितास्मि, तर्पितास्वः, तर्पितास्मः ।

[**सूचना**- इस धातुके "तर्प्ता, त्रप्ता" ऐसे भी और रूप होते हैं]

'त्रुट्' = (काटना)

४ लृट् = (भविष्य) = १ त्रुटिष्यति, त्रुटिष्यतः, त्रुटिष्यन्ति।
२ त्रुटिष्यसि, त्रुटिष्यथः, त्रुटिष्यथ। ३ त्रुटिष्यामि, त्रुटिष्यावः,
त्रुटिष्यामः।

५ लेट् = (इसका प्रयोग वेदमें ही केवल होता है)

'धू' = (हिलाना)

६ लोट् = (आज्ञार्थ) =१ धुवतु, धुवताम्, धुवन्तु। २ धुव, धुवतम्,
धुवत। ३ धुवानि, धुवाव, धुवाम।

'नू' = (स्तुति करना)

७ लङ् = (अनद्यतनभूत) = १ अनुवत्, अनुवताम्, अनुवन्।
२ अनुवः, अनुवतम्, अनुवत। ३ अनुवम्, अनुवाव, अनुवाम।

इस प्रकार अन्य धातुओंके रूप बनाइये—

षष्ठ-गण परस्मैपदके धातु।

चुट् = छेदना। चुटति। चुचोट। चुटिता। चुटिष्यति।
छुर् = भेदन करना। छुरति। चुच्छोर। छुरिता। छुरिष्यति।
जुड् = जोडना, बांधना। जुडति। जुजोड। जुडिता। जुडिष्यति।
तिल् = तेल लगाना। तिलति। तितेल। तेलिता। तेलिष्यति।
तुट् = टूटना, झाडना। तुटति। तुतोट। तुटिता तुटिष्यति।
तुड् = तोडना। तुडति। तुतोड। तुडिता। तुडिष्यति।
तृप् = तृप्त होना। तृपति। ततर्प। तर्पिता। तर्पिष्यति।
त्रुट् = काटना। त्रुटति। तुत्रोट। त्रुटिता। त्रुटिष्यति।
दृभ् = संबंध जोडना। दृभति। ददर्भ। दर्भिता। दार्भिष्यति।
संदृभ् = ,, ,, । संदृभति। संददर्भ। संदार्भिता। संदर्भिष्यति।
धि = धारण करना। धियति। दिधाय। धेता। धेष्यति।
धू = हिलाना। धुवति। दुधाव। धुविता। धुविष्यति।
ध्रु = गति करना, स्थिर होना। ध्रुवति। दुध्राव। ध्रुता। ध्रुष्यति।

नू = स्तुति करना । नुवति । नुनाव । नुविता । नुविष्यति ।
पिश् = रूप देना । पिंशति । पिपेश । पेशिता । पेशिष्यति ।
पुण् = शुभकर्म करना । पुणति । पुपोण । पोणिता । पोणिष्यति ।
पुर् = आगे जाना । पुरति । पुपोर । पोरिता । पोरिष्यति ।
पृण् = संतुष्ट होना । पृणति । पपर्ण । पर्णिता । पर्णिष्यति ।
प्रच्छ् = पूछना । पृच्छति । पप्रच्छ । प्रष्टा । प्रक्ष्यति ।
बृह् = उद्योग करना । बृहति । बबर्ह । बर्हिता । बर्हिष्यति ।
भुज् = कुटिल होना । भुजति । बुभोज । भोक्ता । भोक्ष्यति ।
मस्ज् = स्नान करना । मज्जति । ममज्ज । मंक्ता । मंक्ष्यति ।
मृ = मरना । ममार । मर्ता । मरिष्यति ।

संस्कृत–वाक्यानि ।

१ यथा नापितस्य क्षुरः छुरति तथा शूरस्य शस्त्राणि अपि छुरन्ति एव । तव छुरिकाः बालकं छुरिष्यन्ति ।

२ त्वं किमर्थं वृक्षं तुडसि ? कः उद्यानस्य वृक्षान् तुतोड ? यः वृक्षं तुतोड स कुत्र अस्ति ।

३ स देवान् मनुष्यान् पितॄन् च अन्नेन तर्पिष्यति । यः सदा अन्नादिना देवादीन् तृपति स एव श्रेष्ठो मनुष्यः ।

४ वायुः वनस्थान् वृक्षान् धुवति । त्वं किमर्थं तत् काष्ठं अधुवः ? स एव वस्त्रं धुवतु । त्वं तत् तथा मा धुव ।

५ त्वं अधुना कं नुवसि ? सर्वे मानवाः परमात्मानं नुवन्तु । कः अपि मानवं मा नुवतु ।

६ शृणु स त्वां किं पृच्छति । यूयं पृच्छथ ? ते प्रक्ष्यन्ति । यूयं सर्वे अपि प्रश्नान् पृच्छथ ।

७ छात्राः नदीजले मज्जन्ति । ते सर्वे मनुष्याः तस्मिन् अगाधे जले ममज्जुः ! त्वं कदा मंक्ष्यसि ?

८ सर्वेऽपि प्राणिनः जलेन उदरं पृणन्ति । त्वं कदा तत्पात्रं अपृणः ? मेघः जलेन पृथिवीं पर्णिष्यति ।

९ अहं इदानीं तिलामि । स श्वः तेलिष्यति । त्वं कदा तेलिष्यसि ? यदा सर्वे तेलिष्यन्ति तदा अहमपि तेलिष्यामि ।

पाठक इस ढंगसे वाक्य बनावें और धातुओंके रूप बनानेका अभ्यास करें । अब थोडेसे धातु दिये जाते हैं-

षष्ठगण परस्मैपदी धातु ।

मृश् = विचार करना । मृशति । ममर्श । म्रष्टा । म्रक्ष्यति ।

रुज् = भग्न होना । रुजति । रुरोज । रोक्ता । रोक्ष्यति ।

लिख् = लिखना । लिखति । लिलेख । लेखिता । लेखिष्यति ।

विश् = प्रवेश करना । विशति । विवेश । वेष्टा । वेक्ष्यति ।

व्रश्च् = छेदन करना । वृश्चति । वव्रश्च । व्रश्चिता, व्रष्टा । व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति ।

शुभ् = शोभित होना । शुभति । शुशोभ । शोभिता । शोभिष्यति ।

सुर् = ऐश्वर्ययुक्त होना । सुरति । सुषोर । सोरिता । सोरिष्यति ।

सू = प्रेरणा करना । सुवति । सुषाव । सविता । सविष्यति ।

सृज् = उत्पन्न करना । सृजति । ससर्ज । स्रष्टा । स्रक्ष्यति ।

स्पृश् = स्पर्श करना । स्पृशति । पस्पर्श । स्प्रष्टा । स्प्रक्ष्यति ।

स्फुट् = विकसित होना । स्फुटति । पुस्फोट । स्फुटिता । स्फुटिष्यति ।

स्फुर् = स्फुरण होना । स्फुरति । पुस्फोर । स्फुरिता । स्फुरिष्यति ।

स्फुल् = हिलना । स्फुलति । पुस्फोल । स्फुलिता । स्फुलिष्यति ।

हिल् = हिलना, भाव करना । हिलति । जिहेल । हेलिता । हेलिष्यति ।

कुछ लकारोंके रूप ।

'विश्' = (घुसना)

लिङ् (विधिलिङ्) = १ विशेत्, विशेताम्, विशेयुः । २ विशेः, विशेतम्, विशेत । ३ विशेयम् , विशेव , विशेम ॥

(आशीर्लिङ्) = १ विश्यात्, विश्यास्ताम्, विश्यासुः। २ विश्याः, विश्यास्तम्, विश्यास्त । ३ विश्यासम् , विश्यास्व, विश्यास्म ॥

९ लुङ् (भूतकाल) = १ अविक्षत्, अविक्षताम्, अविक्षन्। २ अविक्षः, अविक्षतम्, अविक्षत । ३ अविक्षम्, अविक्षाव, अविक्षाम ॥

१० लृङ् (हेतुहेतुमद्भावार्थ) = १ अवेक्ष्यत्, अवेक्ष्यताम्, अवेक्ष्यन्। २ अवेक्ष्यः, अवेक्ष्यतम्, अवेक्ष्यत। ३ अवेक्ष्यम्, अवेक्ष्याव, अवेक्ष्याम ॥

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ त्वं किं इदानीं मृशसि ? अहं किमपि न मृशामि। त्वं एव सर्वं मृश। मनुष्याः मृशन्तु । त्वं किं न म्रक्ष्यसि ?

२ बालकाः स्वगृहे विशन्तु। पक्षिणः तत्र न वेक्ष्यन्ति । त्वं कदा तस्मिन् गृहे वेक्ष्यसि ?

३ अधिकारिणः पत्राणि लिखन्ति । रामः एकं पत्रं लिलेख। यदि त्वं निबन्धं लेखिष्यसि तर्हि अहं नैव लेखिष्यामि ।

४ मलिनाः पुरुषाः तत्र जलं स्पृशन्तु । त्वं तान् रुग्णान् न स्पृश । अहमेव तं स्प्रक्ष्यामि ।

५ नटः तत्र कथं हिलति तत् पश्य। त्वं तथा न हिलसि । कदा त्वं तथा अहिलः यथा स हिलति ।

६ त्वं सर्वानपि वृक्षान् किमर्थं व्रश्चसि ? स कदा वनस्पतीन् वव्रश्च ? अहं कदापि नैव व्रश्चिष्यामि ।

७ नरपतिः सभायां शुभति। त्वमपि तथा शुभसि यथा स शुभति अलंकारैः त्वं शोभिष्यसि ।

पाठक इस प्रकार वाक्य बनाकर अपना अभ्यास बढावें।

पाठ ३

षष्ठगण आत्मनेपदके धातु ।

षष्ठगणके परस्मैपदी धातुओंके रूप बनानेकी विधि पूर्व पाठोंमें पाठकोंने देखी है अब आत्मनेपदी धातुओंकी विधि यहां बताई जाती है—

'कु' = (शब्द करना)

१ लट् (वर्तमानकाल) = १ कुवते, कुवेते, कुवन्ते । २ कुवसे, कुवथ, कुवध्वे । ३ कुवे, कुवावहे, कुवामहे ॥

'जुष्' = (सेवन करना)

२ लिट् (अनद्यतन-भूतकाल) = २ जुजुषे, जुजुषाते, जुजुषिरे । २ जुजुषिषे, जुजुषाथे, जुजुषिध्वे । ३ जुजुषे, जुजुषिवहे, जुजुषिमहे ॥

'आ-दृ' = (आदर करना)

लुट् (अनद्यतन-भविष्य) = २ आदर्ता, आदर्तारौ, आदर्तारः । २ आदर्तासे, आदर्तासाथे, आदर्ताध्वे । ३ आदर्ताहे, आदर्तास्वहे, आदर्तास्महे ।

'धृ' = (रहना)

४ लृट् (भविष्यकाल) = १ धरिष्यते, धरिष्येते, धरिष्यन्ते । २ धरिष्यसे, धरिष्येथे, धरिष्यध्वे । ३ धरिष्ये, धरिष्यावहे, धरिष्यामहे ॥

'लस्ज्' = (लज्जा करना)

५ लोट् (आज्ञार्थ) = १ लज्जताम्, लज्जेताम्, लज्जन्ताम् । २ लज्जस्व, लज्जथाम्, लज्जध्वम । ३ लज्जै, लज्जावहै, लज्जामहै ॥

पाठक इस रीतिसे निम्नलिखित धातुओंके रूप बनावें—

षष्ठगण आत्मनेपदके धातु ।

कु = शब्द करना । कुवते । चुकुवे । कुविता । कुविष्यते ।
जुष् = प्रीति करना । सेवन करना । जुषते । जुजुषे । जोषिता । जोषिष्येत ।
आदृ = आदर करना । आद्रियते । आदद्रे । आदर्ता । आदरिष्यते ।
धृ = रहना । ध्रियते । दध्रे । धर्ता । धरिष्यति ।

मृ = प्राणत्याग करना। म्रियते।

लस्ज् = लज्जा करना। लज्जते। ललज्जे। लज्जिता। लज्जिष्यते।

(सूचना-"मृ" धातुके कुछ रूप परस्मैपदके समान और कुछ आत्मनेपदके समान होते हैं।)

इन धातुओंके रूपोंका उपयोग करके संस्कृत वाक्य बनाइये—

संस्कृत-वाक्याान।

१ कः अत्र कुवते ? किमर्थं कुवन्ते। त्वं किं न तथा कुवसे यथा स कुवते। वयं न कुवामहे।

२ त्वं किं जोषिष्यसे ? आवां जुषावहे, वयमपि जुषामहे। ते जोषितारः।

३ छात्राः गुरुं आदरिष्यन्ते। कौ छात्रौ गुरुं न आदरिष्येते ? त्वं राजानं किं न आदरिष्यसे ?

४ सर्वाः स्त्रियः लज्जन्ते। त्वं एवं किमर्थं लज्जसे ? कः अपि पुरुषः एवं न लज्जते।

५ प्राणिनः म्रियन्ते। मानवाः अपि म्रियन्ते। कथं योगी शीघ्रं न म्रियते ?

इस प्रकार धातुओंका उपयोग किया जा सकता है।

षष्ठगणके उभयपदी धातु।

उभयपदी धातुओंके रूप दोनों प्रकार अर्थात् परस्मैपदी और आत्मनेपदी धातुओंके रूपोंके समान होते हैं—

'कृष्' = (हल चलाना)

(१) लट् (वर्तमान काल) = (परस्मैपदी) = १ कृषति, कृषतः, कृषन्ति। २ कृषसि, कृषथः, कृषथ। ३ कृषामि, कृषावः, कृषामः॥

(आत्मनेपदी) = १ कृषते, कृषेते, कृषन्ते। २ कृषसे, कृषेथे, कृषध्वे। ३ कृषे, कृषावहे, कृषामहे।

'क्षिप्' = (फेंकना)

(२) लङ् (अनद्यतनभूत) = (परस्मैपदी) १ अक्षिपत्, अक्षिपताम्,

अक्षिपन् । २ अक्षिपः, अक्षिपतम्, अक्षिपत । ३ अक्षिपम्, अक्षिपाव, अक्षिपाम ॥

(आत्मनेपदी) = अक्षिपत, अक्षिपेताम्, अक्षिपन्त । २ अक्षिपथाः, अक्षिपेथाम्, अक्षिपध्वम् । ३ अक्षिपे, अक्षिपावहि, अक्षिपामहि ॥

'तुद्' (दुःखी होना)

(३) लोट् (आज्ञार्थ) = (परस्मैपदी) = १ तुदतु, तुदताम् तुदन्तु । २ तुद, तुदतम्, तुदत । ३ तुदानि, तुदाव, तुदाम ॥

(आत्मने०) १ तुदताम्, तुदेताम्, तुदन्ताम् । २ तुदस्व, तुदेथाम्, तुदध्वम् । ३ तुदै, तुदावहै, तुदामहै ॥

'मुच्' (छोडना)

(८) विधिलिङ् = (विध्यर्थ) = (परस्मै०) = १ मुञ्चेत्, मुञ्चेताम्, मुञ्चेयुः । २ मुञ्चेः, मुञ्चेतम्, मुञ्चेत । ३ मुञ्चेयम्, मुञ्चेव, मुञ्चेम ॥

(आत्मने०) = १ मुञ्चेत, मुञ्चेयाताम्, मुञ्चेरन् । २ मुञ्चेथाः, मुञ्चेयाथाम्, मुञ्चेध्वम् । ३ मुञ्चेय, मुञ्चेवहि, मुञ्चेमहि ॥

अब षष्ठगण उभयपदी धातु देखिए--

षष्ठगणके उभयपदी धातु ।

कृष् = हल चलाना । कृषति--ते । चकर्ष, चकृषे । क्रष्टा, कर्ष्टा । कर्क्ष्यति--ते । कक्ष्यति--ते ।

क्षिप् = फेंकना । क्षिपति--ते । चिक्षेप । क्षेप्ता । क्षेप्स्यति--ते ।

तुद् = व्यथित होना । तुदति--ते । तुतोद, तुतुदे । तोत्ता । तोत्स्यति--ते ।

दिश् = कहना । आज्ञा करना । दिशति--ते । दिदेश, दिदिशे । देष्टा । देक्ष्यति--ते ।

= प्रेरणा करना । नुदति--ते । नुनोद, नुनुदे । नोत्ता । नोत्स्यति--ते ।

भ्रस्ज् = भूनना। भृज्जति--ते। बभ्रज्ज, बभर्ज। भर्ष्टा। भ्रक्ष्यति-ते।

मिल् = मेल करना। मिलति--ते। मिमेल, मिमिले। मेलिता। मेलिष्यति-ते।

मुच् = छोडना। मुञ्चति-ते। मुमोच, मुमुचे। मोक्ता। मोक्ष्यति--ते।

लिप् = लेपन करना। लिम्पति—ते। लिलेप-लिलिपे। लेप्ता। लेप्स्यति--ते।

विद् = प्राप्त होना। विन्दति-ते। विवेद, विविदे। वेत्ता, वेदिता। वेत्स्यति--ते, वेदिष्यति-ते।

सिंच् = सिंचन करना। सिंचति—ते। सिषेच, सिषिचे। सेक्ता। सेक्ष्यति-ते।

इन धातुओंके रूप बनाकर वाक्योंमें उनका उपयोग कीजिये—

संस्कृत--वाक्यानि।

१ कृषीवलाः भूमिं कृषन्ति। ते भूमिं कदा कर्क्ष्यन्ते। प्रथमं राजा भूमिं कृषते, पश्चात् प्रजाजनाः कृषन्ते।

२ सः वस्त्रं कूपे क्षिपति। अहं मम वस्त्रं तत्र न अक्षिपम्। तौ तत्र किं क्षेप्स्येते ?

३ तस्य भृत्यः तुदति। सः अतुदत्। तौ न अतुदेताम्। स तत्र तोत्स्यति किम् ?

४ रामः लक्ष्मणं दिदेश। स त्वां कदा देक्ष्यति ? अहं तं न आदिशम्। स एव सर्वान् दिशतु।

५ स धान्यं भृज्जते। स न बभर्ज। अहं एव चणकान् भ्रक्ष्यामि। त्वं भ्रक्ष्यसि किम् ?

६ सः अद्य तं मिलति। न स गतमासे एव मिमेल। त्वं कदा मेलिष्यसि ? सः न अमिलत्।

७ स इदानीं जलं मुञ्चति। मेघाः आकाशात् जलं मुञ्चन्ति। त्वं तं पशुं कदा मोक्ष्यसि ?

८ त्वं स्वकीयं गृहं कदा लेप्स्यसे ? अहं तत्स्थानं न लिम्पामि । स एव लिम्पतु ।

९ मनुष्यः ध्यानेन सुखं विन्दते । आत्मना विन्दते वीर्यम् । विद्यया विन्दतेऽमृतम् ।

१० स उद्याने वृक्षेभ्यः जलं सिञ्चति । त्वमपि तथैव जलं सिञ्चस्व । वद, त्वं कदा जलं सेक्ष्यसे ?

पाठक इस प्रकार वाक्य बनानेका अभ्यास करें। यहां षष्ठगणके धातुओंका प्रकरण समाप्त हुआ। अब चतुर्थ गणके धातुओंका विचार आगे बताया जायगा ।

पाठ ४

रामायणम् ।

एवं विराधं राक्षसं हत्वा ते शरभंगस्याश्रमं जग्मुः । स तु तपोधनो रामं दृष्ट्वोवाच " हे नरव्याघ्र रामचंद्र ! तवागमनस्य वृत्तान्तं श्रुत्वा, त्वामतिथिमदृष्ट्वा ब्रह्मलोकं न गच्छामि, इति निश्चयो मया कृतः । अतस्त्वां द्रष्टुकाम एवाहं स्थितोऽत्र । "

इत्युक्त्वा रामं संपूज्य, तस्यातिथ्यं कृत्वा स्वयमचिरादेवाग्निं प्रविवेश ।

ततो बहवस्तापसा राममभिगम्योचुः " महानयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो राक्षसैरनाथवद्धन्यते । अतोऽस्माकं त्वमेव नाथः । एहि पश्य । घोरं राक्षसैर्महत् कदनं कृतम् । एवं तपस्विनां दुःखं न वयं मृष्यामः । त्वां च वयं सर्वेऽपि रक्षणार्थं समुपस्थिताः । "

तापसानां वचनं श्रुत्वा राम उवाच- " भो भो विप्राः ! मम वनवासो भवतां दुःखविनाशाय तथा च भवतां रक्षणायैवास्ति । अतो भवद्भिर्भयं न कर्तव्यम् । अहं शीघ्रमेव सर्वान् राक्षसान् नाशयिष्यामि । " इति ।

ततः सीतारामलक्ष्मणास्तैः सर्वैरपि द्विजैः सह ऋषेः सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जग्मुः । अग्रतो रामो मध्ये सीता पृष्ठतो धनुष्पाणिर्लक्ष्मणश्चेति क्रमेण ते सर्वेषां तपस्विनामाश्रमान्जग्मुः । तत ऊर्ध्वं रामोऽगस्त्याश्रमं सीतया लक्ष्मणेन च सह गतः ।

किंचिद् दूरं गत्वा रामोऽगस्त्याश्रमं ददर्श । तत्र गत्वा महाबाहू रामः सूर्यसममगस्त्यं मुनिं दृष्ट्वा तं मुनिमभिवाद्य तत्रैव कृताञ्जलिस्तस्थौ ।

मुनिश्रेष्ठोऽगस्त्यो राममुवाच- " भवान् मम पूज्योऽतिथिर्मान्यश्च । ममाश्रमे विश्वकर्मणा निर्मितं हेमवज्रविभूषितं दिव्यं चापं विद्यते ब्रह्मणा दत्ताश्च शरोत्तमा अत्र सन्ति । अक्षय्यसायकौ तूणीरौ च। रजतकोशश्च असिरस्ति । हे राम ! तव जयाय एतान् प्रतिगृह्णीष्व । तत्सर्वं श्रेष्ठमायुध- जातं रामाय दत्वाऽगस्त्यो रामं पुनरब्रवीत्। इतो द्वियोजनादूर्ध्वं पंचवटीति विश्रुतो देशः । तत्र गत्वा स्वकीयं आश्रमं कुरु । स एव प्रदेशो यत्र त्वया अत ऊर्ध्वं वस्तव्यम् ।

अथैवं पञ्चवटीं गच्छन्रघुनंदनो महाकायं भीमपराक्रमं गृध्रं दृष्टवान् । तं गृध्रं दृष्ट्वा तौ महाभागौ रामलक्ष्मणौ तं राक्षसं मेनाते " को भवान् " इति पृष्टस्तु स गृध्र उवाच- " वत्स राम ! ममात्मनः पितुर्वयस्यं विद्धि । " इति । पूजयित्वा पितृसखं गृध्रं राघवस्तस्य कुलं नाम च पप्रच्छ । स आचचक्षे। प्रजापतेर्दक्षस्य षष्टिर्दुहितरः । तासां अष्टौ कश्यपः प्रतिजग्राह । तासु ताम्रायाः शुकी नाम्नी एकतमा कन्यका बभूव । तस्याः पौत्री विनतानाम्न्यासीत्। विनतायाः पुत्रयोर्गरुडारुणयोर्मध्येऽरुणादहं जातः । जटायुरिति मे नाम। संपातिश्च ममाग्रजः । सोऽहं यदीच्छसि ते सहायको भविष्यामि । सलक्ष्मणे त्वयि बहिर्यातेऽहं सीतां रक्षिष्ये । इति । 'एवं जटायुषा कथितं वृत्तान्तं रामः शुश्राव । श्रुत्वा च तं पितुर्मित्रं ज्ञात्वा पूजयामास ।

ततस्तेन पक्षिणा सार्धं पञ्चवटीं गत्वा रामलक्ष्मणौ रम्ये गोदावरी-प्रदेशे

यथा कथितमगस्त्येन तथाऽऽश्रमं चक्रतुः । बहुफले तस्मिन्प्रदेशे सह सीतया रामलक्ष्मणौ सुखेन कंचित्कालं न्यवसताम् ।

अथ कदाचिद् दशग्रीवस्य रक्षसो भगिनी शूर्पणखा देवतोपमं रामं विलोक्य तत्रागता । तं रामं दृष्ट्वा सा राक्षसी काममोहिता बभूव । तां दृष्ट्वा रामोऽपि स्मितपूर्वमब्रवीत् । ' कृतदारोऽस्मि । इयं मम दयिता भार्या सीता । अतो मम भ्रातरं भज । ' एतच्छ्रुत्वा रामं विसृज्य राक्षसी लक्ष्मणं प्राप्ता । तामागतां लक्ष्मणोऽब्रवीत् । ' कथं दासस्य मे भार्या भूत्वा त्वं दासी भवितुमिच्छसि ? परवशोऽहम् । मम भ्राता राम एव त्वां योग्यः भविष्यति । गच्छ तं प्रति । '

सा पुनः रामं गत्वोवाच । ' एवं भूतां । ते मानुषीं भार्यां भक्षयिष्यामि । निःसपत्ना भूत्वा त्वया सह चरिष्यामि । ' तच्छ्रुत्वा कुपितो रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । ' अनार्यैः सहार्यैः कथंचनैवं परिहासो नैव कार्यः । अलं परिहासेन ।'

लक्ष्मणस्तु तच्छ्रुत्वा खड्गमुद्धृत्य तस्याः शूर्पणखाया कर्णनासिके चिच्छेद । सा तु शूर्पणखा तदा विस्वरं विनद्य यथागतं वनं प्रदुद्राव । सा ततो रुधिरं विक्षरन्ती घोरदर्शना शूर्पणखा भ्रातुः खरस्य स्थानं गत्वा सर्वं वृत्तान्तं शशंस ।

एवंविधां भगिनीं शूर्पणखां दृष्ट्वा खरः खरतरं वाचं स्वभ्रातरं दूषणनामानमुवाच । ' हे भ्रात ! चित्तानुवर्तिनां मम राक्षसानां चतुर्दश सहस्राणि सज्जीकुरु इति । ' एवं ब्रुवाणस्य तस्यैवं दूषण आचचक्षे । ' युक्तो महारथः सदश्वैः । ' निर्यातानि च घोराणां राक्षसानां चतुर्दश सहस्राणि ।

तानागतान्राक्षसान् रामो ददर्श । रामोऽपि चापमुद्यम्य ज्याघोषेण दिशः पूरयन् तत्रैव सज्जीभूत्वा स्थितः । क्रुद्धा निशाचरा रामं नानाविधैः शस्त्रैरभ्यवर्षन्त । रामस्य शरा अपि राक्षसानां प्राणानाददुः । क्रमेणैकेनैव शरेण रामेण राक्षसानां चतुर्दश–सहस्राणि हतानि ।

राक्षसानां वधादूर्ध्वं रामस्तत्रैव सीतया सह लक्ष्मणेन च सह उवास ।

शब्दार्थ

नरव्याघ्रः = मनुष्यश्रेष्ठ
धनुष्पाणिः = धनुष्य हाथमें लिया हुआ
कृताञ्जलिः= हाथ जोडा हुआ
हमवज्रविभूषितः = सोने और वज्रसे भूषित
अक्षय्यसायकः = जिससे बाण समाप्त नहीं होते
रजतकोशः = चांदीका कोश जिसमें तलवार रहती है।
आयुधजातम् = शस्त्रोंका समूह
द्वियोजनम् = दो योजन
वयस्यः = मित्र
पितृसखः = पिताका मित्र
प्रतिजग्राह = शादी की
पौत्री = पुत्रीकी पुत्री
न्यवसताम् = वास किया
कृतदारः = जिसने विवाह किया है
दयिता = प्रिया
परवशः = परतंत्र
कथंचन = किसी प्रकार भी
अलं = बस
विस्वरं = बेसुर
खरतरं = अधिक कठोर
निर्यात = गये हुए।
सज्जीभूतः = तैयार
आददुः = लिया।

पाठ ५

चतुर्थगणके परस्मैपदी धातु।

जिस प्रकार प्रथमगणके धातुओंको "अ" दशमगणके धातुओंको "अय" और षष्ठगणके धातुओंको "अ" लगता है उसी प्रकार चतुर्थ गणके धातुओंको "य" लगता है। उदाहरण देखिए-

१ प्रथमगण = वद् + अ + ति = वदति।
२ दशमगण = भक्ष् +अय + ति = भक्षयति।
३ षष्ठ गण = विश् + अ + ति = विशति।
४ चतुर्थगण = क्रुध् + य + ति = क्रुध्यति।

पाठक इन चिन्होंको स्मरण रखें। ये गणचिन्ह हैं। इनका नाम

विकरण है। अब चतुर्थ गणके रूपोंका विधि बताते हैं। पाठक समझ ही गये होंगे कि "ति" के पूर्व "य" अधिक लगता है शेष रूप प्रथम गणके समान ही होते हैं—

चतुर्थगण परस्मैपदी धातु।

'अस्' = (फेंकना)

१ लट् = (वर्तमान काल) १ अस्यति, अस्यतः, अस्यन्ति। २ अस्यसि, अस्यथः, अस्यथ। ३ अस्यामि, अस्यावः, अस्यामः॥

'क्रुध्' = (क्रोधित होना)

२ लिट् = (अनद्यतन परोक्षभूत) १ चुक्रोध, चुक्रुधतुः, चुक्रुधुः। २ चुक्रोधिथ, चुक्रुधथुः, चुक्रुध। ३ चुक्रोध, चुक्रुधिव, चुक्रुधिम॥

'क्लम्' = (थकना)

३ लुट् =(अनद्यतन भविष्य) १ क्लमिता, क्लमितारौ, क्लमितारः। २ क्लमितासि, क्लमितास्थः, क्लमितास्थ। ३ क्लमितास्मि, क्लमितास्वः, क्लमितास्मः॥

'क्रुध्' =(क्रोध करना)

४ लृट् = (भविष्यकाल) १ क्रोधिष्यति, क्रोधिष्यतः, क्रोधिष्यन्ति। २ क्रोधिष्यसि, क्रोधिष्यथः, क्रोधिष्यथ। ३ क्रोधिष्यामि, क्रोधिष्यावः, क्रोधिष्यामः॥

५ लेट् का प्रयोग भाषामें नहीं, केवल वेदमें है।

'कुप्' = (क्रोध करना)

६ लोट् = (आज्ञार्थ) = १ कुप्यतु, कुप्यताम्, कुप्यन्तु। २ कुप्य, कुप्यतम्, कुप्यत। ३ कुप्यानि, कुप्याव, कुप्याम॥

७ लङ् = (अनद्यतन भूत) = १ अकुप्यत्, अकुप्यताम्, अकुप्यन्। २ अकुप्यः, अकुप्यतम्, अकुप्यत। ३ अकुप्यम्, अकुप्याव, अकुप्याम॥

*

८ लिङ् = (विधिलिङ्) १ कुप्येत्, कुप्येताम्, कुप्येयुः । २ कुप्येः, कुप्येतम्, कुप्येत । ३ कुप्येयम्, कुप्येव, कुप्येम ॥

(आशीर्लिङ्) = १ कुप्यात्, कुप्यास्ताम्, कुप्यासुः । २ कुप्याः, कुप्यास्तम्, कुप्यास्त । ३ कुप्यासम्, कुप्यास्व कुप्यास्म ॥

९ लुङ् = (भूतकाल) = १ अकुपत्, अकुपताम्, अकुपन् । २ अकुपः अकुपतम्, अकुपत । ३ अकुपम्, अकुपाव, अकुपाम ॥

१० लृङ् = (हेतुहेतुमद्भावार्थ) = १ अकोपिष्यत्, अकोपिष्यताम्, अकोपिष्यन् । २ अकोपिष्यः, अकोपिष्यतम्, अकोपिष्यत । ३ अकोपिष्यम्, अकोपिष्याव, अकोपिष्याम ॥

इस प्रकार निम्नलिखित धातुओंके रूप बनाइये—

चतुर्थगण परस्मैपदके धातु ।

अस् = फेंकना । अस्यति । आस । असिता । असिष्यति ।

ऋध् = वृद्धि होना । ऋध्यति । आनर्ध । अर्धिता । अर्धिष्यति ।

कुप् = क्रोध करना । कुप्यति ! चुकोप । कोपिता । कोपिष्यति ।

कृश् = अशक्त होना । कृश्यति । चकर्श । कर्शिता । कर्शिष्यति ।

क्रुध् = गुस्सा करना । क्रुध्यति । चुक्रोध । क्रोद्धा । क्रोत्स्यति ।

क्लम् = थकना । क्लाम्यति । चक्लाम । क्लमिता । क्लमिष्यति ।

क्लिद् = भींगना । क्लिद्यति । चिक्लेद । क्लेत्ता । क्लेदिता । क्लेत्स्यति, क्लेदिष्यति ।

क्षम् = सहन करना । क्षाम्यति । चक्षाम । क्षमिता, क्षन्ता । क्षमिष्यति, क्षंस्यति ।

क्षिप् = फेंकना । क्षिप्यति । चिक्षेप । क्षेप्ता । क्षेप्स्यति ।

क्षुध् = भूख लगना । क्षुध्यति । चुक्षोध । क्षोद्धा । क्षोत्स्यति ।

क्षुभ् = क्षुब्ध होना । क्षुभ्यति । चुक्षोभ । क्षोभिता । क्षोभिष्यति ।

गुप् = गुप्त रखना । गुप्यति । जुगोप । गोपिता । गोपिष्यति ।

गृध् = लोभ करना। गृध्यति। जगर्ध। गर्धिता। गर्धिष्यति।
छो = काटना। छ्यति। चच्छौ। छाता। छास्यति।
जॄ = जीर्ण होना। जीर्यति। जजार। जरिता, जरीता। जरिष्यति, जरीष्यति।
तम् = इच्छा करना। ताम्यति। तताम। तमिता। तमिष्यति।
तुष् = संतुष्ट होना। तुष्यति। तुतोष। तोष्टा। तोक्ष्यति।

संस्कृत-वाक्यानि।

१ युद्धे वीरः शरान् अस्यति। त्वं बाणान् आसिष्यसि किम्? सः शस्त्राणि शत्रूणां उपरि अस्यतु।

२ तौ कुप्यतः। ते कुप्यन्ति। स इदानीं कुप्यतु। स तदा तथा न अकुप्यत् यथा त्वं अकुपः। यदि स अकोपिष्यत् तर्हि अहमपि कोपिष्यामि।

३ यूयं कृश्यथ। किमर्थं ते चकृशुः। त्वं कर्शिष्यसि किम्? सः अकृश्यत्।

४ सर्वे प्राणिनः क्लाम्यन्ति। कः न क्लामिष्यति? यदि सः अक्लामिष्यत् तर्हि त्वमपि न गच्छ।

५ यूयं वस्त्राणि क्षिपत। सः वस्त्रं क्षिपतु। त्वं इदानीं बाणान् क्षेप्स्यसि किम्?

६ बालकः इदानीं क्षुध्यति। त्वं नैव क्षुध्यसि। स कदा क्षोत्स्यति? स नाक्षुध्यत्।

७ वीरः न कदापि गृध्यति। स किमर्थं गर्धिष्यति। अहं कदापि नैव गर्धिष्यामि।

८ ईश्वरः भक्त्या तुष्यति। राजा बलेन तुष्यति। त्वं कथं तुष्यसि? अहं धनेन नातुष्यम्।

पाठक इस ढंगसे वाक्य बनावें और संस्कृतका अभ्यास बढावें।

पाठ ६

चतुर्थगणके परस्मैपदी धातु।

पाठकोंकी सुगमताके लिए चतुर्थगणके धातुओंके कुछ रूप यहां बताये जाते हैं-

'तृप्' = (तृप्त होना)

१ लट् = (वर्तमानकाल) = १ तृप्यति, तृप्यतः, तृप्यन्ति । २ तृप्यसि, तृप्यथः, तृप्यथ । ३ तृप्यामि, तृप्यावः, तृप्यामः ।

२ लङ् = (अनद्यतनभूत) = १ अतृप्यत्, अतृप्यताम्, अतृप्यन । २ अतृप्यः, अतृप्यतम्, अतृप्यत । ३ अतृप्यम्, अतृप्याव, अतृप्याम ।

३ लोट् = (आज्ञार्थ) = १ तृप्यतु, तृप्यताम्, तृप्यन्तु । २ तप्य, तृप्यतम्, तृप्यत । ३ तृप्यानि तृप्याव, तृप्याम ।

४ लिङ् = (विधिलिङ्) = १ तृप्येत्, तृप्येताम्, तृप्येयुः । २ तृप्येः, तृप्येतम्, तृप्येत । ३ तृप्येयम्, तृप्येव, तृप्येम ॥

(आशीर्लिङ्) = १ तृप्यात्, तृप्यास्ताम्, तृप्यासुः । २ तृप्याः, तृप्यास्तम्, तृप्यास्त । ३ तृप्यासम्, तृप्यास्व, तृप्यास्म ॥

'त्रस्' = (त्रस्त होना)

५ लृट् = (भविष्यकाल) = १ त्रसिष्यति, त्रसिष्यतः, त्रसिष्यन्ति । २ त्रसिष्यसि, त्रसिस्यथः, त्रासिष्यथ । ३ त्रसिष्यामि, त्रसिष्यावः, त्रसिष्यामः ॥

'नृत्' = (नाचना)

६ लिट् = (अनद्यतन परोक्षभूत) = ननर्त, ननृततुः, ननृतुः । २ ननर्तिथ, ननृतथुः, ननृत । ३ ननर्त, ननृतिव, ननृतिम ॥

इसी प्रकार निम्नलिखित धातुओंके रूप पाठक बना सकते हैं-

चतुर्थगण परस्मैपदके धातु।

तृप् = तृप्त होना। तृप्यति। ततर्प। तर्पिता, तर्प्ता। तर्पिष्यति। तप्स्र्यति।

तृष् = प्यास लगना। तृष्यति। ततर्ष। तर्षिता। तर्षिष्यति।

त्रस् = त्रस्त होना। त्रस्यति। तत्रास। त्रसिता। त्रसिष्यति।

दम् = वश होना। दाम्यति। ददाम। दमिता। दमिष्यति।

दस् = नाश होना। दस्यति। ददास। दसिता। दसिष्यति।

दिव् = खेलना। दीव्यति। दिदेव। देविता। देविष्यति।

दुष् = दूषित होना। दुष्यति। दुदोष। दोष्टा। दोक्ष्यति।

दृप् = गर्विष्ठ होना। दृप्यति। ददर्प। दर्पिता, दर्प्ता, द्रप्ता। दर्पिष्यति, दर्प्स्यति, द्रप्स्यति।

दो = टुकडा करना। द्यति। ददौ। दाता। दास्यति।

द्रुह् = द्वेष करना, द्रोह करना। द्रुह्यति। दुद्रोह। द्रोहिता, द्रोग्धा, द्रोढा। द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति।

नश् = नाश होना। नश्यति। ननाश। नशिता, नंष्टा। नशिष्यति, नंक्ष्यति।

नृत् = नाचना। नृत्यति। ननर्त। नर्तिता। नर्तिष्यति। नर्त्स्यति।

पुष् = पुष्ट होना। पुष्यति। पुपोष। पोष्टा। पोक्ष्यति।

भ्रम् = घुमाना। भ्राम्यति। बभ्राम। भ्रमिता। भ्रमिष्यति।

भ्रंश् = गिरना। भ्रश्यति। बभ्रंश। भ्रंशिता। भ्रंशिष्यति।

मद् = हर्षित होना। माद्यति। ममाद। मदिता। मदिष्यति।

मिद् = प्रीति करना। मेद्यति। मिमेद। मेदिता। मेदिष्यति।

मुह् = मूर्छित होना। मुह्यति। मुमोह। मोहिता। मोहिष्यति।

मृग् = ढूंढना, शिकार करना। मृग्यति। ममर्ग। मार्गिता। मर्गिष्यति।

मृष् = सहन करना। मृष्यति। ममर्ष। मर्षिता। मर्षिष्यति।

यस् = प्रयत्न करना। यस्यति। ययास। यसिता। यसिष्यति।

राध् = बढना । राध्यति । रराध । राद्धा । रात्स्यति ।
रिष् = नाश होना । रिष्यति । रिरेष । रेषिता । रेषिष्यति ।
रुष् = हिंसा करना । रुष्यति । रुरोष, रोषिता, रोष्टा । रोषिष्यति ।
लुप् = भ्रान्त होना । लुप्यति । लुलोप । लोपिता । लोपिष्यति ।
लुभ् = लोभ करना । लुभ्यति । लुलोभ । लोभिता, लोब्धा । लोभिष्यति ।
व्यध् = ताडन करना । विध्यति । विव्याध । व्यद्धा । व्यत्स्यति ।
व्रीड् = लज्जा करना । व्रीड्यति । विव्रीड । व्रीडिता । व्रीडिष्यति ।
शम् = शांत होना । शाम्यति । शशाम । शमिता । शमिष्यति ।
शुध् = शुद्ध होना । शुध्यति । शुशोध । शोद्धा । शोत्स्यति ।
शुष् = सूखना । शुष्यति । शुशोष । शोष्टा । शोक्ष्यति ।
शा = बारीक करना । श्यति । शशौ । शाता । शास्यति ।
श्रम् = थकना, श्रम करना । श्राम्यति । शश्राम । श्रमिता । श्रमिष्यति ।
श्लिष् = आलिंगन देना । श्लिष्यति । शिश्लेष । श्लेष्टा । श्लेक्ष्यति ।
ष्ठिव् = थूंकना । ष्ठीव्यति । तिष्ठेव । ष्ठेविता । ष्ठेविष्यति ।
सह् = तृप्त होना । सह्यति । ससाह । सहिता । सहिष्यति ।
सिध् = सिद्ध होना । सिध्यति । सिषेध । सेद्धा । सेत्स्यति ।
सीव् = सीना । सीव्यति । सिषेव । सेविता । सेविष्यति ।
स्निह् = स्नेह करना । स्निह्यति । सिष्णेह । स्नेहिता । स्नेहिष्यति ।
स्विद् = पसीना आना । स्विद्यति । सिष्वेद । स्वेत्ता । स्वेत्स्यति ।
हृष् = हर्षित होना । हृष्यति । जहर्ष । हर्षिता । हर्षिष्यति ।

संस्कृत--वाक्यानि ।

१ कथां श्रुत्वा श्रुत्वा अहं न तृप्यामि । स त्वां नैव तर्पिष्यति । परशुरामस्य पितरः ततृपुः । देवाः तृप्यन्तु ।

२ राक्षसाः अनेन कारणेन त्रस्यन्ति । के एवं न त्रसिष्यन्ति ? भवन्तः किमर्थं त्रसन्ति ? यूयं सर्वे अपि मा त्रस्यथ ।

३ सर्वे बालका इदानीं दीव्यन्ति । यूयं कदा देविष्यथ ? वयं अद्य नैव देविष्यामः । स मा दीव्यतु । अक्षैर्मा दीव्यः ।

४ शत्रवः द्रुह्यन्ति, ते सर्वे द्रुह्यन्तु, किन्तु अहं कदापि नैव द्रुह्यामि । त्वमपि द्रोहिष्यसि किम् ?

५ सर्वे प्राणिनः नश्यन्ति, सर्वं जगत् नश्यति । अपि तु आत्मा नैव नश्यति ।

६ नटा नृत्यन्ति । बालका नाट्यशालायां नृत्यन्तु, परन्तु ते अन्यत्र न नृत्येयुः । अहं गृहे एव नर्तिष्यामि ।

७ पुरुषः अन्नेन पुष्यति । शरीरं अन्नेन विना न पुष्यति । त्वं कथं पोक्ष्यसि । स रसेन पुष्यतु ।

८ राजा राज्यात् भ्रश्यति । तारकाः आकाशाद् भ्रश्यन्ति । भृत्यः प्रासादात् भ्रश्यति । त्वं तस्मात् स्थानान्मा भ्रश्य ।

९ त्वं लुभ्यसि । अहं कदापि नैव लुभ्यामि । मूर्खाः लुभ्यन्तु । ज्ञानिनः मा लुभ्यन्तु ।

१० शरीराणि जलेन शुध्यन्ति । मनः सत्येन शुध्यति । ज्ञानेन बुद्धिः शुध्यति । तपसा आत्मा शुध्यतु ।

११ यत् त्वया प्रतिपादितं तत् कथं सिध्यति ? त्वं स्वसिद्धान्तं सेत्स्यसि किम् ?

१२ नराः विजयेन हृष्यन्ति । सर्वेऽपि धनप्राप्त्या हर्षिष्यन्ति । पुत्रस्य सुखं दृष्ट्वा मातापितरौ हृष्यतः ।

पाठ ७

चतुर्थगण आत्मनेपदके धातु ।

इन धातुओंके रूप निम्नलिखित रीतिसे होते हैं–

' क्लिश् ' = (क्लेश भोगना)

१ लट् (वर्तमान काल) = १ क्लिश्यते, क्लिश्येते, क्लिश्यन्ते। २ क्लिश्यसे, क्लिश्येथे, क्लिश्यध्वे। ३ क्लिश्ये, क्लिश्यावहे, क्लिश्यामहे ॥

' खिद् ' = (खिन्न होना)

२ लङ् (अनद्यतनभूत) = १ अखिद्यत, अखिद्येतां, अखिद्यन्त। २ अखिद्यथाः, अखिद्येथां अखिद्यध्वम्। ३ अखिद्ये, अखिद्यावहि, अखिद्यामहि॥

' तप् ' = (ऐश्वर्ययुक्त होना)

३ लोट् (आज्ञार्थ) = १ तप्यताम्, तप्येताम्, तप्यन्ताम्। २ तप्यस्व, तप्येथाम्, तप्यध्वम्। ३ तप्यै, तप्यावहै, तप्यामहै ॥

' पुर् ' = (भरना)

४ लिङ् (विधिलिङ्) = १ पूर्येत, पूर्येयातां, पूर्येरन्। २ पूर्येथाः, पूर्येयाथां, पूर्येध्वम्। ३ पूर्येय, पूर्येवहि, पूर्येमहि ॥

' युज ' = (ध्यान लगाना)

५ लिट् (अनद्यतन परोक्षभूत) = १ युयुजे, युयुजाते, युयुजिरे। २ युयुजिषे, युयुजाथे, युयुजिध्वे। ३ युयुजे, युयुजिवहे, युयुजिमहे ॥

' सृज् ' = (छोडना)

६ लृट् (भविष्यकाल) = १ स्रक्ष्यते, स्रक्ष्येते, स्रक्ष्यन्ते। २ स्रक्ष्यसे स्रक्ष्येथे, स्रक्ष्यध्वे। ३ स्रक्ष्ये, स्रक्ष्यावहे, स्रक्ष्यामहे ॥

चतुर्थ गण आत्मनेपदके धातु ।

क्लिश् = दुःख भोगना। क्लिश्यते। चिक्लिशे। क्लेशिता। क्लेशिष्यते।

क्षी = हिंसा करना । क्षीयते । चिक्षिये । क्षेता । क्षेष्यते ।
खिद् = खिन्न होना । खिद्यते । चिखेद । खेत्ता । खेत्स्यते ।
जन् = जन्म लेना । जायते । जज्ञे । जनिष्यते ।
डी = उडना । डीयते । डिड्ये । डयिता । डयिष्यते ।
तप् = ऐश्वर्ययुक्त होना । तप्यते । तेपे । तप्ता । तप्स्यते ।
दीप् = प्रकाशना । दीप्यते । दिदीपे । दीपिता । दीपिष्यते ।
दू = दुःख होना । दूयते । दुदुवे । दविता । दविष्यते ।
पत् = ऐश्वर्य प्राप्त होना । पत्यते । पेते । पतिता । पतिष्यते ।
पद् = जाना । पद्यते । पेदे । पत्ता । पत्स्यते ।
पी = पीना । पीयते । पिप्ये । पेता । पेष्यते ।
पूर् = भरना । पूर्यते । पुपूरे । पूरिता । पूरिष्यते ।
प्री = प्रीति करना । प्रीयते । पिप्रिये । प्रेता । प्रेष्यते ।
बुध् = जानना । बुध्यते । बुबुधे । बोद्धा । भोत्स्यते ।
मन् = मनन करना । मन्यते । मेने । मन्ता । मंस्यते ।
युज् = ध्यान लगाना । युज्यते । युयुजे । योक्ता, योक्ष्यते ।
युध् = लडना । युध्यते । युयुधे । योद्धा । योत्स्यते ।
विद् = होना । विद्यते । विविदे । वेत्ता । वेत्स्यते ।
सू = प्रसूत होना । सूयते । सुषुवे । सविता । सोष्यते, सविष्यते ।
सृज् = छोडना । सृज्यते । ससृजे । स्रष्टा । स्रक्ष्यते ।

पाठक अब इनका उपयोग कर सकते हैं–

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ त्वं किमर्थं एवं क्लिश्यसे । स क्लिश्यतां परन्तु त्वं मा क्लिश्यस्व । लोकहेतोः राजा क्लिश्यते ।

२ ब्राह्मणः तत्र खिद्यते । त्वं खेत्स्यसे किम् । अजायमानः बहुधा विजायते । काष्ठात् अग्निः जज्ञे ।

३ विश्वामित्रः ऋषिषु दीप्यते। अहं दीपेन तव दीपं दीपिष्ये। स दीप्यताम्।

४ यथा स बुध्यते तथा त्वं न बुध्यसे। तव शिष्यः यथा बुबुधे तथा स बालः न बुध्यते।

५ अहं मन्ये तवैव एतत् राज्यमिति। त्वं किं मन्यसे ? यदि त्वं एवं मंस्यसे तर्हि अहं किमपि न वदिष्यामि।

६ यदा त्वं युध्यसे तदा तव पदातयः कुत्र भवन्ति। यदि त्वं इच्छसि तर्हि मया सह युध्यस्व।

७ तव मित्रं अत्र विद्यते किम् ? मम गृहे महाभारतस्य पुस्तकं विद्यते।

८ त्वं अस्मिन् देशे किमर्थं तप्यसे ? सः अपि तथा न तप्यते यथा त्वं तप्यसे।

९ पक्षिणः आकाशे डीयन्ते। उष्णकाले मयूराः आकाशे किमर्थं न डीयन्ते। स डयिष्यते किम् ?

पाठक इस प्रकार पूर्वोक्त धातुओंके रूप बनाकर वाक्योंमें उनका उपयोग कर सकते हैं। यहां चतुर्थगणके आत्मनेपदका विचार हुआ। अब चतुर्थ-गणके उभयपदी धातुओंका विचार किया जाता है—

चतुर्थगणके उभयपदी धातु।

उभयपदी धातुओंके रूप परस्मैपदी और आत्मनेपदी इन दोनों रीतियोंसे होते हैं—

‘ शुच् ’ = (शुद्ध होना)

(१) लट् (वर्तमान-काल)

परस्मैपदी = १ शुच्यति, शुच्यतः, शुच्यन्ति। २ शुच्यसि, शुच्यथः, शुच्यथ। ३ शुच्यामि, शुच्यावः, शुच्यामः॥

आत्मनेपदी - १ शुच्यते, शुच्येते, शुच्यन्ते। २ शुच्यसे, शुच्येथे, शुच्यध्वे ३ शुच्ये, शुच्यावहे, शुच्यामहे॥

(२) 'लङ्' = (अनद्यतनभूत)

परस्मैपदी = १ अशुच्यत्, अशुच्यताम्, अशुच्यन्। २ अशुच्यः, अशुच्यतम्, अशुच्यत। ३ अशुच्यम्, अशुच्याव, अशुच्याम॥

आत्मनेपदी = १ अशुच्यत, अशुच्येताम्, अशुच्यन्त। २ अशुच्यथाः, अशुच्येथाम्, अशुच्यध्वम्। ३ अशुच्ये, अशुच्यावहि, अशुच्यामहि॥

(३) 'लोट्' = (आज्ञार्थ)

परस्मैपदी = १ शुच्यतु, शुच्यताम्, शुच्यन्तु। २ शुच्य, शुच्यतम्, शुच्यत। ३ शुच्यानि, शुच्याव, शुच्याम॥

आत्मनेपदी = १ शुच्यताम्, शुच्येताम्, शुच्यन्ताम्। २ शुच्यस्व, शुच्येथाम्, शुच्यध्वम्, ३ शुच्यै, शुच्यावहै, शुच्यामहै॥

(४) 'लिङ्' = (विधिलिङ्)

परस्मैपदी = १ शुच्येत्, शुच्येताम्, शुच्येयुः। २ शुच्येः, शुच्येतम्, शुच्येत। ३ शुच्येयम्, शुच्येव, शुच्येम॥

आत्मनेपदी = १ शुच्येत, शुच्येयाताम्, शुच्येरन्। २ शुच्येथाः, शुच्येयाथाम्, शुच्येध्वम्। ३ शुच्येय, शुच्येवहि, शुच्येमहि॥

इसी प्रकार अन्यान्य लकारोंके रूप बनाये जा सकते हैं—

चतुर्थगणके धातु।

उभय-पद।

रज् = रंग देना। रज्यति-ते। ररञ्ज-ररञ्जे। रंक्ता। रंक्ष्यति-ते।

शुच =शुद्ध करना। शुच्यति-ते। शुशोच। शोचिता। शोचिष्यति-ते।

संस्कृत--वाक्यानि।

१ रंजयिता वस्त्राणि रज्यति। त्वं किं न वस्त्रं रज्यसे ? अहं नैव रंक्ष्यामि।

२ त्वं सर्वं शुच्यसे। अहं न शुच्ये। वयं शुच्यामहे। त्वं शोचिष्यसि। युवां शोचिष्यथः। यूयं शोचिष्यथ।

यहां चतुर्थगणका विचार समाप्त हुआ है। इसके पश्चात् द्वितीयगणके धातुओंका विचार किया जायगा। इसके मध्यमें एक वाचनपाठ पढिये।

पाठ ८

रामायणम् ।

ततः शूर्पणखा दूषणं खरं त्रिशिरसं च रामेण हतं दृष्ट्वा परमोद्विग्ना रावणपालितां लंकां जगाम, ददर्श च दशग्रीवम्। तं रावणमुपगम्य भय-विह्वला शूर्पणखाऽब्रवीत्। " हे रावण ! त्वं कामभोगेषु प्रमत्तः बोद्धव्यं घोरं भयं नावबुध्यसे । कामवृत्तं लुब्धं ग्राम्येषु भोगेषु सक्तं महीपतिं प्रजाः बहु न मन्यन्ते । एकेन रामेण राक्षसानां चतुर्दश सहस्राणि हतानि, खरोऽपि दूषणेन सह हतः । दण्डकारण्यं निर्भयं कृतम् । ऋषयो निर्भयाः जाताः । कथं त्वं सर्वमेतत् नावबुध्यसे ? "

एतच्छ्रुत्वा रावणः संक्रुद्धस्तां पुनः पप्रच्छ । " कोऽयं रामः ? किं वीर्यः ? तस्य किं रूपम् ? किमर्थं प्रविष्टो दुर्गमं दण्डकारण्यम् ? किं च तस्यायुधं येन राक्षसा हताः ? केन च त्वं एवं विरूपिता ? " इति ।

रावणस्य भाषणं श्रुत्वा क्रोधमूर्च्छिता शूर्पणखा रामलक्ष्मणयोः पराक्रम-माख्यातवती । सा रावणं पुनरुवाच-- " हे दशमुख ! रामस्य धर्मपत्नी सीता नाम विशालाक्षी सुंदरी, तथा रूपा नारी मया कुत्रापि न दृष्टपूर्वा । यादृशी सीता तादृशी न देवी गंधर्वी न यक्षी, न किन्नरी । अतः सा तवैवानुरूपा भार्या । त्वं च तस्या योग्यः पतिः । अहं तामानेतुमुद्यताऽ-स्मि किन्तु क्रूरेण लक्ष्मणेन विरूपिताऽस्मि। " इति ।

श्रुत्वा तच्छूर्पणखावचनं राक्षसाधिपो रावणो रथशालां गत्वा " रथः संयुज्यताम् " इति सूतं संचोदयामास ।

रावणो रथमास्थाय समुद्रस्य पारं गत्वा मारीचस्याश्रमं ददर्श । तत्र जटा-मण्डलधारिणं नियताहारं मारीचं नाम राक्षसं दृष्ट्वा उवाच- " भवान् हि मे परमा गतिः । जनस्थाने मानुषेण त्रिशिरदूषणादयो राक्षसा हताः । मम भगिनी शूर्पणखाऽपि कर्णनासिकाछेदनेन विरूपिता । अतोऽस्य भार्यां

जनस्थानादानयिष्यामि। तत्र मे सहायो भव। सीतायाः संमुखं सौवर्णो मृगो भूत्वा विचर। त्वां तु दृष्ट्वा सीता निःसंशयं अयं गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं च कथयिष्यति। रामलक्ष्मणौ अपि त्वद्ग्रहणार्थं आश्रमाद् बहिर्गमिष्यतः। यदा ताभ्यां रामलक्ष्मणाभ्यां विहीन आश्रमो भविष्यति, अहं तत्र प्रविश्य सीतामाहरिष्यामि।

रावणस्यैतद्भाषणं श्रुत्वा महातेजा मारीचः प्रत्युवाच "हे राजन्! सुलभाः प्रियवादिनः। अप्रियस्य पथ्यस्य च श्रोता वक्ता च दुर्लभः अयुक्ताचारश्चपलस्त्वं महावीर्यगुणोपेतं रामं न बुध्यसे। संक्रुद्धो रामो लोका॰ नराक्षसान् कुर्यात्। त्वद्विधः कामवृत्तो हि राजा दुःशीलः पापमन्त्रितः स्वजनं राष्ट्रमात्मानं च हन्ति। दीप्तस्याग्नेर्ज्वालेव सा सीता धर्षयितुं न शक्या परदारामर्शात्तु नान्यन्महत्पातकं परतरम्। अतः स्वदारनिरतो भव। रक्ष स्वकुलं राक्षसांश्च।

तन्मारीचस्य युक्तं वाक्यं रावणस्तु न प्रतिजग्राह। कालप्रेरितश्चाब्रवीत्— "मारीच! निष्फलं वाक्यं किमर्थमेवं ब्रवीषि? खरघातिनस्तस्य रामस्य प्रिया भार्या सीता मयाऽवश्यमेव हर्तव्या। मादृशस्य राज्ञः प्रतिकूलो भूत्वा न कोऽपि सुखं प्राप्नोति। यदि त्वं ममैतत्कार्यं स्वेच्छया न कर्तुमिच्छसि तर्हि बलात्करिष्यसि।"

ततस्ताटिकासुतो मारीचस्तथेत्युवाच। तत उभौ अपि राघवस्याश्रमं जग्मतुः। मारीचो मृगो भूत्वा रामस्याश्रमद्वारि विचचार। तं सौवर्णमृगं रुचिरं दृष्ट्वा प्रहृष्टा सीता भर्तारं रामं लक्ष्मणं चाब्रवीत्— "हे राम! पश्य सौवर्णं मृगम्। अहो अस्य रूपम्। अहो लक्ष्मीः। स्वरसंपच्च शोभना। हे महाबाहो राम! आनयैनं। एष नः क्रीडार्थं भविष्यति।" इति।

एवं प्रचोदितो रामो लक्ष्मणमुवाच। "हे लक्ष्मण! इह त्वं सन्नद्धो भव! रक्ष तावत् सीताम्। यावदहमानयामि मृगम्। अप्रमत्तेन त्वया भाव्यम्, प्रयत्नेन रक्षितव्या च त्वया सीता।" इति।

इत्यादिश्य, उग्रपराक्रमो रामो चापं गृहीत्वा मृगमनुगतः। रामं अवेक्ष्यावेक्ष्य धावन्मृगो मुहूर्तादेव न ददृशे, मुहूर्तादेव प्रकाशते च। रामस्तु तमुद्दिश्य प्रदीप्तं ब्रह्मास्त्रं मुमोच। स शरः मृगरूपस्य मारीचस्य हृदयं बिभेद, तदा तत्रैव स न्यपतत्। प्राप्तकालं ज्ञात्वा तदा मरणसमये रामस्येवाक्रोशं चकार "हा सीते! हा लक्ष्मण!" इति। एवमाक्रोशं कृत्वा तत्रैव ममार च।

तस्य तीव्रं शब्दं च श्रुत्वा रामो भयं आविवेश। तं शब्दं श्रुत्वा सीता कथं भवेत्? कथं च लक्ष्मणः? इति च मनसि विचारयामास।

एवं मृगरूपं राक्षसं हत्वा त्वरमाण आश्रमाभिमुखं ससार।

अत्र सीता रामस्यार्तं शब्दं श्रुत्वा लक्ष्मणमाह "गच्छ रामं जानीहि। आक्रन्दमानं भ्रातरं त्रातुमर्हसि।" इति।

भ्रातुराज्ञां स्मृत्वा न जगाम लक्ष्मणः। जनकात्मजा ततः क्रुद्धा तमुवाच- "यस्त्वमस्यामवस्थायां नाभिगच्छसि भ्रातरं, नूनं मत्कृते लोभादवात्र स्थितोऽसि।"

एवं ब्रुवन्तीं वैदेहीं लक्ष्मणोऽब्रवीत्—"हे देवि! ते भर्ता पन्नगासुरगन्धर्वदेवदानवराक्षसैरपि नैव जेतुं शक्यः। समरेऽवध्यो हि रामः अतो मां नैवं वक्तुमर्हसि। अस्मिन्वने राघवं विना त्वां हातुं नोत्सहे। नान्यथा चिन्तयितुमर्हसि वैदेहि। महावने विविधवाचो राक्षसा एवं व्याहरन्त्येव।" इति।

तथापि क्रुद्धा सीता संरक्तलोचना भूत्वा परुषं वाक्यमब्रवीत् "अनार्य लक्ष्मण! हे नृशंस! कुलपांसन! मन्ये राघवस्य महद्व्यसनं तुभ्यं रोचत एव। नैतच्चित्रं यत् त्वद्विधेषु सपत्नेषु प्रच्छन्नचारिषु नृशंसेषु पापं भवेत्। सुदुष्टस्त्वम्। मन्ये मम हेतोरेव त्वमेकं राममनुगतोऽसि। भरतेनापि वा प्रयुक्तो भवेः। हे सौमित्रे! नैव तवोद्दिष्टं सिध्यति। कथं रामं भर्तारं प्राप्यान्यं जनं कामयेयम्। यदि इतो न गच्छसि रामरक्षणाय तर्हि त्वत्समक्षमेवात्र प्राणान्सन्त्यजामि।" इति।

एवं परुषमुक्तो जितेन्द्रियो लक्ष्मणः प्राञ्जलिराह । — " नोत्सहे वक्तुमस्योत्तरम् । हे सीते ! स्त्रीषु न चित्रमेतद्वाक्यम् । स्वभाव एवैष नारीणाम् । भवती तु मम दैवतम् । इदं तु तव वाक्यं तप्तनाराचसंनिभं न सहे श्रोतुम् । उपशृण्वन्तु मे साक्षिणः सर्वेऽपि वनचराः परुषं यथाऽहं वाक्यं त्वयोक्तोऽस्मि । स्त्रीत्वाद् दुष्टस्वभावेन मां आप्तवाक्ये व्यवस्थितमपि विशङ्कसे ! अस्तु ते स्वस्ति । गच्छामि यत्र काकुत्स्थः । " इत्युक्त्वा खिन्नो भूत्वा लक्ष्मणो निष्क्रान्तः ।

वृक्षवल्लीषु प्रच्छन्नो रावणस्तदा क्षिप्रमेव परिव्राजकरूपधृक् काषायवस्त्रधारी वैदेहीमभिचक्राम । रामस्याश्रममागत्य तत्र सीतां दृष्ट्वा ब्रह्मघोषमुदीरयन् सीतामेवमब्रवीत्— " पीतकौशेयवासिनि त्वं श्रीः शुभा वा लक्ष्मीरप्सरा वा काऽसि ? का त्वं ? देवता प्रतिभासि मे । कथं पुनस्त्वमिहागताऽसि ? राक्षसानामयं वासः । " इति ।

एवं रावणेन संपृष्टा सीता सर्वं प्रोवाच वृत्तम् । सा तमुवाच च — " आगमिष्यति मे भर्ता पुष्कलं वन्यमादाय । स त्वं नाम च गोत्रं च कुलं च समाचक्ष्व । एकाकी च त्वं अस्मिन्दण्डकारण्ये किं चरसि ? " इति ।

स रावणः प्रत्युवाच— " सदेवासुरमानुषा लोका येन वित्रासिताः सोऽहं रावणो नाम राक्षसेश्वरः । लङ्का नाम महापुरी गिरिमूर्धनि सागरमध्येऽस्ति, तत्र गत्वा मेऽग्रमहिषी भव । " इति ।

अनादृत्य तस्य तद्वाक्यं कुपिता जनकात्मजा तं प्रत्युवाच– " जितेन्द्रियमक्षोभ्यं राममेवानुव्रताऽस्मि । त्वं पुनर्जम्बूको भूत्वा सिंहीं मामिहेच्छसि ? नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमपि । "

श्रुत्वा तत्सीतावाक्यं दशग्रीवः स्वकीयं वपुः सुमहच्चकार सीतां पुनर्बभाषे च— " मन्ये, त्वया मम वीर्यपराक्रमौ न श्रुतौ । अहं भुजाभ्यां पृथिवीमुद्वहेयम् समुद्रमपि संपूर्णमपिबेयम्, रणे मृत्युमपि हन्याम् । " इति ।

इत्युक्त्वा रावणः सीतां केशेषु हस्तेनैकेन जग्राह अपरेणोर्वोः। एवं गृहीता सा सीता भयार्ता विह्वलं चुक्रोश " हा राम, हा राम " इति। " हा लक्ष्मण, हा लक्ष्मण " इति च। एवं ह्रियमाणा सीता विललाप चैवम्- " हा राम ! न जानीषे मां राक्षसेन ह्रियमाणाम्। न पश्यसि मामधर्मेण ह्रियमाणाम्। कथं न शाधि पापमेवं विधं रावणम्। हन्त ! सकामा खलु कैकेयीदानीं संवृत्ता। हे राम ! पश्य माम्, रक्ष माम्। " इति

एवं विलपन्तीं सीतां गृहीत्वा रावणो लंकां प्रस्थितः।

शब्दार्थ

उद्विग्न = खिन्न, दुखी	काकुत्स्थः = राम
पालिता = पालन की हुई	सन्नद्ध = तैयार, सिद्ध
बोद्धव्यम् = जानने योग्य	त्वरमाणः = शीघ्रता करनेवाला
विह्वल = दुखी, पीडित	ससार = चला
ग्राम्य = ग्रामीण, हीन	पन्नग = सर्प
आख्यातवती = कहा	जेतुं = जीतनेके लिये
नियताहार = नियत भोजन	हातुं = छोडनेके लिये
पथ्य = हितकारक	विविधवाचः = अनेक प्रकारके शब्द करनेवाला
अयुक्ताचार = दुराचारी	व्याहरन्ति = बोलते हैं
चपल = चंचल	परुष = कठोर
पापमन्त्रित = पापी सलाह दिया हुआ	नृशंस = क्रूर
बलात् = जबरदस्तीसे	कुलपांसन = कुल-दूषक
तथा = ठीक है	नाराचः = बाण
लक्ष्मी = शोभा	संनिभ = सदृश
स्वरसंपत् = शब्दकी शोभा	वन्य = वनमें उत्पन्न

समासाः ।

१ रावणपालिता = रावणेन पालिता ।

२ कामभोगौ = कामश्च भोगश्च ।

३ विशालाक्षी = विशाले अक्षिणी यस्याः सा ।

४ दृष्टपूर्वा = पूर्वं दृष्टा ।

५ रथशाला = रथानां शाला ।

६ जटामंडलधारिन् = जटायाः मंडलं जटामंडलं । तत् धारयतीति जटामंडलधारी ।

७ नियताहारः = नियतः आहारः यस्य ।

८ कर्णनासिकाछेदनं = कर्णश्च नासिका च कर्णनासिके । तयोः छेदनम् ।

९ प्रियवादिन् = प्रियं वदति इति ।

१० अयुक्ताचारः = न युक्तः अयुक्तः । अयुक्तः आचारः यस्य सः ।

११ महावीर्यगुणोपेतः = वीर्यं च गुणश्च वीर्यगुणौ । महान्तौ च तौ वीर्यगुणौ च महावीर्यगुणौ । ताभ्यां उपेतः ।

१२ उग्रपराक्रमः = उग्रः पराक्रमो यस्य ।

१३ संरक्तलोचना = संरक्ते लोचने यस्या ।

१४ काषायवस्त्रधारी = काषायं च तद्वस्त्रं च काषायवस्त्रं । तद् धारयतीति ।

पाठ ९

द्वितीयगणके धातु ।

जिस प्रकार प्रथम, चतुर्थ, षष्ठ और दशम गणके क्रमशः विकरण " अ, य, अ और अय " हैं, उस प्रकार द्वितीयगणके धातुओंके लिये कोई विकरण नहीं लगता, विकरणके विना ही इस गणके धातुओंके साथ प्रत्यय लगते हैं, देखिये—

गण	धातु	विकरण	प्रत्यय	रूप	अर्थ
प्रथम-गण=	भू (भव्)	+ अ +	ति	= भवति =	(होता है)
चतुर्थ-गण =	क्रुध्	+ य +	ति	= क्रुध्यति =	(क्रुद्ध होता है)
षष्ठ-गण =	भुज्	+ अ +	ति	= भुजति =	(तेढा होता है)
दशम-गण =	गण्	+अय+	ति	= गणयति =	(गिनता है)
द्वितीय ,, =	अद्	+ ० +	ति	= अत्ति =	(खाता है)
,,	पा	+ ० +	ति	= पाति =	(रक्षण करता है)
,,	या	+ ० +	ति	= याति =	(जाता है)

पाठकोंके ध्यानमें द्वितीयगणकी विशेषता अब आगई ही होगी। अब इनके रूप देखिये—

' अद् ' = (खाना, भक्षण करना)

परस्मैपद ।

१ लट् (वर्तमानकाल) = १ अत्ति, अत्तः, अदन्ति । २ अत्सि, अत्थः, अत्थ । ३ अद्मि, अद्वः, अद्मः ॥

२ लोट् (आज्ञार्थ) = १ अत्तु, अत्ताम्, अदन्तु । २ अद्धि, अत्तम्, अत्त । ३ अदानि, अदाव, अदाम ॥

३ लङ् (अनद्यतनभूत) = १ आदत्, आत्ताम्, आदन् । २ आदः, आत्तम्, आत्त । ३ आदम्, आद्व, आद्म ॥

४ लिङ् (विधिलिङ्) = १ अद्यात्, अद्याताम्, अद्युः । २ अद्याः, अद्यातम्, अद्यात । ३ अद्याम्, अद्याव, अद्याम ॥

द्वितीयगण परस्मैपदके धातु ।

अद् = भक्षण करना । अत्ति । आदत् । आद । अत्ता । अत्स्यति ।

अन् = प्राण—श्वासोच्छ्वास करना । अनिति । आन । अनिता । अनिष्यति ।

अस् = होना । अस्ति । आसीत् । भविता । भविष्यति ।

ई = जाना । एति । अयांचकार । एता । एष्यति ।

कु = शब्द करना । कौति । चुकुवे । कोता । कोष्यति ।

ख्या = कहना । ख्याति ।

चकास् = प्रकाशित होना । चकास्ति । चकासांचकार । चकासिता । चकासिष्यति ।

जक्ष् = खाना । जाक्षिति । जजक्ष । जाक्षिता । जाक्षिष्यति ।

जागृ = जागना । जागर्ति । जजागार । जागरिता । जागरिष्यति ।

दारिद्रा = दरिद्र होना । दरिद्राति । दरिद्रांचकार, ददरिद्रौ । दरिद्रिता । दरिद्रिष्यति ।

दा = काटना । दाति । ददौ । दाता । दास्यति ।

द्रा = भागना । द्राति । दद्रौ । द्राता । द्रास्यति ।

नु = स्तुति करना । नौति । नुनाव । नविता । नविष्यति ।

पा = रक्षण करना । पाति । पपौ । पाता । पास्यति ।

भा = प्रकाशित होना । भाति । बभौ । भाता । भास्यति ।

या = जाना । याति । ययौ । याता । यास्यति ।

मा = मापन करना । माति । ममौ । माता । मास्यति ।

यु = मिश्रण करना । यौति । युयाव । यविता । यविष्यति ।

रा = देना । राति । ररौ । राता । रास्यति ।

रुद् = रोना । रोदिति । रुरोद । रोदिता । रोदिष्यति ।

ला = देना, लेना । लाति । ललौ । लाता । लास्यति ।

वच् = बोलना । वाक्ति । उवाच । वक्ता । वक्ष्यति ।

इन धातुओंके रूप बना कर वाक्योंमें प्रयुक्त कीजिये--

*

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ अहं फलं अद्मि । त्वं फलं अत्सि किम् ? स किं फलं न अत्ति ? राम फलानि एव अत्तु ।

२ तत्र पुस्तकं अस्ति, परंतु दीपः नास्ति । त्वं कुत्र असि ? अहं अत्रैव अस्मि ।

३ स शोभनां कथां ख्याति । त्वं किं न ख्यासि ? यथा स शोभनां कथां आख्याति तथा त्वं किं न आख्यासि ?

४ अद्य स जागर्ति । अहं अद्य न जागर्मि । त्वं किमर्थं जागर्षि । स जागर्तु । त्वं जागृहि ।

५ राजा धनं ब्राह्मणाय राति । स तस्मै पुस्तकं रास्यति । अहं न तुभ्यं द्रव्यं रामि ।

६ राजा मानवान् पाति । राष्ट्रं अपि राजा एव पाति । त्वं किं पासि ? सर्वं ईश्वरः पाति ।

७ अश्वः शीघ्रं याति । श्वा अपि तथैव यातु । त्वं याहि इदानीं । अहं न यास्यामि । स यातु ।

८ त्वं किमर्थं रोदिषि ? यथा स रोदिति तथा कः अपि न रोदिति । अहं नैव रोदिष्यामि ।

९ स वक्ति । अहं वच्मि । त्वं वक्षि । स किं वक्ष्यति ? अहमपि तथैव वक्ष्यामि । मनुष्याः वचन्तु ।

१० मनुष्यः वनं एति । बालकः इदानीं गृहं एतु । त्वं किं तत्र न एष्यसि । अहं अपि नैव तत्र एष्यामि ।

द्वितीयगणके धातुओंके रूप ।

' अस् ' = (होना)

१ लट् (वर्तमान काल) = १ अस्ति, स्तः, सन्ति । २ असि, स्थः, स्थ । ३ अस्मि, स्वः, स्मः ॥

२ लोट् (आज्ञार्थ) = १ अस्तु, स्ताम्, सन्तु । २ एधि, स्तम्, स्त । ३ असानि, असाव, असाम ॥

३ लङ् (अनद्यतनभूत) = १ आसीत्, आस्ताम्, आसन् । आसीः, आस्तम्, आस्त । ३ आसम्, आस्व, आस्म ॥

४ लिङ् (विध्यर्थ) = १ स्यात्, स्याताम्, स्युः । २ स्याः, स्यातम्, स्यात । ३ स्याम्, स्याव, स्याम ॥

'इ' = (जाना)

१ लट् = १ एति, इतः, यन्ति । २ एषि, इथः, इथ । ३ एमि, इवः, इमः, ॥

२ लोट् = १ एतु, इताम्, यन्तु । २ एहि, इतम्, इत । ३ अयानि, अयाव, अयाम ॥

३ लङ् = १ ऐत्, ऐताम्, आयन् । २ ऐः, ऐतम्, ऐत । ३ आयम्, ऐव, ऐम ॥

४ लिङ् = १ इयात्, इयाताम्, इयुः । २ इयाः, इयातम्, इयात । ३ इयाम् इयाव, इयाम ॥

'ख्या' = (कहना)

१ लट् = ख्याति, ख्यातः, ख्यान्ति । २ ख्यासि, ख्याथः, ख्याथ । ३ ख्यामि, ख्यावः, ख्यामः ॥

२ लोट् = १ ख्यातु, ख्याताम्, ख्यान्तु । २ ख्याहि, ख्यातम्, ख्यात । ३ ख्यानि, ख्याव, ख्याम ॥

३ लङ् = १ अख्यात्, अख्याताम्, अख्युः- अख्यन् । २ अख्याः, अख्यातम्, अख्यात । ३ अख्याम्, अख्याव, अख्याम ॥

४ लिङ् = १ ख्यायात्, ख्यायाताम्, ख्यायुः । २ ख्यायाः, ख्यायातम्, ख्यायात । ३ ख्यायाम्, ख्यायाव, ख्यायाम ॥

'जागृ' = (जागना)

१ लट् = १ जागर्ति, जागृतः, जाग्रति। २ जागर्षि, जागृथः, जागृथ। ३ जागर्मि, जागृवः, जगृमः ॥

२ लोट् = १ जागर्तु, जागृताम्, जाग्रतु । २ जागृहि, जागृतम् जागृत। ३ जागराणि, जागराव, जागराम ॥

३ लङ् = १ अजागः, अजागृताम्, अजागरुः । २ अजागः, अजागृतम्, अजागृत। ३ अजागरम्, अजागृव, अजागृम ॥

४ लिङ् = १ जागृयात्, जागृयाताम्, जागृयुः । २ जागृयाः, जागृयातम्, जागृयात । ३ जागृयाम्, जागृयाव, जागृयाम ॥

सूचना

पाठकोंकी सुगमताके लिये कई धातुओंके रूप यहां दिये हैं। इस प्रकार अन्यान्य धातुओंके रूप पाठक बना सकते हैं और उनका प्रयोग वाक्योंमें कर सकते हैं।

पाठ १०

'नु' = (स्तुति करना)

१ लट् = १ नौति, नुतः, नुवन्ति । २ नौषि, नुथः, नुथ । ३ नौमि, नुवः, नुमः ॥

२ लोट् = १ नौतु, नुताम्, नुवन्तु । २ नुहि, नुतम्, नुत । ३ नवानि, नवाव, नवाम ॥

३ लङ् = १ अनौत्, अनुताम्, अनुवन् । २ अनौः, अनुतम्, अनुत । ३ अनुवम्, अनुव, अनुम ॥

४ लिङ् = १ नुयात्, नुयाताम्, नुयुः । २ नुयाः, नुयातम्, नुयात । ३ नुयाम्, नुयाव, नुयाम ॥

'वश्' = (इच्छा करना)

१ लट् = १ वष्टि, उष्टः, उशन्ति । २ वक्षि, उष्ठः, उष्ठ । ३ वश्मि, उश्वः उश्मः ॥

२ लोट् = १ वष्टु, उष्टाम्, उशन्तु । २ उड्ढि, उष्टम्, उष्ट । ३ वशानि, वशाव, वशाम ॥

'विद्' = (जानना)

१ लट् = १ वेत्ति, वित्तः, विदन्ति । २ वेत्सि, वित्थः, वित्थ । ३ वेद्मि, विद्वः विद्मः ॥

इसीके दूसरे रूप निम्नलिखित प्रकार होते हैं—

१ वेद, विदतुः, विदुः । २ वेत्थ, विदथुः, विद । ३ वेद, विद्व, विद्म ।

२ लोट् = १ वेत्तु, वित्ताम्, विदन्तु । २ विद्धि, वित्तम्, वित्त । ३ वेदानि, वेदाव, वेदाम ॥

इसीके दूसरे रूप निम्नलिखित प्रकार होते हैं—

१ विदाङ्करोतु, विदाङ्कुरुताम्, विदाङ्कुर्वन्तु । २ विदाङ्कुरु, विदाङ्कुरुतम्, विदाङ्कुरुत । ३ विदाङ्करवाणि, विदाङ्करवाव, विदाङ्करवाम ॥

३ लङ् = १ अवेत्, अवित्ताम्, अविदुः । अवेः, अवित्तम्, अवित्त । ३ अवेदम्, अविद्व, अविद्म ॥

४ लिङ् = १ विद्यात्, विद्याताम्, विद्युः । विद्याः, विद्यातम्, विद्यात । ३ विद्याम्, विद्याव, विद्याम ॥

'शास्' = (राज्य करना)

१ लट् = शास्ति, शिष्टः, शासति । २ शास्सि, शिष्ठः, शिष्ठ । ३ शास्मि, शिष्वः, शिष्मः ॥

२ लोट् = १ शास्तु, शिष्टाम्, शासतु । २ शाधि, शिष्टम्, शिष्ट । ३ शासानि, शासाव, शासाम ॥

३ लङ् = १ अशात्, अशिष्टाम्, अशासुः । २ अशाः, अशिष्टम्, अशिष्ट । ३ अशासम्, अशिष्व, अशिष्म ॥

४ लिङ् = १ शिष्यात्, शिष्याताम्, शिष्युः । २ शिष्याः शिष्यातम्, शिष्यात । ३ शिष्याम्, शिष्याव, शिष्याम ॥

पाठक इस प्रकार द्वितीय गण परस्मैपदी धातुओंके रूप बनाकर वाक्यों-में प्रयुक्त करें—

द्वितीयगण परस्मैपद धातु ।

वश् = इच्छा करना । वष्टि । उवाश । वशिता । वशिष्यति ।
वा = जाना । वाति । ववौ । वाता । वास्यति ।
विद् = जानना । वेत्ति, वेद । विवेद, विदांचकार । वेदितां । वेदिष्यति ।
वी = जाना । वेति । विवाय । वेता । वेष्यति ।
शास् = शासन करना । शास्ति । शशास । शासिता । शासिष्यति ।
श्रा = पकाना । श्राति । शश्रौ । श्राता । श्रास्यति ।
श्वस् = श्वास लेना । श्वसिति । शश्वास । श्वसिता । श्वसिष्यति ।
सु = प्रसव होना । सौति । सुषाव । सोता । सोष्यति ।
स्ना = स्नान करना । स्नाति । सस्नौ । स्नाता । स्नास्यति ।
स्वप् = सोना । स्वपिति । सुष्वाप । स्वप्ता । स्वप्स्यति ।
हन् = हिंसा करना । हन्ति । जघान । हन्ता । हनिष्यति ।

संस्कृत--वाक्यानि ।

१ अहं वने व्याघ्रान् हन्मि । त्वं तत्र कं हंसि ? सः अत्र वानरं हन्ति । व्याधः मृगान् मा हन्तु । शूराः शत्रून् युद्धे घ्नन्ति । २ त्वं किमर्थं तं हंसि। अहं नैव हनिष्यामि । स हनिष्यति किम् ? त्वं मा जहि। ३ स तस्य तडागस्य जलेन तत्र स्नाति । अहमपि तथैव स्नामि । त्वं न स्नास्यसि किम् ? ४ सर्वे प्राणिनः श्वसन्ति । त्वं श्वसिषि । अहं अपि श्वसिमि । त्वं श्वसिष्यसि । अहं श्वसिष्यामि । ५ राजा राष्ट्रं शास्ति । राजपुत्रः कदा राज्यं शासिष्यति । राज्ञः प्रथमः पुत्रः एव शासिष्यति नान्यः ।

सात्यकिरुवाच ।

यादृशः पुरुषस्यात्मा तादृशं संप्रभाषसे ।
यथारूपोऽन्तरात्मा ते तथारूपं प्रभाषसे ॥ १ ॥
सन्ति वै पुरुषाः शूराः सन्ति कापुरुषास्तथा ।
उभावेतौ दृढौ पक्षौ दृश्येते पुरुषान्प्रति ॥ २ ॥
एकस्मिन्नेव जायेते कुले क्लीबमहाबलौ ।
फलाफलवती शाखे यथैकस्मिन्वनस्पतौ ॥ ३ ॥

(महाभारत उद्योग० ३)

सात्यकिः उवाच = पुरुषस्य यादृशः आत्मा तादृशं (त्वं) संप्रभाषसे। ते अन्तरात्मा यथारूपः तथारूपं (त्वं) प्रभाषसे ॥ १ ॥ पुरुषाः शूराः सन्ति वै, तथा कापुरुषाः (अपि) सन्ति । एतौ उभौ (अपि) दृढौ पक्षौ पुरुषान्प्रति दृश्येते ॥ २ ॥ एकस्मिन् एव कुले क्लीबमहाबलौ जायेते । यथा एकस्मिन् वनस्पतौ फलाफलवती शाखे (भवतः) ॥ ३ ॥

यादृशः = जैसा
तादृशः = वैसा
भाष् = बोलना
यथारूप = जैसा
दृढ = बलवान्

क्लीब = बलहीन
कुल = वंश
महाबल = बलवान
फलाफलवती = फलवती और फल न देनेवाली

पाठक इस प्रकार संस्कृत श्लोकोंका अध्ययन कर सकते हैं ।

पाठ ११

द्वितीयगण आत्मनेपद धातु।

' आस् ' = (बैठना)

१ लट् = १ आस्ते, आसाते, आसते। २ आस्से, आसाथे, आध्वे। ३ आसे, आस्वहे, आस्महे ॥

२ लोट् = १ आस्ताम्, आसाताम्, आसताम्। २ आस्व, आसाथाम् आध्वम्। ३ आसै, आसावहै, आसामहै ॥

३ लङ् = १ आस्त, आसाताम्, आसत। २ आस्थाः, आसाथाम्, आध्वम्। ३ आसि, आस्वहि, आस्महि ॥

४ लिङ् = १ आसीत, आसीयाताम्, आसीरन्। २ आसीथाः, आसीयाथाम्, आसीध्वम्। ३ आसीय, आसीवहि, आसीमहि ॥

' चक्ष् ' = (बोलना)

१ लट् = १ चष्टे, चक्षाते, चक्षते। २ चक्षे, चक्षाथे, चड्ढ्वे। ३ चक्षे, चक्ष्वहे, चक्ष्महे ॥

२ लोट् = १ चष्टाम्, चक्षाताम्, चक्षताम्। २ चक्ष्व, चक्षाथाम्, चड्ढ्वम्। २ चक्षै, चक्षावहै, चक्षामहै ॥

३ लङ् = १ अचष्ट, अचक्षाताम्, अचक्षत। २ अचष्टाः, अचक्षाथाम्, अचड्ढ्वम्। ३ अचाक्षि, अचक्ष्वहि, अचक्ष्महि ॥

४ लिङ् = १ चक्षीत, चक्षीयाताम् चक्षीरन्। २ चक्षीथाः, चक्षीयाथाम् चक्षीध्वम्। ३ चक्षीय, चक्षीवहि, चक्षीमहि ॥

इस प्रकार निम्नलिखित धातुओंके रूप पाठक बना सकते हैं—

द्वितीयगण आत्मनेपदके धातु।

आस् = बैठना। आस्ते। आसांचक्रे। आसिता। आसिष्यते।
ईश् = समर्थ होना। ईष्टे। ईशांचक्रे। ईशिता। ईशिष्यते।

चक्ष् = बोलना। चष्टे। चचक्षे। ख्याता। ख्यास्यति-ते।
वस् = आच्छादन करना। वस्ते। ववसे। वसिता। वसिष्यते।
वृज् = वर्ज करना। वृक्ते। ववृजे। वर्जिता। वर्जिष्यते।
आशास् = इच्छा करना। आशास्ते। आशशासे। आशासिता। आशासिष्यते।
शी = सोना। शेते। शिश्ये। शयिता। शयिष्यते।
सू = प्रसूत होना। सूते। सुषुवे। सोता, सविता। सोष्यते। सविष्यते।

संस्कृत-वाक्यानि।

१ स पुरुषः वृक्षस्य अधस्तात् आस्ते। तौ पुरुषौ तत्र आसाते। सर्वे बालकाः तत्र आसते। त्वं कुत्र आस्से।

२ ईशः सर्वं जगत् ईष्टे। त्वं किं ईशिषे ? ते सर्वे राजानः ईशते। वयं सर्वेऽपि ईश्महे। अहं ईशे।

३ स बालः शोभनं चष्टे। त्वं इदानीं किं चक्षे ? सः अपि किं चक्षे। ते शूराः किं चक्षते।

४ मनुष्याः तत्र वसते। त्वं कुत्र वस्से ? अहं अत्र वसे। स तत्र वस्ताम्। त्वं अत्र वस्स्व।

५ मनुष्यः धनं आशास्ते। त्वं किं आशास्से ? अहं न किमपि आशासे।

६ नारी पुत्रं सूते। अहं बालकं सुवे। ताः स्त्रियः पुत्रान् सुवते। यूयं सूध्वे।

द्वितीयगणके उभयपदी धातु।

'ब्रू' = (बोलना)

१ लट् (परस्मै०) १ ब्रवीति, ब्रूतः, ब्रुवन्ति। २ ब्रवीषि, ब्रूथः, ब्रूथ। ३ ब्रवीमि, ब्रूवः, ब्रूमः॥

(परस्मै०) इसीके और एक प्रकारसे रूप होते हैं = १ आह, आहतुः, आहुः। २ आत्थ, आहथुः, ब्रूव। ३ ब्रवीमि, ब्रूवः, ब्रूमः॥

(आत्मने०) = १ ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते। २ ब्रूषे, ब्रुवाथे, ब्रूध्वे। ३ ब्रुवे, ब्रूवहे, ब्रूमहे ॥

२ लोट् = (परस्मै०) १ ब्रवीतु, ब्रूताम्, ब्रुवन्तु। २ ब्रूहि, ब्रूतम्, ब्रूत। ३ ब्रवाणि, ब्रवाव, ब्रवाम ॥

(आत्मने०) = १ ब्रूताम्, ब्रुवाताम्, ब्रुवताम्। २ ब्रूष्व, ब्रुवाथाम्, ब्रूध्वम्। ३ ब्रवै, ब्रवावहै, ब्रवामहै ॥

३ लङ् = (परस्मै०) = १ अब्रवीत्, अब्रूताम्, अब्रुवन्। २ अब्रवीः, अब्रूतम्, अब्रूत। ३ अब्रवम्, अब्रूव, अब्रूम ॥

(आत्मने०) = १ अब्रूत, अब्रुवाताम्, अब्रुवत। २ अब्रूथाः, अब्रुवाथाम्, अब्रूध्वम्। ३ अब्रुवि, अब्रूवहि, अब्रूमहि ॥

४ लिङ् = (परस्मै०) = १ ब्रूयात्, ब्रूयाताम्, ब्रूयुः। २ ब्रूयाः, ब्रूयातम्, ब्रूयात। ३ ब्रूयाम्, ब्रूयाव, ब्रूयाम ॥

(आत्मने०) = १ ब्रुवीत, ब्रुवीयाताम्, ब्रुवीरन्। २ ब्रुवीथाः, ब्रुवीयाथाम्, ब्रुवीध्वम्। ३ ब्रुवीय, ब्रुवीवहि, ब्रुवीमहि ॥

उभयपदी धातुओंके रूप परस्मैपदके समान, तथा आत्मनेपदके समान भी होते हैं। इस विषयमें पहले कईवार कहा ही है।

द्वितीय गण उभयपदके धातु।

दुह् = दूध निकालना। दोग्धि, दुग्धे। दुदोह, दुदुहे। दोग्धा। धोक्ष्यति-ते।

द्विष् = द्वेष करना। द्वेष्टि, द्विष्टे। दिद्वेष, दिद्विषे। द्वेष्टा। द्वेक्ष्यति।

ब्रू = बोलना। ब्रवीति, ब्रूते। उवाच, ऊचे। वक्ता। वक्ष्यति।

लिह् = स्वाद लेना। लेढि, लीढे। लिलेह, लिलिहे। लेढा। लेक्ष्यति।

स्तु = स्तुति करना। स्तौति, स्तवीति—स्तुते, स्तुवीते। तुष्टाव, तुष्टुवे। स्तोता। स्तोष्यति—ते।

संस्कृत--वाक्यानि ।

१ भक्तः ईश्वरं स्तौति । त्वं कं स्तौषि ? अहं कं अपि मानवं न स्तौमि । सर्वे बालकाः परमेश्वरं स्तुवन्तु ।

२ स किं ब्रवीति ? त्वं किं ब्रवीषि ? अहं न किमपि ब्रवीमि । स ब्रूताम् । त्वं ब्रूहि ।

३ कं त्वं द्वेक्षि ? अहं न कमपि द्वेष्मि । यः सर्वदा एव द्वेष्टि स द्वेष्टु ।

४ माता गां दोग्धि । त्वं किं न गां धोक्षि ? अहं न दोह्मि किन्तु मम पत्नी दोग्धि । सर्वे मानवाः गावः दुहन्तु ।

५ बालकः मधु लेढि । त्वं क्षीरं लेक्षि किम् ? अहं क्षीरं न लेह्मि । प्राणिनः फलं लिहन्ति ।

पाठक इस प्रकार उभयपदी धातुओंके रूप बनावें और उनका उपयोग करें ।

यहां द्वितीयगणका विचार समाप्त हुआ ।

पाठ १२

(म० भा० अनु० अ० १)

भीष्म उवाच-अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यथा मृत्युर्गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः ॥ ४ ॥
मनोः प्रजापते राजन्निक्ष्वाकुरभवत्सुतः ।
तस्य पुत्रशतं जज्ञे नृपतेः सूर्यवर्चसः ॥ ५ ॥
दशमस्तस्य पुत्रस्तु दशाश्वो नाम भारत ।
माहिष्मत्यामभूद्राजा धर्मात्मा सत्यविक्रमः ॥ ६ ॥
दशाश्वस्य सुतस्त्वासीद्राजा परमधार्मिकः ।
सत्ये तपसि दाने च यस्य नित्यं रतं मनः ॥ ७ ॥
मदिराश्व इति ख्यातः पृथिव्यां पृथिवीपतिः ।
धनुर्वेदे च वेदे च निरतो योऽभवत्सदा ॥ ८ ॥

भीष्मः उवाच— गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य धर्मं कृत्वा यथा येन प्रकारेण मृत्युः मरणं निर्जितः जितः अत्रापि अस्मिन् विषये अपि पुरातनं प्राचीनं इतिहासं कथां (वृद्धाः) उदाहरन्ति कथयन्ति ॥ ४ ॥ हे राजन् ! हे नृप ! प्रजापतेः नराधिपस्य मनोः इक्ष्वाकुः इक्ष्वाकुनामा सुतः पुत्रः जातः । सूर्य-वर्चसो रवितुल्यप्रभावस्य नृपतेः भूपस्य तस्य इक्ष्वाकोः पत्रशतं शतसंख्याः सुताः जज्ञे जाताः ॥ ५ ॥ हे भारत ! तस्य इक्ष्वाकोः दशमः दशाश्वो नाम पुत्रः तु सुतः तु माहिष्मत्यां नगर्यां धर्मात्मा धर्मनिष्ठः सत्यविक्रमः यथार्थ-पराक्रमः राजा अभूत् अभवत् ॥ ६ ॥ यस्य मनः चेतः नित्यं सदा सत्ये यथार्थभाषणे तपसि उपवासादितपश्चरणे दाने त्यागे च रतं आसक्तं आसीत्, सः दशाश्वस्य सुतः पुत्रः तु परमधार्मिकः राजा नृपः आसीत् बभूव ॥ ७ ॥ यः पृथिवीपतिः भूपतिः सदा सर्वस्मिन् काले धनुर्वेदे धनुर्विद्यायां वेदे श्रुतौ च निरतः प्रवीणः मदिराश्व इति च पृथिव्यां ख्यातः अभवत् स एव दशा-श्वस्य पुत्रः ॥ ८ ॥

मदिराश्वस्य पुत्रस्तु द्युतिमान्नाम पार्थिवः ।
महाभागो महातेजा महासत्त्वो महाबलः ॥ ९ ॥

पुत्रो द्युतिमतस्त्वासीद्राजा परमधार्मिकः ।
सर्वलोकेषु विख्यातः सुवीरो नाम नामतः ॥ १० ॥

धर्मात्मा कोषवांश्चापि देवराज इवापरः ।
सुवीरस्य तु पुत्रोऽभूत्सर्वसंग्रामदुर्जयः ॥ ११ ॥

स दुर्जय इति ख्यातः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
दुर्जयस्येन्द्रवपुषः पुत्रोऽश्विसदृशद्युतिः ॥ १२ ॥

दुर्योधनो नाम महान् राजा राजर्षिसत्तमः ।
तस्येन्द्रसमवीर्यस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥ १३ ॥

मदिराश्वस्य पुत्रः सूनुः तु महाभागः महाभाग्यशाली महातेजाः विपुल-पराक्रमः महासत्त्वः अतीव धैर्यवान् महाबलः अतीव बलिष्ठः द्युतिमान्नाम पार्थिवः पृथिवीपतिः अभूत् ॥ ९ ॥ द्युतिमतः पुत्रः तु परमधार्मिकः अतिशयेन धर्मरतः सर्वलोकेषु सर्वेषु अखिलेषु लोकेषु भारतादिषु प्रदेशेषु विख्यातः प्रसिद्धिं गतः नामतः नाम्ना सुवीरो नाम सुवीर इति ख्यातः राजा नृपः आसीत् अभवत् ॥ १० ॥ सुवीरस्य तु पुत्रः सर्वसंग्रामदुर्जयः अखिलेषु युद्धेषु परैः दुर्जयः दुःखेन जेतुं शक्यः अपरः द्वितीयः देवराज इन्द्रः इव धर्मात्मा धर्मरतः अपि च कोषवान् अभूत् ॥ ११ ॥ सर्वशस्त्र-भृतां निखिलशस्त्रधारिणां मध्ये वरः श्रेष्ठः सः सुवीरस्य पुत्रः दुर्जयः इति दुर्जयनाम्ना ख्यातः प्रसिद्धिं गतः । इन्द्रवपुषः इंद्रसमानशरीरस्य अश्वि-सदृशद्युतिः अश्विदेवसमानरूपः ॥१२॥ राजर्षिसत्तमः ऋषितुल्यनृपाणां मध्ये श्रेष्ठः दुर्योधनो नाम महान् राजा आसीत् । इन्द्रसमवीर्यस्य इन्द्रतुल्यपरा-क्रमस्य संग्रामेषु युद्धेषु अनिवर्तिनः अपलायमानस्य तस्य ॥ १३ ॥

विषये वासवस्तस्य सम्यगेव प्रवर्षति ।
रत्नैर्धनैश्च पशुभिः सस्यैश्चापि पृथग्विधैः ॥ १४ ॥
नगरं विषयश्चास्य प्रतिपूर्णस्तदाऽभवत् ।
न तस्य विषये चाभूत्कृपणो नापि दुर्गतः ॥ १५ ॥
व्याधितो वा कृशो वाऽपि तस्मिन्नाभून्नरः क्वचित् ।
सुदक्षिणो मधुरवागनसूयुर्जितेन्द्रियः ।
धर्मात्मा चानृशंसश्च विक्रान्तोऽथाविकत्थनः ॥ १६ ॥
यज्वा च दान्तो मेधावी ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ।
न चावमन्ता दाता च वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १७ ॥
तं नर्मदा देवनदी पुण्या शीतजला शिवा ।
चकमे पुरुषव्याघ्रं स्वेन भावेन भारत ॥ १८ ॥

तस्य देशे वासवः इन्द्रः सम्यगेव उत्तमप्रकारेण प्रवर्षति वृष्टिं करोति। अस्य नगरं विषयः देशः च रत्नैः मणिभिः धनैः द्रव्यैः अपि च पृथग्विधैः धान्यैः ॥१४॥तदा प्रतिपूर्णः परिपूर्णः अभवत् । तस्य विषये देशे कृपणो अदानशूरः दुर्गतः दरिद्रः अपि न अभूत् ॥ १५ ॥ तस्मिन् तस्य देशे क्वचित् व्याधितः रुग्णः कृशः दुर्बलः अपि वा नरः मनुष्यः नाभूत् नासीत् । स च सुदक्षिणः अतीव उदारः मधुरवाक् मधुरभाषी अनसूयुः विगतद्वेषः जितेन्द्रियः संयतेन्द्रियः धर्मात्मा धार्मिकः अनृशंसः अक्रूरः विक्रान्तः विक्रमशाली अथ आपिच अविकत्थनः आत्मश्लाघामकुर्वाणः ॥ १६ ॥ यज्वा विधिपूर्वक यज्ञकर्ता दान्तः बाह्येन्द्रियविजयी मेधावी बुद्धिमान् ब्रह्मण्यः ब्राह्मणभक्तः सत्यसंगरः सत्यप्रतिज्ञः अभवत्, अवमन्ता परेषां अवमानशीलः च न आसीत् दाता दानशीलः च वेदवेदाङ्गपारगः वेदेषु शिक्षादिषु वेदानामङ्गेषु च प्रवीणः आसीत् ॥ १७ ॥ पुरुषव्याघ्रं तं दुर्योधनं पुण्या पुण्यसाधनीभूता शीतजला शीतलोदका शिवा मंगलकारिणी देवनदी देवानां अमराणां नदी नर्मदा स्वेन स्वकीयेन भावेन मनसा चकमे वरयामास ॥ १८ ॥

तस्यां जज्ञे तदा नद्यां कन्या राजीवलोचना ।
नाम्ना सुदर्शना राजन् रूपेण च सुदर्शना ॥ १९ ॥
तादृग् रूपा न नारीषु भूतपूर्वा युधिष्ठिर ।
दुर्योधनसुता यादृगभवद्वरवर्णिनी ॥ २० ॥
तामग्निश्चकमे साक्षाद्राजकन्यां सुदर्शनाम् ।
भूत्वा च ब्राह्मणो राजन् वरयामास तं नृपम् ॥ २१ ॥
दरिद्रश्चासवर्णश्च ममायमिति पार्थिवः ।
न दित्सति सुतां तस्मै तां विप्राय सुदर्शनाम् ॥ २२ ॥
ततोऽस्य वितते यज्ञे नष्टोऽभूद्धव्यवाहनः ।
ततः सुदुःखितो राजा वाक्यमाह द्विजांस्तदा ॥ २३ ॥

हे राजन् ! तदा तस्यां नद्यां नर्मदायां राजीवलोचना कमलसदृशलोचना नाम्ना सुदर्शना रूपेण च सुदर्शना दर्शनीय कन्या बाला जज्ञे जाता ॥१९॥ दुर्योधनसुता दुर्योधनस्य पुत्री यादृग् यादृशी वरवर्णिनी उत्तमरूपवती अभवत् बभूव, हे युधिष्ठिर ! तादृग् रूपा नारीषु भूतपूर्वा न पूर्वं न भूता ॥ २० ॥ हे राजन् ! तां राजकन्यां सुदर्शनां साक्षात् अग्निः चकमे ऐच्छत् । अग्निः च ब्राह्मणो भूत्वा ब्राह्मणवेषं गृहीत्वा तं दुर्योधनं नृपं वरयामास प्रार्थयामास ॥ २१ ॥ पार्थिव राजा अयं दरिद्रः निर्धनः मम असवर्णः भिन्नवर्णीयः च इति मत्वा तस्मै विप्राय तां सुदर्शनां सुतां कन्यां न दित्सति दातुं नेच्छति स्म ॥ २२ ॥ ततः अनंतरं अस्य दुर्योधनस्य वितते आरब्धे यज्ञे हव्यवाहनः अग्निः नष्टोऽभूत् नाशं गतः । ततः अग्नि-नाशानन्तरं राजा दुर्योधनः सुदुःखितो नितरां दुःखितो भूत्वा तदा द्विजान् वाक्यं वक्ष्यमाणं आह उक्तवान् ॥ २३ ॥

शतपथ-बोधामृत

शतपथके बोध-वचनोंका संग्रह मू. ।≈) डा. व्य. –)

धर्मशिक्षाके ग्रन्थ

बालक और बालिकाओंकी पाठशालाओंमें तथा घरोंमें बालबच्चोंकी धार्मिक पढाईके लिये ये ग्रन्थ विशेष रीतिसे तैयार किये हैं।

बालकोंकी धर्म शिक्षा

(१) **वैदिक पाठमाला** (तृतीय श्रेणीके लिये) मू. ।) डा. व्य.–)

छूत और अछूत

इस पुस्तकमें श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, धर्मसूत्र आदिके प्रमाणोंसे छुताछुतका विचार किया है।

प्रथम भाग मूल्य १) डा. व्य. ।–)

द्वितीय भाग मूल्य १) डा. व्य. ।–)

आगम-निबंध-माला

वेद अनंत विद्याओंका समुद्र है। इस वेद-समुद्रका मंथन करनेसे अनेक 'ज्ञानरत्न' प्राप्त होते हैं, इन रत्नोंकी यह माला है।

	मू.	डा. व्य.
१ वैदिक स्वराज्यकी महिमा	॥।)	=)
२ वैदिक सर्पविद्या	॥=)	=)
३ वेदमें चर्खा	॥=)	=)
४ वेदमें लोहेके कारखाने	॥)	–)
५ इंद्रशक्तिका विकास	॥।)	=)
६ वैदिक चिकित्सा	१॥)	॥)

मंत्री– **स्वाध्याय-मण्डल,** 'आनन्दाश्रम' **किल्ला-पारडी** (जि. सूरत)

संस्कृत-पाठ-माला ।

[संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

षोडशो भागः ।

—०—

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,

स्वाध्याय-मंडल, पारडी, (जि० सूरत)

—०—

चतुर्थ वार

—०—

संवत् २००६, शके १८७१, सन १९४९

———

मूल्य ८ आने

संस्कृत-पाठ-माला ।

[संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

षोडशो भागः ।

—०—

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मंडल, पारडी, (जि० सूरत)

—०—

चतुर्थ वार

—०—

संवत् २००६, शके १८७१, सन १९४९

मूल्य ८ आने

धातुओंके शेष गण

पूर्व भागोंमें प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ और दशमगणके धातुओंके रूप बनानेकी रीति बता दी है और इस भागमें तृतीय, पंचम, सप्तम, अष्टम और नवम गणोंके धातुओंके रूप बनानेकी रीति बतानी है। यदि यह भाग पाठकोंका ठीक प्रकार स्मरण हुआ तो सब गणोंके साथ पाठकोंका परिचय हो जायगा और इतना अभ्यास होनेसे पाठक क्रियापदविचारके साथ परिचित हो जायेंगे।

स्वाध्याय-मण्डल,
पारडी (जि. सूरत)

निवेदक
पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

मुद्रक तथा प्रकाशक- व० श्री० सातवलेकर, बी. ए.
भारत-मुद्रणालय, 'आनन्दाश्रम' पारडी, (जि. सूरत)

ॐ

संस्कृत-पाठ-माला।

षोडशो भागः।

पाठ १

तृतीयगण परस्मैपदके धातु।

तृतीय गणके धातुओंको प्रत्यय लगनेके पूर्व धातुके प्रथमाक्षरका द्वित्व होता है, जैसा—

" दा " (देना) इसका " ददाति " रूप होता है। इसके बनानेकी रीति यह है= दा दा, ददा+ति= ददाति। प्रथमाक्षर दीर्घ रहा तो वह ऱ्हस्व बनता है। इस नियमानुसार " दा दा " का " ददा " बना और " ति " प्रत्यय लगकर " ददाति " रूप बना।

" धा " (धारण करना) इसका " दधाति " होता है। " धाधा " " धधा " " दधा + ति = दधाति " होता है। वर्गका तीसरा अक्षर बन जाता है। " ध " अक्षर तवर्गमें चौथा है इसलिये उसका तीसरा अक्षर " द " बनता है। इस नियमानुकूल " धधा " का " दधा " होता है।

प्रथमाक्षरके कवर्गके स्थानपर चवर्गका तृतीयाक्षर बनता है; जैसा-
" गा " (स्तुति करना) " गागा, गगा, जगा जिगा+ति= जिगाति "
' भी ' (भयभीत होना) ' भी भी, बिभी, बिभे+ति= बिभेति।'

❀

हकारका भी जकार बनता है; जैसा ' हु ' (हवन करना) ' हु हु, जुहु, जुहो+ति = जुहोति ' इत्यादि प्रकार रूप बनते हैं। प्रायः ' लिट् ' के रूपोंमें पाठकोंने यह बात देखीही होगी। पाठकोंकी सुविधाके लिये यहां कुछ धातुओंके रूप दिये जाते हैं—

परस्मैपद ।

'हु' = (हवन करना)।

१ लट् = १ जुहोति, जुहुतः, जुह्वति । २ जुहोषि, जुहुथः, जुहुथ। ३जुहोमि, जुहुवः, जुहुमः ॥

२ लोट् = १ जुहोतु, जुहुताम्, जुह्वतु । २ जुहुधि, जुहुतम्, जुहुत। ३ जुहवानि, जुहवाव, जुहवाम ॥

३ लङ् = १ अजुहोत्, अजुहुताम्, अजुहवुः । २ अजुहोः, अजुहुतम्, अजुहुत । ३ अजुहवम्, अजुहुव, अजुहुम ॥

४ लिङ् = १ जुहुयात्, जुहुयाताम्, जुहुयुः। २ जुहुयाः, जुहुयातम्, जुहुयात । ३ जुहुयाम्, जुहुयाव, जुहुयाम ॥

५ लिट् = १ जुहाव, जुहुवतुः, जुहुवुः । २ जुहविथ, जुहुवथुः, जुहुव । ३ जुहाव, जुहुविव, जुहुविम ॥

१ जुहवांचकार, जुहवांचक्रतुः, जुहवांचक्रुः । २ जुहवांचकर्थ, जुहवांचक्रथुः, जुहवांचक्र। ३ जुहवांचकार, जुहवांचकृव, जुहवांचकृम ॥

६ लृट् = १ होष्यति, होष्यतः, होष्यन्ति । २ होष्यसि, होष्यथः, होष्यथ । ३ होष्यामि, होष्यावः, होष्यामः ॥

पाठक इस प्रकार धातुओंके रूप बनाकर वाक्योंमें उनका उपयोग करें।

———

पाठ २

तृतीयगण परस्मैपदके धातु ।

ऋ = जाना । इयर्ति । आर । अर्ता । अरिष्यति ।
कित् = जानना । चिकेत्ति । चिकेत । केतिता । केतिष्यति ।
गा = स्तुति करना । जिगाति । जगौ । गाता । गास्यति ।
घृ = चूना, प्रकाशना । जिघर्ति । जघार । घर्ता । घरिष्यति ।
पृ = पालन पूरण करना । पिपर्ति । पपार । परिता । परिष्यति ।
भी = भयभीत होना । बिभेति । बिभाय, बिभयांचकार । भेता । भेष्यति ।
हा = त्यागना । जहाति । जहौ । हाता । हास्यति ।
हु = लेना, देना, हवन करना । जुहोति । जुहाव, जुहवांचकार । होता, होष्यति ।
ह्री = लज्जित होना । जिह्रेति । जिह्राय, जिह्रयांचकार । ह्रेता । ह्रेष्यति ।

संस्कृत–वाक्यानि ।

१ यजमानः यज्ञे आहुतीः जुहोति । ब्रह्मचारिणः अग्नौ आहुतीः जुह्वति । त्वं किं न होष्यसि । ह्यः तत्र कः अजुहोत् ?

२ वीरः अशक्तान् पिपर्ति । स कं पपार । ते सर्वेऽपि तान् पिप्रुः । त्वं परिष्यसि किम् ?

३ अहं चौरात् न बिभेमि । स व्याघ्रात् अपि न बिभेति । वीराः पुरुषाः कस्मिन् अपि युद्धे न बिभ्यति ।

४ स्त्रियः सदा जिह्रियति । पुरुषाः कदापि न जिह्रियति । ते सर्वे जिह्रयांचक्रुः । नारी ह्रेष्यति एव ।

५ ईश्वरः सर्वं चिकेत्ति । मनुष्यः केन साधनेन एवं केतिष्यति ? योगी पुरुषः सर्वं मनोगतं चिकेत ।

तृतीयगण आत्मनेपदके धातु ।

मा = मिनना, तुलना करना । मिमीते । ममे । माता । मास्यते ।
हा = जाना । जिहीते । जहे । हाता । हास्यते ।

इन धातुओंके रूप

'मा'=(मिलना)

१ लट् = १ मिमीते, मिमाते, मिमते । २ मिमीषे, मिमाथे, मिमीध्वे । ३ मिमे, मिमीवहे, मिमीमहे ॥
२ लोट् = १ मिमीताम्, मिमाताम्, मिमताम् । २ मिमीष्व, मिमाथाम्, मिमीध्वम् । ३ मिमै, मिमावहै, मिमामहै ॥
३ लङ् = १ अमिमीत, अमिमाताम्, अमिमत । २ अमिमीथाः, अमिमाथाम्, अमिमीध्वम् । ३ अमिमि, अमिमीवहि, अमिमीमहि ॥
४ लिङ् = १ मिमीत, मिमीयाताम्, मिमीरन् । २ मिमीथाः, मिमीयाथाम्, मिमीध्वम् । ३ मिमीय, मिमीवहि, मिमीमहि ॥

' हा ' = (त्यागना)

१ लट् = १ जिहीते, जिहाते, जिहते । २ जिहीषे, जिहाथे, जिहीध्वे । ३ जिहे, जिहीवहे, जिहीमहे ॥
पाठक इसी प्रकार आत्मनेपदके रूप बना सकते हैं ।

संस्कृत- वाक्यानि ।

१ स धान्यं मिमीते । अहं घृतं न अमिमि । त्वं मिमीष्व । ते भूमिं मिमताम् ॥

पाठ ३

तृतीयगण उभयपदके धातु ।

दा = देना। ददाति, दत्ते। ददौ, ददे। दाता दास्यति— ते।

धा = धारण पोषण करना। दधाति, धत्ते। दधौ, दधे। धाता। धास्यति—ते।

निज्= शुद्ध करना। नेनेक्ति, नेनिक्ते। निनेज, निनिजे। नेक्ता। नेक्ष्यति-ते।

भृ= धारण पोषण करना। बिभर्ति, बिभृते। बभार, बभ्रे, बिभरांचकार-चक्रे। भर्ता। भरिष्यति-ते।

विज् = पृथक् होना। वेवेक्ति, विविक्ते। विवेज, विविजे। वेक्ता, वेक्ष्यति-ते।

विष् = व्यापना। वेवेष्टि, वेविष्टे। विवेष, विविषे। वेष्टा। वेक्ष्यति-ते।

धातुओंके रूप ।

लट् = (परस्मै०) १ ददाति, दत्तः, ददति। २ ददासि, दत्थः, दत्थ। ३ ददामि, दद्वः, दद्मः॥

(आत्मने०) = १ दत्ते, ददाते, ददते। २ दत्से, ददाथे, दद्ध्वे॥ ३ ददे, दद्वहे, दद्महे॥

लोट् = (परस्मै०) १ ददातु, दत्ताम्, ददतु। २ देहि, दत्तम्, दत्त। ३ ददानि, ददाव, ददाम॥

(आत्मने०)= १ दत्ताम्, ददाताम्, ददताम्। २ दत्स्व, ददाथाम्, दद्ध्वम्। ३ ददै, ददावहै, ददामहै॥

लङ् = (परस्मै०) १ अददात्, अदत्ताम्, अददुः। २ अददाः, अदत्तम्, अदत्त। ३ अददाम्, अदद्व, अदद्म॥

(आत्मने०) १ अदत्त, अददाताम्, अददत। २ अदत्थाः, अददाथाम्, अदद्ध्वम्। ३ अददि, अदद्वहि, अदद्महि॥

'भृ' = (धारण-पोषण करना)

लट् = (परस्मै०) बिभर्ति, बिभृतः, बिभ्रति। २ बिभर्षि, बिभृथः, बिभृथ। ३ बिभर्मि, बिभृवः, बिभृमः॥

(आत्मने०)= १ बिभृते, बिभ्राते, बिभ्रते। २ बिभृषे, बिभ्राथे, बिभृध्वे। ३ बिभ्रे, बिभृवहे, बिभृमहे॥

लोट् = (परस्मै०) १ बिभर्तु, बिभृताम्, बिभ्रतु। २ बिभृहि, बिभृतम्, बिभृत। ३ बिभराणि, बिभराव, बिभराम॥

(आत्मने०)= १ बिभृताम्, बिभ्राताम्, बिभ्रताम्। २ बिभृष्व, बिभ्राथाम्, बिभृध्वम्। ३ बिभरै, बिभरावहै, बिभरामहै॥

पाठक इस प्रकार रूप बनानेका यत्न करें।

संस्कृत-वाक्यानि।

१ स मह्यं धनं ददाति। ते तुभ्यं किं ददति ? राजा मह्यं सुवर्णस्यालंकारं अददात्।

२ त्वं तस्य मूल्यं अधुना एव देहि। अहं तस्मै पुस्तकं ददामि। त्वं तस्मै किं ददासि ?

३ ईश्वरः स्थिरचरं सर्वं जगत् स्वशक्त्या बिभर्ति। त्वं किं बिभर्षि ? यथा राजा राष्ट्रं बिभर्ति तथा गृहस्थाः गृहं बिभ्रति।

पाठक इस प्रकार वाक्योंकी रचना कर सकते हैं। यहां तृतीयगणका विचार समाप्त हुआ।

——×——

पाठ ४

(महाभारत विराट् पर्व अ० ५)

वैशंपायन उवाच ।

ते वीरा बद्धनिस्त्रिंशास्तथा बद्धकलापिनः ।
बद्धगोधांगुलित्राणाः कालिंदीमभितो ययुः ॥ १ ॥
ततस्ते दक्षिणं तीरमन्वगच्छन्पदातयः ।
निवृत्तवनवासा हि स्वराष्ट्रंप्रेप्सवस्तदा ।
वसन्तो गिरिदुर्गेषु वनदुर्गेषु धन्विनः ॥ २ ॥
विध्यन्तो मृगजातानि महेष्वासा महाबलाः ।
उत्तरेण दशार्णांस्ते पंचालान्दक्षिणेन च ॥ ३ ॥
अन्तरेण यकृल्लोमाञ्शूरसेनांश्च पांडवाः ।
लुब्धा ब्रुवाणा मत्स्यस्य विषयं प्राविशन्वनात् ॥ ४ ॥

वैशम्पायनः उवाच अब्रवीत् = ते पांडवाः वीराः वीरपुरुषाः, बद्ध-निस्त्रिंशाः बद्धखड्गाः, तथा बद्धकलापिनः बद्धकेशपाशाः, बद्धगोधां-गुलित्राणाः गोधाचर्मणः अंगुलित्राणं बद्धं यैः ते, कालिन्दीं नदीं अभितः अभिमुखं कृत्वा ययुः जग्मुः ॥ १ ॥ ततः अनंतरं ते पदातयः एव पद्भ्यां एव गच्छन्तः कालिंदीनद्याः दक्षिणं तीरं अन्वगच्छन् अगच्छन् । तदा ते पांडवा निवृत्तवनवासाः वनवासात् निवृत्ताः स्वराष्ट्रं स्वकीयराज्यं प्रेप्सवः प्रकर्षेण इच्छवः गिरिदुर्गेषु पर्वतस्थानेषु वनदुर्गेषु वनदुर्गमस्थानेषु वसन्तः ॥ २ ॥ ते महेष्वासाः महाधनुषधारिणः महाबलाः महाशक्तयः वनेषु मृग-जातानि मृगसमूहान् शरैः विध्यन्तः ते उत्तरेण दशार्णान् देशान् तथा दक्षि-णेन पंचालान् देशान् ॥ ३ ॥ अन्तरेण च यकृल्लोमान् शूरसेनान् देशान् कृत्वा 'वयं लुब्धाः लुब्धकाः व्याधाः' इति ब्रुवाणाः कथयन्तः वनात् मत्स्यस्य विषयं देशं प्राविशन् प्रविष्टाः ॥ ४ ॥

धन्विनो बद्धनिस्त्रिंशा विवर्णाः श्मश्रुधारिणः ।
ततो जनपदं प्राप्य कृष्णा राजानमब्रवीत् ॥ ५ ॥
पश्यैकपद्यो दृश्यन्ते क्षेत्राणि विविधानि च ।
व्यक्तं दूरे विराटस्य राजधानी भविष्यति ॥ ६ ॥
वसामेहापरां रात्रीं बलवान्मे परिश्रमः ।

युधिष्ठिर उवाच ।

धनंजय समुद्यम्य पाञ्चालीं वह भारत ।
राजधान्यां निवत्स्यामो विमुक्ताश्च वनादितः ॥ ७ ॥

वैशंपायन उवाच ।

तामादायार्जुनस्तूर्णं द्रौपदीं गजराडिव ।
संप्राप्य नगराभ्यासमवतारयदर्जुनः ॥ ८ ॥
स राजधानीं संप्राप्य कौन्तेयोऽर्जुनमब्रवीत् ।
क्वायुधानि समासज्य प्रवेक्ष्यामः पुरं वयम् ॥ ९ ॥

धन्विनः धनुष्मन्तः बद्ध-निस्त्रिंशाः खड्गधारिणः विवर्णाः शोभनवर्णरहिताः श्मश्रुधारिणः ते पांडवाः आसन् । ततः मत्स्यस्य नगरं प्राप्य राजानं धर्मराजानं कृष्णा द्रौपदी अब्रवीत् कथयामास॥५॥ पश्य एकपद्यः एकपादपरिमिताः मार्गाः एकपद्यः पदव्यः दृश्यन्ते, अवलोक्यन्ते, विविधानि च क्षेत्राणि च दृश्यन्ते, अतः अनेन चिन्हेन व्यक्तं स्पष्टं भवति यत् विराटस्य राज्ञः राजधानी राजनगरी दूरे एव भविष्यति ॥ ६ ॥ अतः इह एव अपरां रात्रिं वसामः, यतः मे बलवान् परिश्रमः जातः॥ युधिष्ठिर उवाच--हे भारत धनंजय अर्जुन ! त्वं पांचालीं द्रौपदीं समुद्यम्य वह । इतः वनात् अस्मात् अरण्यात् विमुक्ताः च राजधान्यां निवत्स्यामः ॥ ७ ॥ वैशंपायन उवाच--अर्जुनः गजराट् इव तूर्णं सत्वरं तां द्रौपदीं आदाय गृहीत्वा नगराभ्यासं नगरसमीपं संप्राप्य अर्जुनः तां अवातारयत् ॥ ८ ॥ सः धर्मराजः कौंतेयः कुन्तीपुत्रः राजधानीं संप्राप्य अर्जुनं अब्रवीत् । आयुधानि क्व समासज्य स्थापयित्वा वयं पुरं प्रवेक्ष्यामः? ॥ ९ ॥

सायुधाश्च प्रवेक्ष्यामो वयं तात पुरं यदि ।
समुद्वेगं जनस्यास्य करिष्यामो न संशयः ॥ १० ॥
गाण्डीवं च महद्गाढं लोके च विदितं नृणाम् ।
तच्चेदायुधमादाय गच्छामो नगरं वयम् ॥ ११ ॥
ततो द्वादश वर्षाणि प्रवेष्टव्यं वने पुनः ।
एकस्मिन्नपि विज्ञाते प्रतिज्ञातं हि नस्तथा ॥ १२ ॥

हे तात ! यदि वयं सायुधाः आयुधैः सहिताः पुरं प्रवेक्ष्यामः तर्हि अस्य जनस्य समुद्वेगं करिष्यामः अत्र न संशयः । ॥ १० ॥ गांडीवं गांडीवनामकं धनुः महद्गाढं अतिदृढं अस्ति लोके च नृणां मनुष्याणां तत्सर्वं विदितं प्रसिद्धं अस्ति । तत् आयुधं आदाय वयं नगरं गच्छामः चेत् ॥ ११ ॥ ततः एकस्मिन् अपि विज्ञाते पुनः अस्माभिः वने द्वादशवर्षाणि प्रवेष्टव्यं भविष्यति यतः तथा नः प्रतिज्ञातम्, तथा अस्माभिः प्रतिज्ञा कृता ॥१२॥

समासाः ।

१ बद्धनिस्त्रिंशाः—बद्धाः निस्त्रिंशाः यैः ।
२ बद्धगोधांगुलित्राणाः = बद्धानि गोधांगुलित्राणानि यैः ।
३ निवृत्तवनवासाः = वनवासात् निवृत्ताः ।
४ स्वराष्ट्रं = स्वस्य राष्ट्रम् ।
५ सायुधाः = आयुधैः सहिताः ।
६ द्वादशवर्षाणि = द्वादश च तानि वर्षाणि ।

पाठ ५

पंचमगणके धातु।

पंचम-गणका विकरण 'नु' है जो प्रत्ययोंके पूर्व स्थानमें लगता है। इसके रूप निम्न प्रकार बनते हैं—

'साध्' = साधन करना।

१ लट् = १ साध्नोति, साध्नुतः, साध्नुवन्ति । २ साध्नोषि, साध्नुथः, साध्नुथ । ३ साध्नोमि, साध्नुवः, साध्नुमः ॥

२ लोट् = १ साध्नोतु, साध्नुताम्, साध्नुवन्तु । २ साध्नुहि, साध्नुतम्, साध्नुत । ३ साध्नवानि, साध्नवाव, साध्नवाम ॥

३ लङ् = असाध्नोत्, असाध्नुताम्, असाध्नुवन् । २ असाध्नोः, असाध्नुतम्, असाध्नुत । ३ असाध्नवम्, असाध्नुव, असाध्नुम ॥

४ विधिलिङ् = साध्नुयात्, साध्नुयाताम्, साध्नुयुः । २ साध्नुयाः, साध्नुयातम्, साध्नुयात । ३ साध्नुयाम्, साध्नुयाव, साध्नुयाम ॥

इसी प्रकार पंचमगणके अन्य परस्मैपदी धातुओंके रूप होते हैं। देखिये—

१ लट् = ('आप्' धातु) १ आप्नोति, आप्नुतः, आप्नुवन्ति। २ आप्नोषि, आप्नुथः, आप्नुथ । ३ आप्नोमि, आप्नुवः, आप्नुमः ॥

२ लोट् ('राध्' धातु) १ राध्नोतु, राध्नुताम्, राध्नुवन्तु । २ राध्नुहि, राध्नुतम्, राध्नुत । राध्नवानि, राध्नवाव, राध्नवाम ॥

अब निम्नलिखित धातु देखिये—

पंचमगण परस्मैपदके धातु।

आप् = व्यापना। आप्नोति। आप। आप्ता। आप्स्यति।

(वि उपसर्गपूर्वक) व्याप्नोति। व्याप। व्याप्ता। व्याप्स्यति।
ऋध् = बढना। ऋध्नोति। आनर्ध। अर्धिता। अर्धिष्यति।
तृप् = तृप्त होना। तृप्नोति। ततर्प। तर्पिता। तर्पिष्यति।
दु = दुःख देना। दुनोति। दुदाव। दोता। दोष्यति।
दृ = हिंसा करना। दृणोति। ददार। दर्ता। दरिष्यति।
राध् = सिद्ध करना, पूर्ण करना। राध्नोति। रराध। राद्धा।
  रात्स्यति।
शक् = शक्तिमान् होना। शक्नोति। शशाक। शक्ता। शक्ष्यति।
साध् = साधन करना, पूर्ण करना। साध्नोति। ससाध। साद्धा।
  सात्स्यति।
हि = जाना, बढना। हिनोति। जिघाय। हेता। हेष्यति।

संस्कृत--वाक्यानि।

१ मनुष्यः स्वकीयस्य कर्मणः फलं आप्नोति। बालकः वृक्षस्य फलं न आप्नोत्। स धनं प्राप्नोति।

२ अहं तत्कर्म कर्तुं न शक्नोमि। त्वं शक्ष्यसि किम्?। यः न शक्नोति स तत्र मा गच्छतु।

३ स साधकः साध्यं साधनेन साध्नोति। सर्वेऽपि तथैव साध्नुवन्तु।

४ त्वं कथं तत् राध्नोषि? स न अराध्नोत्। त्वं राध्नुहि सः अपिः राध्नोतु।

पाठ ६

पंचमगण आत्मनेपदके धातु ।

अश् = व्यापना । अश्नुते । आनशे । अशिता, अष्टा । अशिष्यते, अक्ष्यते ॥

इसके रूप निम्नलिखित प्रकार होते हैं–

१ लट् = १ अश्नुते, अश्नुवाते, अश्नुवते । २ अश्नुषे, अश्नुवाथे, अश्नुध्वे । ३ अश्नुवे, अश्नुवहे, अश्नुमहे ॥

२ लोट् = १ अश्नुताम्, अश्नुवाताम्, अश्नुवताम् । २ अश्नुष्व, अश्नुवाथाम्, अश्नुध्वम् । ३ अश्नवै, अश्नवावहै, अश्नवामहै ॥

३ लङ् = १आश्नुत, आश्नुवाताम्, आश्नुवत । २ आश्नुथाः, आश्नुवाथाम्, आश्नुध्वम् । ३ आश्नुवि, आश्नुवहि, आश्नुमहि ॥

४ विधिलिङ् = १ अश्नुवीत, अश्नुवीयाताम्, अश्नुवीरन् ।
२ अश्नुवीथाः, अश्नुवीयाथाम्, अश्नुवीध्वम् ।
३ अश्नुवीय, अश्नुवीवहि, अश्नुवीमहि ॥

संस्कृत--वाक्यानि ।

१ पुरुषः अन्नं सायं-प्रातः अश्नुते । स्त्रीपुरुषौ फलानि अश्नुवात । सर्वे बालकाः मिष्टं अश्नुवते ।

२ स भोजनं अद्य अश्नुताम् । त्वं अन्नं अद्य मा अश्नुथाः । यूयं फलानि अश्नुध्वम् ।

पंचमगण उभयपदके धातु ।

कृ = हिंसा करना । कृणोति, कृणुते । चकार, चक्रे । कर्ता । करिष्यति—ते ।

चि = इकट्ठा करना । चिनोति, चिनुते । चिकाय, चिक्ये; चिचाय, चिच्ये । चेता । चेष्यति-ते ।

धु = हिलाना। धुनोति, धुनुते। दुधाव, दुधुवे। धोता। धोष्यति–ते
वृ = वरना। वृणोति, वृणुते। ववार, वव्रे। वरिता, वरीता। वरिष्यति–ते।
शि = तेज करना। शिनोति, शिनुते। शिशाय, शिश्ये। शेता। शेष्यति–ते।
सि = बांधना। सिनोति, सिनुते। सिषाय, सिश्ये, सेता। सेष्यति-ते।
सु = अभिषेक करना, रस निकालना। सुनोति, सुनुते। सुषाव, सुषुवे। सोता। सोष्यति-ते।
स्तृ = ढांपना। स्तृणोति, स्तृणुते। तस्तार, तस्तरे। स्तर्ता। स्तरिष्यति–ते।

पाठ ७

उभयपदी धातुओंके रूप।

'चि' इकट्ठा करना।

(लट्)

(परस्मैपदी) = १ चिनोति, चिनुतः, चिन्वन्ति। २ चिनोषि, चिनुथः, चिनुथ। ३ चिनोमि, चिनुवः, चिनुमः॥

(आत्मनेपदी) = १ चिनुते, चिन्वाते, चिन्वते। २ चिनुषे, चिन्वाथे, चिनुध्वे। ३ चिन्वे, चिनुवहे, चिनुमहे॥

(लोट्)

(परस्मै०) = १ चिनोतु, चिनुताम्, चिन्वन्तु। २ चिनु, चिनुतम्, चिनुत। ३ चिनवानि, चिनवाव, चिनवाम॥

(आत्मने०) = १ चिनुताम्, चिन्वाताम्, चिन्वताम्। २ चिनुष्व, चिन्वाथाम्, चिनुध्वम्। ३ चिनवै, चिनवावहै, चिनवामहै॥

(लङ्)

(परस्मै०) = १ अचिनोत्, अचिनुताम्, अचिन्वन्। २ अचिनोः, अचिनुतम्, अचिनुत। ३ अचिनवम्, अचिनुव, अचिनुम॥

(आत्मने०) = १अचिनुत, अचिन्वाताम्, अचिन्वत। २ अचिनुथाः, अचिन्वाथाम्, अचिनुध्वम्। ३ अचिन्वि, अचिनुवहि, अचिनुमहि ॥

विधिलिङ्

(परस्मै०) = १ चिनुयात्, चिनुयाताम्, चिनुयुः । २ चिनुयाः। चिनुयातम्, चिनुयात = ३ चिनुयाम्, चिनुयाव, चिनुयाम॥

(आत्मने०) = १ चिन्वीत, चिन्वीयाताम्, चिन्वीरन्। २ चिन्वीथाः, चिन्वीयाथाम्, चिन्वीध्वम्। ३ चिन्वीय, चिन्वीवहि, चिन्वीमहि ॥

इस प्रकार पूर्वोक्त उभयपदी धातुओंके रूप बनाकर उनका वाक्योंमें उपयोग कीजिये।

संस्कृत--वाक्यानि ।

१ बालकाः फलानि चिन्वन्ति । सः पुष्पाणि अचिनोत्। अहं अद्य फलानि न चिनोमि ।

२ वायुः वृक्षान् धुनोति । आकाशे वायुः अभ्राणि धुनुते। त्वं कथं एवं वस्त्रं धुनोषि ?

३ पुरुषः कन्यां वृणुते । प्रजाजनाः राजानं राष्ट्राय वृण्वन्ति। त्वं कथं अवृणुथाः ?

४ ब्राह्मणाः सोमं सुन्वन्ति । सः औषधिं असुनोत्। स सुनोतु । त्वं न सुनुहि ।

५ स वस्त्रेण तत् स्तृणोति । पश्य कथं स स्तृणुते। यथा स स्तृणोति तथा त्वमपि स्तृणुहि ।

—×××—

पाठ ८

(महाभारत उद्योगपर्व, अ० ३८)

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ॥ ८ ॥
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ ९॥
अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः ।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत् ॥ १० ॥
पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः ॥ ११ ॥
पितुरन्तःपुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम् ।
गोषु चात्मसमं दद्यात्स्वयमेव कृषिं व्रजेत् ॥ १२ ॥

बुद्धिमतः ज्ञानसंपन्नान् पुरुषान् अपकृत्य पीडयित्वा "अहं दूरस्थः दूरे अवस्थितः अस्मि" अतः अहं सुरक्षितोऽस्मि इति मत्वा नाश्वसेत् न विश्वसेत् । बुद्धिमतः ज्ञानिनः मनुष्यस्य दीर्घौ बाहू, याभ्यां बाहुभ्यां हिंसितः बुद्धिमान् पुरुषः पीडयितारं निश्चयेन हिंसति ॥ ८ ॥ अविश्वस्ते विश्वासरहिते अविश्वासयोग्ये कदाऽपि न विश्वसेत्, विश्वस्ते विश्वासयोग्येऽपि नैव अतिविश्वसेत् न अतिशयेन विश्वसेत् । अतिविश्वासात् यद् भयं उत्पन्नं भवति तत् मूलानि अपि निकृन्तति निःशेषेण छिनत्ति ॥ ९ ॥ अनीर्षुःईर्ष्या-रहितः, गुप्तदारः रक्षिताः दाराः स्त्रियाः धर्मपत्न्यः येन सः गुप्तदारः, संविभागी प्राप्तधनस्य योग्यविभागकर्ता, प्रियंवदः प्रियवादी, श्लक्ष्णः कोमलः, स्त्रीणां मधुरवाक् मधुरवचनः, तथापि आसां स्त्रीणां वशगः वशवर्ती न भवेत् ॥ १० ॥ पूजनीयाः महाभागाः महाभाग्यवत्यः, पुण्याः गृहदीप्तयः गृहप्रकाशकाः, स्त्रियः सन्ति, ताः गृहस्य श्रियः एव सन्ति, तस्मात् ताः विशेषतः रक्ष्याः॥११॥ अंतःपुरं पितुः दद्यात् ,मातुः च महानसं पाकशालां दद्यात् ,गोषु आत्मसमं मित्रं दद्यात् ,स्वयं एव कृषिं व्रजेत् गच्छेत्१२

भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान् ।
अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ १३ ॥
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ।
नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः ॥ १४ ॥
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ।
यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये ॥ १५ ॥
स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते ।
करिष्यन्न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् ॥ १६ ॥
धर्मकामार्थकार्याणि तथा मंत्रो न भिद्यते ।
गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥ १७ ॥
अरण्ये निःशलाके वा तत्र मंत्रो विधीयते ।
नासुहृत्परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम् ॥ १८ ॥

भृत्यैः परिचारकैः वाणिज्यचारं व्यवहारं सेवेत, द्विजान् पुत्रैः सेवेत। अद्भ्यः जलात् अग्निः, ब्रह्मणः ब्राह्मणात् क्षत्रं क्षत्रियः, अश्मनः प्रस्तरात् लोहं उत्थितम् ॥ १३ ॥ तेषां अग्निक्षत्रियलोहानां तेजः यद्यपि सर्वत्रगं सर्वत्र संचारि वर्तते तथापि स्वासु योनिषु स्वकीयोत्पत्तिस्थानेषु शाम्यति। कुले जाताः श्रेष्ठे कुले उत्पन्नाः सन्तः पावकोपमतेजसः अग्निवत्प्रकाशकाः ॥ १४ ॥ क्षमावन्तः क्षमायुक्ताः, काष्ठे अग्निः इव, यथा काष्ठे अग्निः अव्यक्तरूपेण भवति तथैव निराकाराः अव्यक्ताः शेरते वसन्ति। बाह्याः अभ्यन्तराश्च ये पुरुषाः यस्य मन्त्रं विचारं न जानन्ति ॥ १५ ॥ स राजा सर्वतश्चक्षुः सर्वत्रदृष्टिः ऐश्वर्यं प्रभुत्वं चिरं चिरकालं अश्नुते प्राप्नोति। करिष्यन् कर्म कर्तुं इच्छन् कदापि न प्रभाषेत, कृतानि एव तु कर्माणि दर्शयेत् ॥ १६ ॥ धर्मकामार्थकार्याणि धर्मार्थकामसंबंधीनि कर्माणि पूर्णतया कृत्वा एव तत्पश्चात् लोकेषु दर्शयितव्यानि। गिरिपृष्ठं पर्वतशिखरं उपारुह्य, आरुह्य, प्रासादं हर्म्यं राजभवनं वा रहोगतः एकान्तस्थाने गतः ॥ १७ ॥ निःशलाके एकान्ते रहसि अरण्ये वा एवंविधे स्थाने मंत्रः गुप्तविचारः विधीयते क्रियते। हे भारत! भरतकुलोत्पन्न! परमं श्रेष्ठं मन्त्रं अमित्रो असुहृत् वेदितुं ज्ञातुं नार्हति ॥ १८ ॥

अपण्डितो वाऽपि सुहृत्पंडितो वाऽप्यनात्मवान् ॥
नापरीक्ष्य महीपालः कुर्यात्सचिवमात्मनः ॥ १९ ॥
अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मंत्ररक्षणमेव च ।
कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदुः ॥ २० ॥
धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः ।
गूढमंत्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥ २१ ॥
अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति ।
स तेषां विपरिभ्रंशाद् भ्रश्यते जीवितादपि ॥ २२ ॥
कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम् ।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम् ॥ २३ ॥
अनधीत्य यथा वेदान्न विप्रः श्राद्धमर्हति ।
एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मंत्रं श्रोतुमर्हति ॥ २४ ॥
स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः ।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप ॥ २५ ॥

अपंडितः अज्ञानः वा अपि सुहृत् मित्रं, पंडितो वाऽपि अनात्मवान् आत्मबलरहितः। महीपालः सचिवं मंत्रिणं अपरीक्ष्य परीक्षां न कृत्वा न कुर्यात् ॥ १९ ॥ अमात्ये हि अर्थलिप्सा अर्थलाभेच्छा तथा मंत्ररक्षणं गुह्य-विचारस्य रक्षणं तथा च यस्य पारिषदाः सभाः कृतानि एव सर्वकार्याणि विदुः ॥२०॥ स राजा धर्मे च अर्थे च कामे च राजसत्तमः राजश्रेष्ठः भवति । गूढमंत्रस्य तस्य नृपतेः असंशयं सिद्धिः भवति ॥२१॥ यः राजा मोहात् अप्रशस्तानि कार्याणि अनुतिष्ठति करोति स तेषां कार्याणां विपरिभ्रंशात् जीविताद् अपि भ्रश्यते ॥२२॥ प्रशस्तानां कर्मणां अनुष्ठानं तु सुखावहं सुखकारकम् । तेषां प्रशस्तानां कर्मणां अननुष्ठानं अनुष्ठानस्य अकरणं पश्चात्तापकरं मतम् ॥२३॥ यथा वेदान् अनधीत्य न अधीत्य विप्रः श्राद्धं न अर्हति । एवं एव अश्रुतषाड्गुण्यः षड्गुणानां अपरिज्ञाता मंत्रं श्रोतुं न अर्हति॥२४॥ हे नृप ! स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः षड्गुणज्ञान-

*

युक्तस्य अनवज्ञातशीलस्य प्रशस्तशीलस्य राज्ञः सर्वा अपि पृथिवी स्वाधीना भवति ॥ २५ ॥

समासाः ।

१ अविश्वस्तः = न विश्वस्तः ।
२ गुप्तदारः = गुप्ताः दाराः यस्य ।
३ मधुरवाक् = मधुरा वाक् यस्य ।
४ सर्वत्रगम् = सर्वत्र गच्छति इति ।
५ गिरिपृष्ठम् = गिरेः पृष्ठम् ।
६ गूढमंत्रः = गूढः मंत्रः यस्य ।
७ अश्रुतषाड्गुण्यः = अश्रुतं षाड्गुण्यं येन ।
८ अनवज्ञातशीलः = अनवज्ञातं शीलं यस्य ।

पाठ ९

सप्तमगणके धातु ।

इस सप्तमगणका चिन्ह "न" है और यह धातुके अंतिम स्वरके पश्चात् तथा अंतिम व्यंजनके पूर्व धातुके बीचमेंही लगता है, जैसा हिंस्—(हिंसा करना) हिंस् + न = हिं (न) स् = हिनस् + ति = हिनस्ति ।

कृत्—(काटना) कृत् + न = कृ (न) त् = कृणत् + ति = कृणत्ति इस प्रकार रूप बनते हैं अब इनके रूप देखिये-

'पिष्' = (चूर्ण करना)

१ लट् = १ पिनष्टि, पिंष्टः, पिंषन्ति । २ पिनक्षि, पिंष्ठः, पिंष्ठ । ३ पिनष्मि, पिंष्वः, पिंष्मः ॥

२ लोट् = १ पिनष्टु, पिंष्टाम्, पिंषन्तु । २ पिण्ड्ढ, पिंष्टम्, पिंष्ट । ३ पिनषाणि, पिनषाव, पिनषाम ॥

३ लङ् = अपिनट्, अपिंष्टाम्, अपिंषन् । २ अपिनट्, अपिंष्टम्, अपिंष्ट । ३ अपिनषम्, अपिंष्व, अपिंष्म ॥

४ विधिलिङ् = १ पिंष्यात्, पिंष्याताम्, पिंष्युः । २ पिंष्याः, पिंष्यातम्, पिंष्यात । ३ पिंष्याम्, पिंष्याव, पिंष्याम ॥

'हिंस्' = (हनन करना)

१ लट् = १ हिनस्ति, हिंस्तः, हिंसन्ति । २ हिंनस्सि, हिंस्थः, हिंस्थ । हिनस्मि, हिंस्वः, हिंस्मः ॥

२ लोट् = १ हिनस्तु, हिंस्ताम्, हिंसन्तु । २ हिन्धि, हिंस्तम्, हिंस्त । ३ हिनसानि, हिनसाव, हिनसाम ॥

३ लङ् = १ अहिनत्, अहिंस्ताम्, अहिंसन् । २ अहिनः, अहिंस्तम्, अहिंस्त । ३ अहिनसम्, अहिंस्व, अहिंस्म ॥

४ विधिलिङ् = १ हिंस्यात्, हिंस्याताम्, हिंस्युः । २ हिंस्याः, हिंस्यातम्, हिंस्यात । ३ हिंस्याम्, हिंस्याव, हिंस्याम ॥

' अञ्ज् ' = (अंजन करना , तेल लगाना)

१ लट् = १ अनक्ति, अङ्क्तः, अञ्जन्ति ।२ अनक्षि, अङ्क्थः, अङ्क्थ।
३ अनज्मि, अञ्ज्वः, अञ्ज्मः ॥

२ लोट् = १ अनक्तु, अङ्क्ताम् , अञ्जन्तु । २ अङ्ग्धि, अङ्क्तम्, अङ्क्त । ३ अनजानि, अनजाव, अनजाम ॥

३ लङ् = १ आनक् , आङ्क्ताम् , आञ्जन् । २ आनक् , आङ्क्तम्, आङ्क्त । ३ आनजम्, आञ्ज्व, आञ्ज्म ॥

४ विधिलिङ् = १ अञ्ज्यात्, अञ्ज्याताम् , अञ्ज्युः । २ अंज्याः, अंज्यातम्, अञ्ज्यात । ३ अञ्ज्याम् , अञ्ज्याव, अञ्ज्याम ॥

सप्तमगण परस्मैपदके धातु ।

अञ्ज् = (अंजन करना, तेल लगाना) । अनक्ति । आनक् । अङ्क्ता, अञ्जिता । आञ्जिष्यति, अङ्क्ष्यति ।

उन्द् = (भिगोना) । उनत्ति । उन्दाञ्चकार । उन्दिता । उन्दिष्यति ।

कृत् = (काटना) । कृणत्ति । चकर्त । कर्तिता । कर्तिष्यति ।

पृच् = (संपर्क करना) । पृणक्ति । पपर्च । पर्चिता । पर्चिष्यति ।

भञ्ज् = (तोडना) । भनक्ति । बभञ्ज । भङ्क्ता । भङ्क्ष्यति ।

वृज् = (हटाना) । वृणक्ति । ववर्ज । वर्जिता । वर्जिष्यति ।

शिष् = (विशेष होना) । शिनष्टि । शिशेष । शेष्टा । शेक्ष्यति ।

हिंस् = (हिंसा करना) । हिनस्ति । जिहिंस । हिंसिता । हिंसिष्यति ।

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ व्याधः अरण्ये आरण्यान् पशून् हिनस्ति । त्वं तत्र किं हिनस्सि ? क्षत्रियः प्रजाः मा हिनस्तु । अहं कदापि न हिनस्मि ॥

२ भृत्यः धान्यं पिनष्टि । यथा स यंत्रेण पिनष्टि तथा कः हस्तेन पिंष्यात् ?

३ कः काष्ठं कृणत्ति ? त्वष्टा तत्र किं कृणत्ति ? यदा स तत्र कृणत्ति तदा त्वं किं न कृणत्सि ?

४ वायुः वृक्षान्भनक्ति । वायुः सर्वान् वृक्षान् बभञ्ज । त्वं किमर्थं तद् भङ्क्ष्यसि ?

इस रीतिसे वाक्योंमें इन धातुओंका उपयोग कीजिये ।

सप्तमगण आत्मनेपदके धातु ।

इन्ध् = (प्रकाशना) । इन्धे । इन्धांचक्रे । इन्धिता । इन्धिष्यते ।
विद् = (विचार करना) । विन्ते । विविदे । वेत्ता । वेत्स्यते ।
इन धातुओंके रूप निम्नालिखित प्रकार होते हैं—

'इन्ध्' = (प्रकाशना)

१ लट् = १ इन्द्धे, इन्धाते, इन्धते । २ इन्त्से, इन्धाते, इन्द्ध्वे । ३ इन्धे, इन्ध्वहे, इन्ध्महे ॥

२ लोट् = १ इन्द्धाम्, इन्धाताम्, इन्धताम् । २ इन्त्स्व, इन्धाथाम्, इन्द्ध्वम् । ३ इनधै, इनधावहै, इनधामहै ॥

३ लङ् = १ ऐन्द्ध, ऐन्धाताम्, ऐन्धत । २ ऐन्द्धाः, ऐन्धाथाम्, ऐन्ध्वम् । ३ ऐन्धि, ऐन्ध्वहि, ऐन्ध्महि ॥

४ विधिलिङ् = १ इन्धीत, इन्धीयाताम्, इन्धीरन् । २ इन्धीथाः, इन्धीयाथाम्, इन्धीध्वम् । ३ इन्धीय, इन्धीवहि, इन्धीमहि ॥

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ ऋत्विजः अग्निं इन्धते । ते पुरुषाः अग्निं ऐन्धत । अहं इन्धे, त्वं इन्त्से, स इन्धे ।

२ स विन्ते । राजा विविदे । बालकः वेत्स्यते ।

सप्तमगणके केवल आत्मनेपदी धातु बहुत थोडे हैं ।

इसलिये अब उभयपदी धातु दिये जाते हैं—

सप्तमगणके उभयपदी धातु ।

क्षुद् = (चूर्ण करना) । क्षुणत्ति, क्षुन्ते । चुक्षोद, चुक्षुदे । क्षोत्स्यति-ते ।

छिद् = (छेदन करना)। छिनत्ति, छिन्ते । चिच्छेद, चिच्छिदे । छेत्ता ।
छेत्स्यति— ते ।

तृद् = (हिंसा करना, निरादर करना)। तृणत्ति, तृन्ते । ततर्द, ततृदे ।
तर्दिता । तर्दिष्यति—ते ।

भिद् = (भेद करना)। भिनत्ति, भिन्ते । बिभेद, बिभिदे । भेत्ता ।
भेत्स्यति-ते ।

भुज् = (खाना, भोगना)। भुनक्ति, भुङ्क्ते । बुभोज, बुभुजे । भोक्ता ।
भोक्ष्यति-ते ।

युज् = (जोडना)। युनक्ति, युङ्क्ते । युयोज, युयुजे योक्ता ।
योक्ष्यति—ते ।

रिच् = (खाली करना)। रिणक्ति, रिङ्क्ते । रिरेच, रिरिचे । रेक्ता ।
रेक्ष्यति-ते ।

रुध् = (प्रतिबंध करना)। रुणद्धि, रुन्धे । रुरोध, रुरुधे । रोद्धा ।
रोत्स्यति-ते ।

विच् = (भिन्न होना) । विनक्ति, विङ्क्ते । विवेच, विविचे । वेक्ता ।
वेक्ष्यति-ते ।

'युज्' = (जोडना)

लट्

परस्मै० = १ युनक्ति, युङ्क्तः, युञ्जन्ति । २ युनक्षि, युङ्क्थः,
युङ्क्थ । ३ युनज्मि, युञ्ज्वः, युञ्ज्मः ॥

आत्मने० = १ युङ्क्ते, युञ्जाते, युञ्जते । २ युङ्क्षे, युञ्जाथे,
युङ्ग्ध्वे । ३ युञ्जे, युञ्ज्वहे, युञ्ज्महे ॥

लोट्

परस्मै० = १ युनक्तु, युङ्क्ताम्, युञ्जन्तु । २ युङ्ग्धि, युङ्क्तम्,
युङ्क्त । ३ युनजानि, युनजाव, युनजाम ॥

आत्मने० = १ युङ्क्ताम्, युञ्जाताम्, युञ्जताम् । २ युङ्क्ष्व, युञ्जा-
थाम्, युङ्ग्ध्वम् । ३ युनजै, युनजावहै, युनजामहै ॥

लङ्

परस्मै० = १ अयुनक्, अयुङ्क्ताम्, अयुञ्जन्। २ अयुनक्, अयुङ्क्तम्, अयुङ्क्त। ३ अयुनजम्, अयुञ्ज्व, अयुञ्ज्म॥

आत्मने० = १ अयुङ्क्त, अयुञ्जाताम्, अयुञ्जत। २ अयुङ्क्थाः, अयुञ्जाथाम्, अयुङ्ग्ध्वम्। ३ अयुञ्जि, अयुञ्ज्वहि, अयुञ्ज्महि॥

विधिलिङ्

परस्मै० = १ युञ्ज्यात्, युञ्ज्याताम्, युञ्ज्युः। २ युञ्ज्याः, युञ्ज्यातम्, युञ्ज्यात। ३ युञ्ज्याम्, युञ्ज्याव, युञ्ज्याम॥

आत्मने० = १ युंजीत, युंजीयाताम्, युंजीरन्। २ युंजीथाः, युंजीयाथाम्, युंजीध्वम्। ३ युंजीय, युंजीवहि, युंजीमहि॥

संस्कृत-वाक्यानि।

१ त्वं शुंठीं क्षुणत्सि किम्? अहं शुंठीं न क्षुणद्मि परंतु धान्यं क्षुणद्मि।

२ कः वृक्षस्य शाखां छिनत्ति? किमर्थं स एवं वृक्षान् छिनत्ति। कः श्वः छेत्स्यते।

३ सर्वे पुरुषाः तत्र अन्नं भुंजन्ति, स्त्रियः कुत्र अन्नं भुंजते? बालकैः कदा अन्नं खादितम्?

४ स तत्र जलं रुणद्धि। गोपाः सर्वानपि पशून् रुन्धन्ति। मार्गे सैनिकान् कः रोत्स्यति?

५ योगी स्वकीयं मनः परमात्मनि युनक्ति। सः मनः विवक्षया युङ्क्ते।

पाठ १०

(म० भा० उद्योग पर्व अ० ३८)

अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्वाऽन्ववेक्षिणः।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुंधरा ॥ २६ ॥
नाममात्रेण तुष्येत च्छत्रेण च महीपतिः।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान्नैकः सर्वहरो भवेत् ॥ २७ ॥
ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं तथा।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च ॥ २८ ॥
न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः।
न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद् बले सति।
अहताद्धि भयं तस्माज्जायते न चिरादिव ॥ २९ ॥
दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च।
नियंतव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च ॥ ३० ॥

अमोघक्रोधहर्षस्य अव्यर्थक्रोधहर्षस्य यस्य क्रोधः हर्षश्च न व्यर्थः तस्य, स्वयं कर्म कृत्वा अन्ववेक्षिणः अन्वीक्षणं कुर्वतः निरीक्षणं कुर्वतः आत्मप्रत्यय-कोशस्य स्वकीयकोशस्य प्रत्यक्षं कुर्वतः वसुंधरा वसुदा धनदा नित्यं भवति ॥ २६ ॥ नाममात्रेण छत्रेण च महीपतिः तुष्येत। भृत्येभ्यः अर्थात् धनानि विसृजेत् दद्यात्। एक एव सर्वहरः सर्वधनहारकः न भवेत् ॥ २७ ॥ ब्राह्मणः ब्राह्मणं वेद जानाति, तथा भर्ता पतिः स्त्रियं धर्मपत्नीं वेद, नृपतिः राजा अमात्यं मंत्रिणं वेद, तथा राजा अन्यं राजानं वेद ॥ २८ ॥ शत्रुः यदि वशं आपन्नः प्राप्तः वध्यतां च गतः स कदापि न मोक्तव्यः। तं वध्यं शत्रुं बले सति स्वकीये बले सति हन्यात् एव अन्यथा स न्यक् भूत्वा पुनः अभिमुखो भूत्वा पर्युपासीत आक्रमणं करिष्यति अतः अवश्यमेव वशगतः शत्रुः हन्तव्यः। हि अहतात् तस्मात् शत्रोः न चिरात् शीघ्रमेव भयं जायते ॥ २९ ॥ प्रयत्नेन दैवतेषु राजसु ब्राह्मणेषु च वृद्धबालातुरेषु स्थाविरबालक-रोगिषु च क्रोधः सदा नियंतव्यः न कर्तव्यः ॥ ३० ॥

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम् ।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते ॥३१ ॥
प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥३२ ॥
न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये ।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ॥ ३३ ॥
विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत ।
धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते ॥ ३४ ॥
अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ॥ ३५ ॥
अविसंवादनं दानं समयस्यऽव्यतिक्रमः ।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक्प्रणिहिता च वाक् ॥ ३६ ॥

मूढसेवितं मूर्खप्रयुक्तं निरर्थं अर्थहीनं कलहं प्राज्ञः ज्ञानी वर्जयेत् । तेन लोके कीर्तिं लभते, अनर्थेन च न युज्यते अर्थेन लाभेन च युक्तो भवति॥३१॥ यस्य प्रसादः संतोषः निष्फलः फलरहितः, क्रोधः च अपि निरर्थकः तं भर्तारं राजानं प्रजाः न इच्छन्ति यथा स्त्रियः षण्ढं पतिं न इच्छन्ति ॥३२॥ केवलं बुद्धिः ज्ञानं धनलाभाय एव सदा न भवति, तथा जाड्यं जडता बुद्धिहीनत्वं असमृद्धये धननाशाय एव सदा न भवति । लोकपर्यायवृत्तान्तं लोकपरलोक-व्यवस्थां प्राज्ञः ज्ञानी एव जानाति न इतरः अज्ञः ॥ ३३ ॥ विद्याशील-वयोवृद्धान्, विद्यावृद्धान्, शीलवृद्धान्, वयोवृद्धान्, बुद्धिवृद्धान् च धनाभि-जात-वृद्धान् धनवृद्धान् अभिजातवृद्धान्, कुलवृद्धान् हे भारत ! मूढः एव नित्यं अवमन्यते न प्राज्ञः कदापि एतान् अवमन्यते ॥ ३४ ॥ अनार्यवृत्तं अनार्यवत् दुष्टकर्मकर्तारं अप्राज्ञं प्रज्ञाहीनं, असूयकं निंदकं, अधार्मिकं, वाग्दुष्टं दुष्टभाषणकर्तारं, तथा क्रोधनं अनर्थाः क्षिप्रं आयान्ति ॥ ३५ ॥ अविसंवादनं, अविवादः, दानं, समयस्य कालस्य च अव्यतिक्रमः, सम्यक् प्रणिहिता प्रयुक्ता च वाक् एतानि कृत्यानि भूतानि आवर्तयन्ति समीपं कुर्वन्ति ॥ ३६ ॥

अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः ।
अपि संक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम् ॥ ३७ ॥
धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः ॥ ३८ ॥
असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः ।
तादृङ् नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप ॥ ३९ ॥
न च रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि ।
यः कोपयति निर्दोषं स दोषोऽभ्यंतरं जनम् ॥ ४० ॥
येषु दुष्टेषु दोषः स्याद्योगक्षेमस्य भारत ।
सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥ ४१ ॥
येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च ।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ॥ ४२ ॥

अविसंवादकः विवादस्य अकर्ता, दक्षः, कृतज्ञः, मतिमान्, ऋजुः सरलः, एवंविधः राजा यदि अपि संक्षीणकोशो धनहीनः भवति तथापि परिवारणं भृत्यादिपरिवारं लभते प्राप्नोति ॥ ३७ ॥ धृतिः धैर्यं शमः, दमः, शौचं, कारुण्यं करुणा दया, अनिष्ठुरा मधुरा वाक्, मित्राणां च अनभिद्रोहः अद्रोहः एताः सप्त श्रियः ऐश्वर्यस्य समिधः सन्ति ॥ ३८ ॥ हे नराधिप ! असंविभागी धनस्य अदाता, दुष्टात्मा, कृतघ्नः, निरपत्रपः निर्लज्जः, तादृक् एवंविधः नराधिपः लोके वर्जनीयः ॥ ३९ ॥ स रात्रौ सुखं न शेते; ससर्पे सर्पयुक्ते वेश्मनि गृहे इव । यः निर्दोषं कोपयति स दोषो अभ्यंतरं जनं, अपि नाशयति ॥ ४० ॥ हे भारत ! येषु दुष्टेषु दोषयुक्तेषु योगक्षेमस्य योगक्षेमसंबंधी दोषः स्यात् देवतानां इव तेषां सदा प्रसादनं प्रसन्नत्वं आचरेत् ॥ ४१ ॥ ये अर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः ये प्रमत्तपतितेषु च समासक्ताः, ये च अनार्ये अनार्येण सह समासक्ताः, ते सर्वे अर्थाः संशयं गताः तेषां सिद्धिर्नैव भविष्यति ॥ ४२ ॥

पाठ ११

अष्टमगणके धातु।

अष्टमगणके धातुओंका चिन्ह " उ " है तथा यह धातु और प्रत्ययके मध्यमें लगता है। जैसा—

क्षिण् + उ + ति = क्षिणोति (परस्मै०)

क्षिण् + उ + ते = क्षिणुते (आत्मने०)

अष्टमगणमें केवल परस्मैपदी धातु नहीं हैं और केवल आत्मनेपदी धातु भी बहुत थोडेही हैं। उभयपदी धातु भी थोडेही हैं इसलिये उभयपदी धातुओंके रूप बताये जाते हैं—

' तन् ' = (फैलाना) उभयपदी धातु।

(१) लट्

परस्मै० = १ तनोति, तनुतः, तन्वान्ति। २ तनोषि, तनुथः, तनुथ। ३ तनोमि, तनुवः (तन्वः), तनुमः (तन्मः)॥

आत्मने० = १ तनुते, तन्वाते, तन्वते। २ तनुषे, तन्वाथे, तनुध्वे। ३ तन्वे, तनुवहे (तन्वहे), तनुमहे (तन्महे)॥

(२) लोट्

परस्मै० = १ तनोतु, तनुताम्, तन्वन्तु। २ तनु, तनुतम्, तनुत। ३ तनवानि, तनवाव, तनवाम॥

आत्मने० = १ तनुताम्, तन्वाताम्, तन्वताम्। २ तनुष्व, तन्वाथाम्, तनुध्वम्। ३ तनवै, तनवावहै, तनवामहै॥

(३) लङ्

परस्मै० = १ अतनोत्, अतनुताम्, अतन्वन्। २ अतनोः, अतनुतम्, अतनुत। ३ अतनवम्, अतनुव (अतन्व), अतनुम (अतन्म)॥

आत्मने० = १ अतनुत, अतन्वाताम्, अतन्वत। २ अतनुथाः,

अतन्वाथाम् , अतनुध्वम् । ३ अतन्वि , अतनुवहि (अतन्वहि), अतनुमहि (अतन्महि) ॥

(४) विधिलिङ्

परस्मै० = १ तनुयात्, तनुयाताम्, तनुयुः । २ तनुयाः, तनुयातम् ,तनुयात । ३ तनुयाम् , तनुयाव , तनुयाम ॥

आत्मने० = १ तन्वीत, तन्वीयाताम्, तन्वीरन् । २ तन्वीथाः, तन्वीयाथाम् , तन्वीध्वम् । ३ तन्वीय ,तन्वीवहि, तन्वीमहि ॥

इसी प्रकार अन्यान्य धातुओंके रूप बना सकते हैं। कई वचनोंके दो रूप ऊपर बने हैं यह बात पाठकोंके ध्यानमें आगईही होगी।

अब अष्टमगणके उभयपदी धातु देखिये-

अष्टमगण उभयपदके धातु ।

ऋण् = (गति करना)। ऋणोति, ऋणुते । आनर्ण, आनृणे । अर्णिता । अर्णिष्यति-ते ।

कृ = (करना) । करोति, कुरुते । चकार, चक्रे । कर्ता । करिष्यति ।

क्षिण् = (हिंसा करना)। क्षिणोति, क्षिणुते । चिक्षेण, चिक्षिणे । क्षेणिता । क्षेणिष्यति-ते ।

तन् = (फैलाना) । तनोति, तनुते । ततान, तेने । तनिता तनिष्य-ते ।

तृण् = (खाना) । तृणोति, तृणुते । ततर्ण । तर्णिता । तर्णिष्यति-ते ।

सन् = (देना) । सनोति, सनुते । ससान, सेने । सनिता । सनिष्यति-ते ।

संस्कृत--वाक्यानि ।

१ स यज्ञं तनुते । धर्माध्यक्षौ धर्मं तन्वाते । बालकाः उपवनक्रीडां तन्वन्ति ।

२ अहं पठनं करोमि । त्वं किं करोषि ? सः करोतु । त्वं कुरु । सः मा करोतु ॥

३ सिंहः वने हस्तिनः क्षिणोति । त्वं किमर्थं क्षिणोषि ? बालः क्षिणोतु परंतु प्राज्ञः मा क्षिणोतु ।

इस प्रकार वाक्य बनाये जा सकते हैं। अब आत्मनेपदके धातु देखिये-

अष्टमगण आत्मनेपदके धातु ।

मन् = जानना, विचार करना । मनुते । मेने । मनिता, मनिष्यते ।
वन् = याचना करना । वनुते । ववने । वनिता । वनिष्यते ।

(१) लट्

१ मनुते, मन्वाते, मन्वते । २ मनुषे, मन्वाथे, मनुध्वे । ३ मन्वे, मनुवहे, मनुमहे ॥

(२) लोट्

१ मनुताम्, मन्वाताम् मन्वताम् । २ मनुष्व, मन्वाथाम्, मनुध्वम् । ३ मनवै, मनवावहै, मनवामहै ॥

(३) लङ्

१ अमनुत, अमन्वाताम्, अमन्वत । २ अमनुथाः, अमन्वाथाम्, अमनुध्वम् । ३ अमन्वि, अमनुवहि, अमनुमहि ॥

(४) विधिलिङ्

१ मन्वीत, मन्वीयाताम्, मन्वीरन् । २ मन्वीथाः, मन्वीयाथाम्, मन्वीध्वम् । ३ मन्वीय, मन्वीवहि, मन्वीमहि ॥

इसी प्रकार " वन् " धातुके भी रूप बना सकते हैं और उनका वाक्यों-में उपयोग कर सकते हैं—

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ वयं सर्वेऽपि मानवाः मनुमहे । मूढः मनुष्यः अपि मनुते, प्राज्ञस्तु मनुत एव ।

२ याचकः अन्नं वनुते । कः एवं अवनुत । स भिक्षुः वनताम्, परंतु त्वं मा वनुष्व ।

—×××—

पाठ १२

नवमगणके धातु।

नवमगणका चिन्ह "ना" है और वह प्रत्ययके पूर्व लगता है, देखिये—

अश् + ना + ति = अश्नाति।
पुष + ना + ति = पुष्णाति।
स्तभ् + ना + ति = स्तभ्नाति।

इस प्रकार इन धातुओंके रूप होते हैं। इनके रूप बनाना अतिसुगम है-

'बंध्' = (बांधना)

१ लट् = १ बध्नाति, बध्नीतः, बध्नन्ति। २ बध्नासि, बध्नीथः, बध्नीथ। ३ बध्नामि, बध्नीवः बध्नीमः॥

२ लोट् = १ बध्नातु, बध्नीताम्, बध्नन्तु। २ बधान, बध्नीतम्, बध्नीत। ३ बध्नानि, बध्नाव, बध्नाम॥

३ लङ् = १ अबध्नात्, अबध्नीताम्, अबध्नन्। २ अबध्नाः, अबध्नीतम्, अबध्नीत। ३ अबध्नाम्, अबध्नीव, अबध्नीम॥

४ विधिलिङ् = १ बध्नीयात्, बध्नीयाताम्, बध्नीयुः। २ बध्नीयाः, बध्नीयाताम्, बध्नीयात। ३ बध्नीयाम्, बध्नीयाव, बध्नीयाम॥

इसी रीतिसे पाठक निम्नलिखित नवमगणके परस्मैपदी धातुओंके रूप कर सकते हैं—

नवमगण परस्मैपदके धातु।

अश् = (भोजन करना)। अश्नाति। अशान। आशिता। आशिष्यति।
ऋ = (जाना)। ऋणाति। अरांचकार। अरिता। अरिष्यति।
कुंथ् = (दुःखी होना)। कुथ्नाति। चुकुन्थ। कुंथिता। कुंथिष्यति।

क्लिश् = दुःख भोगना। क्लिश्नाति। चिक्लेश। क्लेशिता, क्लेष्टा। क्लेशिष्यति।
क्षुभ् = क्षुब्ध होना। क्षुभ्नाति। चुक्षोभ। क्षोभिता। क्षोभिष्यति।
गॄ = शब्द करना। गृणाति। जगार। गरिता। गरिष्यति।
ग्रन्थ् = जोडना। ग्रन्थाति। जग्रन्थ। ग्रंथिता। ग्रंथिष्यति।
जॄ = बूढा होना। जृणाति। जजार। जरिता, जरीता। जरिष्यति, जरीष्यति।
दॄ = फाडना। दृणाति। ददार। दरिता। दरिष्यति।
नभ् = हिंसा करना। नभ्नाति। ननाभ। नभिता। नभिष्यति।
नॄ = ले जाना। नृणाति। ननार। नरिता। नरिष्यति।
पुष् = पुष्ट होना। पुष्णाति। पुपोष। पोष्टा। पोक्ष्यति।
पॄ = पालन और पूरण करना। पृणाति। पपार। पारिता। पारिष्यति।
बन्ध् = बांधना। बध्नाति। बबन्ध। बन्द्धा। भन्त्स्यति।
भॄ = निंदा करना, पोषण करना। भृणाति। बभार। भरिता। भरिष्यति।
मन्थ् = विलोडन करना। मथ्नाति। ममन्थ। मन्थिता। मन्थिष्यति।
मुष् = चोरी करना। मुष्णाति। मुमोष। मोषिता। मोषिष्यति।
मृद् = दबाना। मृद्नाति। ममर्द। मर्दिता। मर्दिष्यति।
मॄ = हिंसा करना। मृणाति। ममार। मरिता। मरिष्यति।
शॄ = हिंसा करना। शृणोति। शशार। शरिता। शरिष्यति।
श्रन्थ् = ढीला करना, आनंदित होना। श्रथ्नाति। शश्रन्थ। श्रन्थिता। श्रन्थिष्यति।
स्तम्भ् = धारण करना। स्तभ्नाति। तस्तम्भ। स्तम्भिता। स्तम्भिष्यति।

संस्कृत–वाक्यानि ।

१ जनाः मधुरं अन्नं अश्नन्ति । सर्वे प्राणिनः अन्नं अश्नन्तु । बालकाः प्रथमं अश्नन्तु ।

२ भृत्यः तत्र किमर्थं क्लिश्नाति ? शिष्यः मा क्लिश्नातु । स्त्रियः न क्लिश्नीयुः ।

३ मालाकरः पुष्पाणां मालाः ग्रथ्नाति । त्वं किं ग्रथ्नासि ? सदा स ग्रथ्नाति तदा त्वमपि ग्रथान ।

४ दुग्धेन बालः पुष्णाति । त्वं केन अन्नेन पुष्णासि ? सर्वे मनुष्याः पुष्णन्तु ।

५ चौराः गृहं भित्त्वा धनं मुष्णन्ति । कः अपि मनुष्यः कदापि कस्यापि धनं मा मुष्णातु ।

६ वायुः मेघे उदकं स्तभ्नाति । हिमकालः तडागे उदकं स्तभ्नाति । त्वं नदीजलं स्तभान ।

नवमगण आत्मनेपदके धातु ।

वृ = सेवन करना, वरना । वृणीते । वव्रे । वरिता । वरिष्यति ।

आत्मने–पद ।

१ लट् = १ वृणीते, वृणाते, वृणते । २ वृणीषे, वृणाथे, वृणीध्वे । ३ वृणे, वृणीवहे, वृणीमहे ॥

२ लोट् = १ वृणीताम्, वृणाताम्, वृणताम् । २ वृणीष्व, वृणाथाम्, वृणीध्वम् । ३ वृणै, वृणावहै, वृणामहै ॥

३ लङ् = १ अवृणीत, अवृणीताम्, अवृणत । २ अवृणीथाः, अवृणीथाम्, अवृणीध्वम् । ३ अवृणि, अवृणीवहि, अवृणीमहि ॥

४ विधिलिङ् = १ वृणीत, वृणीयाताम्, वृणीरन् । २ वृणीथाः, वृणीयाथाम्, वृणीध्वम् । ३ वृणीय, वृणीवहि, वृणीमहि ॥

संस्कृत-वाक्यानि ।

१ पुरुषः विद्यां अधीत्य ब्रह्मचर्यं समाप्य गृहाश्रमाय स्त्रियं वृणीते धर्मेण विधिना ।

२ हे शिष्य ! त्वं इदानीं विद्याव्रतस्नातकोऽसि अतः अनुरूपां स्त्रियं वृणीष्व ।

३ सर्वाः प्रजाः राज्यशासनाय सुयोग्यं राजानं वृणते ।

नवमगणके उभयपदी धातु ।

कॄ = हिंसा करना । कॄणाति, कॄणीते ।

क्री = खरीदना । क्रीणाति, क्रीणीते । चिक्राय, चिक्रिये । क्रेता । क्रेष्यति–ते ।

ग्रह् = लेना । गृह्णाति, गृह्णीते । जग्राह, जगृहे । ग्रहीता । ग्रहीष्यति–ते ।

ज्ञा = जानना । जानाति, जानीते । जज्ञौ, जज्ञे । ज्ञाता । ज्ञास्यति–ते ।

धू = कांपना । धुनाति, धुनीते । दुधाव, दुधुवे । धोता, धविता । धोष्यति–ते ।

पू = पवित्र करना । पुनाति, पुनीते । पुपाव, पुपुवे । पविता । पविष्यति–ते ।

प्री = संतुष्ट होना । प्रीणाति, प्रीणीते । पिप्राय, पिप्रिये । प्रेता । प्रेष्यति–ते ।

मी = हिंसा करना । मीनाति, मीनीते । ममौ, मिम्ये । माता । मास्यति–ते ।

यु = बंधन करना । युनाति, युनीते । युयाव, युयुवे । योता । योष्यति–ते ।

लू = काटना । लुनाति, लुनीते । लुलाव, लुलुवे । लविता । लविष्यति–ते ।

वृ = वरना । वृणाति, वृणीते । ववार, वव्रे । वरिता । वरिष्यति–ते ।

श्री = पकाना । श्रीणाति, श्रीणीते । शिश्राय, शिश्रिये । श्रेता । श्रेष्यति–ते ।

*

सि = बांधना। सिनाति, सिनीते। सिषाय, सिष्ये। सेता। सेष्यति–ते।
स्तृ = ढांपना। स्तृणाति, स्तृणीते। तस्तार, तस्तरे। स्तरिता। स्तरिष्यति–ते।

उभयपदी धातुओंके रूप।

(१) लट्

(परस्मै०) = १ क्रीणाति, क्रीणीतः, क्रीणन्ति। २ क्रीणासि, क्रीणीथः, क्रीणीथ। ३ क्रीणामि, क्रीणीवः, क्रीणीमः॥
(आत्मने०) = १ क्रीणीते, क्रीणाते, क्रीणते। २ क्रीणीषे, क्रीणाथे, क्रीणीध्वे। ३ क्रीणे, क्रीणीवहे, क्रीणीमहे॥

(२) लोट्

(परस्मै०) = १ क्रीणातु, क्रीणीताम्, क्रीणन्तु। २ क्रीणीहि, क्रीणीतम्, क्रीणीत। ३ क्रीणानि, क्रीणाव, क्रीणाम॥
(आत्मने०) = १ क्रीणीताम्, क्रीणाताम्, क्रीणताम्। २ क्रीणीष्व क्रीणाथाम्, क्रीणीध्वम्। ३ क्रीणै, क्रीणावहै, क्रीणामहै॥

(३) लङ्

(परस्मै०) = १ अक्रीणात्, अक्रीणीताम्, अक्रीणन्। २ अक्रीणाः, अक्रीणीतम्, अक्रीणीत। ३ अक्रीणाम्, अक्रीणीव, अक्रीणीम॥
(आत्मने०) = १ अक्रीणीत, अक्रीणाताम्, अक्रीणत। २ अक्रीणीथाः, अक्रीणाथाम्, अक्रीणीध्वम्। ३ अक्रीणि, अक्रीणीवहि, अक्रीणीमहि॥

(४) विधिलिङ्

(परस्मै०) = १ क्रीणीयात्, क्रीणीयाताम्, क्रीणीयुः। २ क्रीणीयाः, क्रीणीयातम्, क्रीणीयात। ३ क्रीणीयाम्, क्रीणीयाव, क्रीणीयाम॥
(आत्मने०) = १ क्रीणीत, क्रीणीयाताम्, क्रीणीरन्। २ क्रीणीथाः, क्रीणीयाथाम्, क्रीणीध्वम्। ३ क्रीणीय, क्रीणीवहि, क्रीणीमहि॥

संस्कृत--वाक्यानि ।

१ अहं धान्यं क्रीणामि, त्वं किं क्रीणीषे ? त्वं किं श्वः क्रेष्यसि ? न ह्यहं घृतं अक्रीणम् ।

२ अहं जानामि, त्वं जानासि, स जानातु । अहं न अजानम् यद् त्वं तत्र पुस्तकं अपठः ।

३ अहं ते सौभगत्वाय हस्तं गृह्णामि । ते अन्नं गृह्णन्तु । त्वं किं ग्रहीष्यसि ?

४ वायुः चंपकवनानि धुनाति । त्वं वस्त्रं किं न धोष्यसि ? ते सर्वे काष्ठानि धुनन्ति ।

५ स तां भूमिं जलेन पुनाति । त्वं किं पुनासि ? स मंत्रैः कर्णौ पुनीते । महात्मा आशीर्वादैः सर्वान् पुनातु ।

इस प्रकार वाक्य बनाना अब पाठकोंके लिये बडा सुगम है ।

यहां संपूर्ण धातुओंका विचार हुआ है । धातुओंके रूप बनानेकी अति-सुगम रीति अगले विभागमें दी जायगी, पाठक उसे अवश्य देखें और उससे अधिक लाभ प्राप्त करें ।

——×——

पाठ १३

(महाभारत उद्योगपर्व०, अ० ३९)

धृतराष्ट्र उवाच ।

सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसंमतम् ।
न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ९ ॥

विदुर उवाच ।

अतीव गुणसंपन्नो न जातु विनयान्वितः ।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमपेक्षते ॥ १० ॥
परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च ।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः ॥ ११ ॥
सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद्भयम् ।
अर्थादाने महान्दोषः प्रदाने च महद्भयम् ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच = त्वं सर्वं प्राज्ञसंमतं सुज्ञसंमतं आयतीयुक्तं हितकरं भाषसे, तथापि सुतं पुत्रं त्यक्तुं न उत्सहे उत्साहं न धारयामि । अतः सत्यमेव एतत्, यतः धर्मः ततो जयः ॥९॥ विदुरः उवाच = यः अतीव गुणसंपन्नः गुणैः युक्तः विनयान्वितश्च अस्ति सः भूतानां प्राणिनां सुसूक्ष्मं अत्यल्पमपि उपमर्दं नाशं न अपेक्षते न इच्छति ॥ १० ॥ परापवादनिरताः परनिंदारताः दुष्टाः सततोत्थिता सततजागरूका भूत्वा परस्परविरोधे परस्पर-कलहे यतन्ते प्रयतन्ते तथा च परदुःखोदयेषु कर्मसु च प्रयन्तते ॥ ११ ॥ येषां दर्शनं सदोषं दोषयुक्तं, येषां संवासे च महद्भयं वर्तते, येषां अर्थादाने धनग्रहणे महान् दोषः, येषां धनस्य प्रदाने च महद्भयं वर्तते ते महादुष्टाः सन्ति ॥ १२ ॥

ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः ।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः ॥ १३ ॥
युक्तश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान्विवर्जयेत् ।
निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति ॥ १४ ॥
या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत्सुखम् ।
यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये ॥ १५ ॥
अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शांतिमधिगच्छति ।
तादृशैः संगतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ॥ १६ ॥
निशम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान्दूराद्विवर्जयेत् ।
यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम् ॥१७॥
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानंत्यमश्नुते ।
ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम् ॥ १८ ॥

ये वै शठाः खलाः, निस्त्रपाः निर्लज्जाः, सकामाः कामेन सहिताः,तथा भेदनशीलाः विरोधकारकस्वभावाः, ये च पापा इति विख्याताः ते संवासे सहवासे परिगर्हिताः निंदिताः सन्ति । तैः सह मैत्री कदापि न कर्तव्या ॥ १३ ॥ ये अन्यैः महादोषैः युक्ताः तान् नरान् सौहृदर्थं विवर्जयेत् । सौहार्दे निवर्तमाने नाशमाने नीचे जने प्रीतिः प्रणश्यति ॥ १४ ॥ या च एव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे मित्रत्वे च एव यत्सुखं वर्तते, तत्तु नीचसंगत्या नैव प्राप्नोति । यः अपवादाय निंदाकरणार्थं एव यतते यत्नवान् भवति, क्षये नाशाय एव यत्नं आरभते ॥ १५ ॥ यः च अल्पे अपि अपकृते अपकारे कृते मोहात् कदापि शांतिं न अधिगच्छति प्राप्नोति, तादृशैः नीचैः नृशंसैः दुष्टैः अकृतात्मभिः हीनात्माभिः सह संगतं मित्रत्वम् ॥ १६ ॥ बुद्ध्या विचारशक्त्या निपुणं निशम्य पूर्णं विचार्य विद्वान् पुरुषः दूरात् विवर्जयेत् । तैः दुष्टैः सह मैत्री न कर्तव्या । यः दरिद्रं, दीनं, आतुरं रोगिणं ज्ञातिं अनुगृह्णाति ॥ १७ ॥ स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयः कल्याणस्य आनन्त्यं अनंतत्वं च अश्नुते प्राप्नोति य आत्मनः शुभं इच्छति तैः ज्ञातयः वर्धनीयाः संवर्धनीयाः ॥ १८ ॥

कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात्साधु समाचर।
श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम् ॥ १९ ॥
विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ।
किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणः ॥ २० ॥
प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशांपते।
दीयतां ग्रामकाः केचित्तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर ॥ २१ ॥
एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप।
वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम् ॥ २२ ॥
मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मा त्वद्धितैषिणम्।
ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभार्थिना।
सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ ॥२३॥

यः कुलवृद्धिं च इच्छति तेन अपि तथैव कर्तव्यम्। हे राजेन्द्र राजश्रेष्ठ! तस्मात् साधु यथा स्यात् तथा समाचर शोभनं आचरणं कुरु। हे राजन्! ज्ञातिसत्क्रियां कुर्वाणः श्रेयसा योक्ष्यते कल्याणेन युक्तो भवति ॥ १९ ॥ हे भरतर्षभ भरतश्रेष्ठ! विगुणाः गुणहीना अपि ज्ञातयः स्वजाति-पुरुषाः संरक्ष्याः। किं पुनः त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणः तव प्रसादं एव इच्छन्तः ते गुणवन्तः ज्ञातयः रक्षणीया इति वक्तव्यम्? ॥ २० ॥ हे विशां पते प्रजानां पालक! वीराणां पांडवानां उपरि प्रसादं कुरु। हे ईश्वर! राजन्! तेषां वृत्त्यर्थं केचित् ग्रामकाः ग्रामाः दीयन्ताम् ॥ २१ ॥ हे नराधिप! एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति। हे तात! त्वया वृद्धेन हि पुत्राणां शासनं कार्यम् ॥ २२ ॥ मया च अपि हितं वाच्यम्। मां त्वद्धितैषिणं तव हितं एव इच्छन्तं मां विद्धि जानीहि। हे तात! शुभार्थिना शुभं इच्छता पुरुषेण ज्ञातिभिः विग्रहः कलहः न कर्तव्यः। हे भरतर्षभ! ज्ञातिभिः सह भोज्यानि सह भोजनानि सुखानि सुखकारकानि भवन्ति ॥ २३ ॥

पाठ १४

रामायणम् ।

(१)

एवं विलपन्ती सीता तदा वृक्षगतं गृध्रं ददर्श । सा सीता तदा तं गृध्रमुद्वीक्ष्य समाक्रन्दच्च महता शब्देन । " पश्य माम्, रावणस्य वशं गताऽस्मि, पश्य मां, अनाथवत् ह्रियमाणाम् । "

जटायुस्तु तं शब्दं श्रुत्वा, दृष्ट्वा च तां राक्षसेन ह्रियमाणां, व्याजहार– " राक्षसाधम ! नार्हसि निंदितं कर्म कर्तुम् । धीरो नैवं कर्म समाचरेत् येन तं परो विगर्हयेत् । यथाऽऽत्मनः दारास्तथा परेषामपि रक्ष्या एव । अहं तु वृद्धः । त्वं तु युवा कवची सशस्त्रश्च, किंतु सीतामादाय कुशली नैव गमिष्यसि । " इति ।

एवमुक्तो रावणो अमर्षणशीलः पतगेन्द्रं गृध्रं जटायुं अभिदुद्राव । वातोद्धूतयोर्मेघयोरिव तयोस्तत्र तुमुलः संप्रहारो बभूव । जटायुस्तु तदा तुण्डेन रावणस्य दश बाहूनतिक्रम्य तं अदशत् । दशग्रीवोऽपि सीतां तत्रोत्सृज्य क्रोधाद् मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां गृध्रराजमपोथयत्, खड्गेन तस्य पक्षौ पादौ चाच्छिनत् । तदाऽसौ जटायुः धरण्यां पपात ।

रावणेन निहतं गृध्रराजं निरीक्ष्य सीता भृशं विललाप । रावणस्तु तां क्रोशन्तीं केशेषु जग्राह । तदा सर्वं जगत् अंधेन तमसा व्याप्तम् । मत्तगज इव स दशाननस्तामादाय सत्वरं प्रस्थितः । तदा तस्याः शरीरात् पुष्पमाला च्युता धरणीतले पपात । तस्याश्चरणाच्च रत्नभूषितं नूपुरं, कंठाद्धारवलयं च भ्रष्टम् । एवं रावणेन ह्रियमाणायां सीतायां दिवाकरः प्रभारहितो बभूव । यत्र रावणः सीतां पतिव्रतां हरति तत्र धर्मः नास्ति, कुतः सत्यं, आर्जवं अपि च न, इति सर्वाण्यपि भूतानि पर्यदेवयन् ।

सीता रावणेनैवं ह्रियमाणा पंच वानरश्रेष्ठान् गिरिशृंगस्थान् ददर्श । तेषां मध्ये सा कौशेयमुत्तरीयं शुभानि चाभरणानि मुमोच इमे शंसेयू रामायेति। रावणस्तु संभ्रमात्तन्न बुबोध । चापाच्च्युतः शर इव स तामादाय लंकामेव जगाम ।

(२)

रामस्तु मारीचं राक्षसं निहत्य पृष्ठतो निवर्तमानः दीनं शून्यं लक्ष्मणं दृष्ट्वा पर्यपृच्छत् । " हे लक्ष्मण ! कथं वैदेहीं तत्र त्यक्त्वाऽत्रागतोऽसि । " इति ।

लक्ष्मणोऽपि सर्वं यथावृत्तमकथयत् । तच्छ्रुत्वा रामस्त्वरमाणस्ततः स्थानात् स्वाश्रममागत्य तं शून्यं दृष्ट्वा उद्विग्नमानसो बभूव, बहु विललाप च।

शोकार्णवे निमग्नो रामो वृक्षाद्वृक्षं प्रधावन् नदीनदं गिरींश्च बभ्राम । " हा सीते ! क्व गताऽसि " इति कृत्वा पुनः पुनर्बहु विललाप च । शोकेन विह्वलश्चाभवत् ।

लक्ष्मणस्तं प्रश्रितो बहुप्रकारं सान्त्वयामास । तमनाहृत्य सोऽपि पुनः पुनः प्राक्रोशत् । " लक्ष्मण ! गच्छायोध्याम्, मद्वचनाद्भरतो वाच्यः । अनुज्ञातोऽसि रामेण, पालय वसुंधराम् । अम्बाश्च सर्वा अपि रक्षणीया इति । "

रामस्य महता शोककरणेन च लक्ष्मणोऽपि दीनो व्यथितमनाश्च बभूव। उवाच च रामं- ' हे राम ! यदि त्वं काकुत्स्थो भूत्वाऽपि दुःखं न सहिष्यसे तर्हि कः इतरः प्राकृतोऽल्पसत्वः सहिष्यति? कस्योपरि आपदो नागच्छन्ति?'

इति लक्ष्मणवचनं श्रुत्वा रामश्चेतनां प्राप्तः उवाच च लक्ष्मणं " भद्र ! चिन्तयेह केनोपायेन सीतां पश्याव इति । "

तौ रामलक्ष्मणौ वनमन्विष्यन्तौ मृतप्रायं भूमौ पतितं तं जटायुं ददृशतुः । तं दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । " अनेनैव सीता भक्षिता भवेत् । एष राक्षस एव भवेत् । एनं वधिष्ये । " इति ।

गृध्रस्तु रुधिरं वमन्नुवाच– " यां देवीं त्वं अन्वेषसि सा देवी रावणेन हृता। मम प्राणा अपि तेनैव हृताः। इदमस्य धनुर्भग्नम्। एते शरास्तस्य। एष भग्नो रथः। भवतः शत्रुः मे पक्षौ छित्वा सीतामादाय इत एव लंका प्रस्थितः। " इति।

इति तस्य भाषणं श्रुत्वा तं गृध्रं परिष्वज्य सलक्ष्मणो बहु रुरोद। उवाच च– " राज्यं भ्रष्टं, वने वासः, सीताऽपि रावणेन हृता, त्वं अपि मृतः। ईदृशी ममेयं विलपत्। "

तदा गृध्रं मृतं दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत्– " आहर काष्ठानि, दहाव एनमिति "

एवमुक्त्वा धर्मात्मानौ तं गृध्रशरीरं दीप्तां चितामारोप्य देहतुः। गोदावरीं नदीं गत्वा तस्मै उदकमपि चक्रतुः।

तदा दक्षिणां दिशं प्रस्थितौ तौ वीरौ रामलक्ष्मणौ किंचिद् दूरं गत्वा तौ कबंधं नाम राक्षसं आसेदतुः। तं खड्गेन हत्वा किंचिद् दूरमग्रे गत्वा शबर्या आश्रमं तौ अपश्यताम्। सा शबर्यपि रामलक्ष्मणौ दृष्ट्वा तयोः पादौ जग्राह।

तस्या आतिथ्यं वन्यफलमूलादिकं गृहीत्वा तत्र कंचित्कालं स्थित्वा रामलक्ष्मणौ अग्रे जग्मतुः। केनचित्त्वथ कालेन तौ पम्पासरोवरं प्राप्तौ। पम्पायाः सौन्दर्यं रमणीयतां च दृष्ट्वा रामस्येन्द्रियाणि चकम्पिरे। तत्रत्यां वन्यां शोभां दृष्ट्वा रामः सीताविरहं स्मृत्वा विह्वलोऽभूत्। " हे लक्ष्मण! सीतया विहीनोऽहं दीनः कथं प्राणान् धारये " इति भृशं रुरोद।

एवं विलपन्तं लक्ष्मणो राममब्रवीत्। " क एष शोकः ? संस्तम्भ राम! सर्वथा न भविष्यति रावणः पातालमपि गच्छन्। स्थानं तावल्लभ्यतां पापस्य। सीतां ततो हास्यति निधनं वा गमिष्यति। आर्यपुत्र! उत्साहं वर्धय। नास्त्युत्साहात्परमं बलम्। सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभं वर्तते " इति।

एवं लक्ष्मणेन संबोधितो रामस्त्यक्त्वा शोकं धैर्यमुपागमत्। अतिक्रम्य ततः पम्पां ऋष्यमूकपर्वतस्य समीपं रामलक्ष्मणौ प्राप्तौ वानराणां तत्रत्यानां अधिपेन च दृष्टौ।

सुग्रीवस्तु तौ दृष्ट्वा शंकितोऽभवत् । शंकितं च तं वाक्यकोविदो हनुमानुवाच । " त्यजतामेष संभ्रमः । मलयोऽयं गिरिवरः । नेह भयं वालिनः" इति । सुग्रीवस्तूवाच " कस्य न स्याद्भयमेतौ पुरुषोत्तमौ दीर्घबाहू वीर्यवत्तरौ वीरौ दृष्ट्वा । शंके वालिप्रहितावेवैतौ भवतः । नात्र विश्वासः संशयश्च । जानीहि भद्र ! एतौ शुद्धात्मानौ वा अन्यथेति । "

एवं समादिष्टो हनुमान् ऋष्यमूकात्पुप्लुवे यत्र रामलक्ष्मणौ आस्ताम् । हनुमान् भिक्षुरूपेण तत्र गतो विनीतवदुपागम्य प्रणिपत्य च तौ वाक्यमुवाच॥ " राजर्षिप्रतिमौ तापसौ कथं प्राप्तौ अमुं देशम् ? सुग्रीवनामको हि वानरराजो धर्मात्मा विनिकृतो भ्रात्रा दुःखितोऽत्र तिष्ठति । तेन महात्मनाऽहं प्रेषितो हनुमान्नाम वानरोऽस्मि । स हि युवाभ्यां सख्यमिच्छति । अस्य सुग्रीवस्य मां सचिवं जानीतम् । कामगः कामचारी चास्मि । केवलं सुग्रीवप्रियकरणात् ऋष्यमूकपर्वतादिह प्राप्तोऽस्मि । नान्यत् किंचित् कर्तव्यमस्ति । "

इत्येतच्छ्रुत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । " सचिवोऽयं वानरेन्द्रस्य, ममान्तिकमागतोऽस्ति । अनेन कृत्स्नं व्याकरणमपि पठितमिति दृश्यते; यतः व्याहरतानेन किंचिदपि नापशब्दितम् । " एवमुक्तो लक्ष्मणो हनुमन्तमब्रवीत्— " विदिता हि गुणाः सुग्रीवस्य, तमेव वयं मार्गावः । यत्सुग्रीववचनाद् ब्रवीषि तत्करिष्यावः इति । "

तच्छ्रुत्वा हनूमान्पप्रच्छ " किमर्थं रामः सानुजो घोरं वनमागतः ? " इति हनूमत्प्रश्नं श्रुत्वा लक्ष्मणेन सर्वोऽपि वृत्तान्तः तस्मै निवेदितः । उवाच च– " यस्य प्रसादेन सर्वा इमाः प्रजाः प्रसादयेयुः स एष रामः शरण्यस्य वानरेन्द्रस्य सुग्रीवस्य प्रसादमभिकांक्षते । " इति । करुणमेवं ब्रुवाणं सौमित्रिं हनूमान्प्रत्युवाच । " दिष्ट्या वानरेन्द्रेणेदृशा द्रष्टव्या जितक्रोधा बुद्धिमन्तो जितेन्द्रिया वीराश्च दर्शनमागताः । सोऽपि सुग्रीवो वालिन राज्याद्विभ्रष्टः कृतवैरश्च । हृतदारश्च भ्राता वने त्रस्तो विनिकृतश्च भृशं युवयोः साहाय्यं करिष्यति इति । '

हनूमांस्ततो रामलक्ष्मणौ स्वकीयं पृष्ठं आरोपयामास, ऋष्यमूकपर्वता-न्मलयगिरिं गत्वा कपिराजाय सुग्रीवाय रामलक्ष्मणावागतौ इति निवेदयामास ।

सुग्रीवस्तु प्रीत्या राघवमुवाच– "एष प्रसारितो बाहुर्यदि रोचते मे सख्यम् । बध्यतां ध्रुवा मर्यादा । इति ।" उभौ ततो हस्तौ संपीड्य दीप्यमानमग्निं प्रदक्षिणीचक्रतुः वयस्यत्वं चोपाजग्मतुः । सुप्रीतमनसौ च कपिराघवौ तदाऽन्योन्यमभिवीक्षन्तौ तृप्तिं नाभिगतौ । सुग्रीवस्तदा प्रहृष्टवदनो राममुवाच-"हृद्यो मे त्वं वयस्यः । एकं नौ सुखं दुःखं च । विदितो हि मे वृत्तान्तः सर्वस्तवास्माद्धनूमतो मन्त्रिवरात् । हे राम ! अहं तव भार्यां अचिरादेवानयिष्यामि । तेन दुःखाद्वियोगजान्मुक्तो भविष्यसि। अनुमतो जानामि च ह्रियमाणा सीता मया दृष्टेति । तयैव स्वकीयं उत्तरीयं शोभनान्याभरणानि अत्र त्यक्तानि इति मन्ये । अर्हसीदानीं तानि प्रत्यक्षीकर्तुमिति ।"

ततो दृष्ट्वा तु तान्याभरणानि वासांसि च रामश्चन्द्रमा इव नीहारेण बाष्पैः संरुद्धोऽभवत् । " हा प्रिये " इति रुदन् क्षितौ च न्यपतत् । हृदि कृत्वाऽलंकारान् सर्पवत्भृशं निशश्वास । लक्ष्मणं चादर्शयत् पुनः पुनर्भूषणानि । तानि दृष्ट्वा लक्ष्मण उवाच—

> नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुंडले ।
> नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवंदनात् ॥ इति ॥

तदनंतरं दुःखितेन रामेण पृष्टोऽपि राक्षससंबंधिनं वृत्तान्तं सुग्रीवः किंचिदपि नाशकद्वक्तुम्। परंतु तदैव स प्रत्यजानात् यत् " तथा यत्नं करिष्यामि यथा मैथिलीं त्वं शीघ्रं प्राप्स्यसि । "

इत्युक्त्वा सांत्वयामास च तं–' अलमिदानीं दुःखेन, धैर्यं धारय, मामपि भार्याव्यसनजं दुःखं प्राप्तम् । तथाऽपि न परित्यजे धैर्यम् , न तेषां सुखं भवति ये शोकमनुवर्तन्ते । अतो नैवासि योग्यः शोचितुमिति ।"

पाठ १५

॥ श्रीशिवराज्याभिषेकः ॥

एष पुण्यदर्शनस्मरणो 'रायगडः'। अत्रैव किल भरतभू-स्व-राज्य-संस्थापकस्य सुगृहीतनाम्नःश्रीशिवरायस्य राज्याभिषेक-महोत्सवः समजनि।

गागाभट्टेन क्षेत्रभूमौ महाराजस्य व्रतबन्धो विहितः। अभिषेकमहोत्सवश्च १५९६ मित शालिवाहनशकस्य ज्येष्ठमासे शुद्ध-त्रयोदश्यां (६ जून १६७४) दुर्गराजे राजदुर्ग निर्वर्तनीय इति निर्धारितमभूत्।

अथ समुपागते तस्मिन् प्रशस्तेऽहनि सुमहत् खलु महोत्सवसंविधान-मुत्पताके तस्मिन् राजदुर्गे बभूव। असङ्ख्याः खलु जना महोत्सवदिदृक्षवः प्रतिदिनं राजदुर्गमापुः। वैदेशिका अप्येतस्मिन्नवसरे समुपतस्थुरिति श्रूयते। त्रयोदश-सुवर्णभारनिर्मितं महाराजस्य सिंहासनमासीत्। तस्य नातिदूरमेव हैमदण्डोच्छ्रिता वृत्तिसाम्यमुपलक्षयन्ती सुवर्णमयी तुला संस्थापिताऽऽसीत्। अभिषेक-पात्राणि कलशाश्च सर्वे सुवर्णमया आसन्। राजदुर्गस्य महाद्वारं मङ्गलतोरणेन महार्हेण समलङ्कृतमभूत्। महाद्वारस्योभयतः पार्श्वं कलभद्वयं धौत-तुरग-द्वयं च स्थापितमासीत्। तत्र विशेषतः कलभयुगं वीक्ष्य 'समुच्छ्रिततमेऽस्मिन् दुर्गपृष्ठे कथङ्कारमिदमानीतं' इति सर्वे कुतूहलं सविस्मयमावहन्ति स्म। अथ घटिकाद्वयमात्रावशिष्टायां रजन्यां, यथा स्थानस्थितेषु, कलशपाणिष्वष्टामात्येषु, महाराजः सह महिष्या मुक्ता-मणिमयोपान्त-शुभ्रछत्रवितानं हैमं सिंहासनमारुरोह। ततश्च मोरोपन्त-प्रभृतिभिरष्टामात्यैर्गागाभट्टप्रभृतिभिश्च विप्रवरैर्वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वकं सकल-सरितां सरित्पतेश्च पावनेनाम्भसा श्रीशिवरायः स्वराज्यसिंहासनेऽभिषिक्तः। तत्क्षण एव 'विजयतां क्षत्रियकुलावतंसः श्रीशिवछत्रपतिमहाराजः सिंहास-नाधीश्वरः' इति जय-घोषमिश्रितो मङ्गलवाद्यव्यतिकरः सुदूरं दिशो व्याप्यात्यातिष्ठत्।

अभिषेकदिनादारभ्य 'स्वस्ति-श्रीराज्याभिषेकशक' इत्यभिधानेन संवत्सर-गणनाऽभिनवा प्रवर्तिता। तस्य साम्प्रतं २७५ तमं वत्सरं विद्यते। सा च 'शिवशक' इत्यभिधानेन सम्प्रत्युपलक्ष्यते। एतत्प्रसङ्गेन महाराजेन राज्यव्यवहारकोशं कारयित्वा सर्वा यावनीः पदसंज्ञा निःसारिताः संस्कृताश्च तत्स्थले प्रवर्तिताः। महोत्सवप्रसङ्गेऽस्मिन् द्वात्रिंशल्लक्षाधिक-कोटि- 'होन' प्रमितो व्ययोऽभूदिति प्राहुः।

अस्मादभिषेकदिनादारभ्य 'नासौ कोऽपि तस्करनृपः, किन्तु मूर्धाभि-षिक्तः सिंहासनाधीश्वरोऽयं सार्वभौमः' इति सर्वत्र प्रथितं महाराजस्य शासनम्। मुद्रा चास्य प्रणतसामन्त-चूडामणि-रञ्जिता विराजमाना सर्वैराद्रियते स्म—

प्रतिपच्चन्द्ररेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववन्दिता।
शाहासुतस्य मुद्रेयं शिवराजस्य राजते॥ इति।

पाठ १६

आर्यचाणक्यस्य संस्मरणीयानि सूत्राणि।

१ **सुखस्य मूलं धर्मः**= सुखका मूल कारण धर्म है।

२ **धर्मस्य मूलं अर्थः**= धर्मका मूल धन है।

३ **अर्थस्य मूलं राज्यम्** = धनका मूल राज्य है।

४ **राज्यस्य मूलं इन्द्रियजयः** = राज्यका मूल इन्द्रियजय है।

५ **इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः** = इंद्रियोंके विजयका मूल सुशिक्षा है।

६ **विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा** = सुशिक्षा प्राप्त करनेका साधन वृद्धोंकी सेवा है।

७ **वृद्धसेवाया विज्ञानं** = वृद्धोंकी सेवा करनेसे अनुभव ज्ञान मिलता है।

८ **विज्ञानेन आत्मानं संपादयेत्** = इस अनुभव ज्ञानसे अपने आपको युक्त करना चाहिये।

९ संपादितात्मा जितात्मा भवति=अनुभवज्ञानसे युक्त हुआ पुरुष मनोनिग्रही होता है।

१० जितात्मा सर्वार्थैः संयुज्यते = मनोनिग्रही पुरुष सब अर्थोंको प्राप्त करता है।

११ अर्थसंपत् प्रकृतिसंपदं करोति = अर्थ-प्राप्ति जनपद संपत्तिको बनाती है। (प्रकृति-संपद् = जनपदशासन-अधिकारका स्थान)

१२ प्रकृतिसंपदा हि अनायकमपि राज्यं नीयते = अमात्य अधिकारोंसे मुख्य शासक न होनेपर भी राज्य चलाया जा सकता है।

१३ प्रकृतिकोपः सर्वकोपेभ्यो गरीयान् = प्रजाका क्रोध सब क्रोधोंसे भयंकर है।

१४ अ-विनीत-स्वामि-लाभात् अस्वामिलाभः श्रेयान् = अशिक्षित दुःशील राजा रहनेकी अपेक्षा राजा न हुआ तो भी अच्छा है।

१५ संपाद्य आत्मानं, इच्छेत् सहायवान् = अपनेको ज्ञानादि संपत्ति प्राप्त करनेपर, सहायकोंकी अनुकूलता प्राप्त करनी चाहिये।

१६ नासहायस्य मन्त्रनिश्चयः = जिसको सहायक नहीं वह कुछ भी निश्चय नहीं कर सकता।

१७ नैकं चक्रं परिभ्रमति = अकेलाही चक्र घूमता नहीं।

१८ सहाय्यः समसुखदुःखः = जो सुख दुःखमें साथ रहता है उसको सहायक कहते हैं।

१९ मानी, प्रतिमानिनं आत्मनि, द्वितीयं मन्त्रं उत्पादयेत = एक मानी पुरुष, दूसरे मानी पुरुषकी स्पर्धामें, दूसराही षड्यंत्र उत्पन्न कर सकता है।

२० अविनीतं स्नेहमात्रेण न मन्त्रे कुर्वीत = असंस्कारी मनुष्यको केवल परिचय है इसलिये अपनी आयोजनामें लेना उचित नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीता

संपादक- पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

इस 'पुरुषार्थबोधिनी' भाषाटीकामें यह बात दर्शायी गयी है कि वेद, उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रंथोंकेही सिद्धान्त गीतामें नये ढंगसे किस प्रकार कहे हैं। अतः इस प्राचीन परंपराको बताना इस 'पुरुषार्थबोधिनी' टीकाका मुख्य उद्देश्य है, अथवा यही इसकी विशेषता है।

गीता-के १८ अध्याय ३ भागोंमें विभाजित किये हैं और एकही जिल्दमें बांधे हैं। इसका मू. १०) रु. और डाकव्यय १॥) रु. है। लेकिन मनीआर्डरसे ११) रु. भेजनेवालोंको हमारे अपने व्ययसे भेज देंगे। प्रत्येक अध्यायका मू० ॥।) और डा० व्यय ।·) है।

श्रीमद्भगवद्गीता-समन्वय।

'वैदिक धर्म' के आकारके १३६ पृष्ठ, चिकना कागज, सजिल्दका मू० २) रु०, डा० व्य० ।=) डा० व्यय सहित मूल्य भेज दीजिये।

भगवद्गीता-श्लोकार्धसूची।

इसमें श्रीगीताके श्लोकार्धोंकी अकारादिक्रमसे आद्याक्षरसूची है और उसी क्रमसे अन्त्याक्षरसूची भी है। मूल्य केवल ·॥।·) डा० व्य० ·।=)

भगवद्गीता--लेखमाला।

'गीता' मासिकके प्रकाशित गीताविषयक लेखोंका यह संग्रह है। इसके १,२,६,७ भाग तैयार हैं, जिनका मू० ५) रु० और डा० व्यय १।।) है।

मंत्री-स्वाध्याय-मण्डल, पारडी (जि० सूरत)

संस्कृत-पाठ-माला ।

[संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

सप्तदशो भागः ।

—o—

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मंडल, पारडी, (जि० सूरत)

—o—

सप्तम वार

—o—

शके १८७१, सन १९४९

———

मूल्य ८ आने

5

संस्कृत-पाठ-माला।

[संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

सप्तदशो भागः।

—०—

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मंडल, पारडी, (जि० सूरत)

—०—

पञ्चम वार

—०—

संवत् २००६, शके १८७१, सन १९४९

मूल्य ८ आने

संस्कृतके क्रियापदोंका विशेष विचार !

पूर्व विभागोंमें संस्कृतके क्रियापदोंका विचार समाप्त हो चुका है। परंतु यह क्रियापदविचार अन्य विचारोंकी अपेक्षा कुछ कठिन होनेसे इसको संक्षिप्त रीतिसे परंतु अतिसुबोध रीतिसे इस विभागमें पुनः बतानेका उद्देश्य है, जिससे पाठकोंको यह क्रियापद-विचार ठीक प्रकार समझमें आ सके।

आशा है कि पाठक इससे लाभ उठावेंगे।

स्वाध्याय-मण्डल
'आनन्दाश्रम'
पारडी (जि० सूरत)

लेखक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

मुद्रक तथा प्रकाशक- व० श्री० सातवळेकर, B. A.
भारतमुद्रणालय 'आनंदाश्रम' पारडी [जि० सूरत]

ॐ

संस्कृत–पाठ–माला ।

सप्तदशो भागः ।

प्रथमः पाठः ।

वर्तमानकालः (लट्)

इस समयतकके अभ्याससे पाठक धातुओंके दसों गणोंके वर्तमान, भूत, भविष्य आदिके रूप बना सकते हैं, तथापि यहां इन्हीं रूपोंको सुगमतापूर्वक बनानेका विधि पुनः बताना है। पाठक जानते ही हैं कि धातुओंके दस गण हैं और प्रत्येक धातुके वर्तमान (लट्) आदिके दस रूप होते हैं । इन दस लट् आदि लकारोंमें गणचिन्होंसे युक्त होनेवाले लकार ये हैंः–

१ लट् (वर्तमान) ... ... बोधति ।
२ लोट् (आज्ञार्थ) ... ... बोधतु ।
३ लङ् (अनद्यतन-भूतकाल)... ... अबोधत् ।
४ (विधि) लिङ् (विध्यर्थ)... ... बोधेत् ।

अन्य छः लकारोंका गणोंके साथ विशेष संबंध नहीं है । अर्थात् प्रायः अन्य सब लकारोंके रूप सब गणोंके धातुओंके समानतया ही होते हैं। देखिये—

*

५ लिट् (अनद्यतन-परोक्षभूत) ... ... बुबोध।
६ लुट् (अनद्यतन-भविष्य) ... .. बोधिता।
७ लृट् (भविष्यकाल) ... ... बोधिष्यति।
८ लेट् (वैदिक)
आशीर्लिङ् (आशीर्वादार्थ) ... ... बुध्यात्।
९ लुङ् (भूतकाल) ... ... अबुधत्।
१० लृङ् (हेतुहेतुमद्भावार्थ) ... ... अबोधिष्यत्।

आशीर्लिङ् पूर्वोक्त विधिलिङ्से संबद्ध है और लेट् केवल वेदमें ही, आता है, इसलिये उनके रूप बनाने नहीं हैं। वेदमें उनके रूप हैं वेही देखने हैं। इसलिये इसके रूप बनानेकी विधि जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अस्तु।

पाठक यहां स्मरण रखें कि (१) लट्, (२) लोट्, (३) लङ् और (४) विधिलिङ् इन चार लकारोंमें ही गणोंके चिन्ह लगते हैं, शेष छः लकारोंके रूपोंमें उन गणचिन्होंका कोई संबंध नहीं है। इतना स्मरण रखनेसे बहुतसा रूप बनानेका कष्ट कम हो जायगा। अब वर्तमानकालके प्रत्यय देखिये—

वर्तमानकालके परस्मैपदी प्रत्यय।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१ प्रथम पुरुष	... ति	... तः	... अन्ति
२ मध्यम ,,	... सि	... थः	... थ
३ उत्तम ,,	... आमि	... आवः	... आमः

ये प्रत्यय सब गणोंके परस्मैपदी वर्तमानकालके लियें समानही हैं देखिये—

'बुध्' धातु =	बोध-ति	बोध-तः	बोधन्ति।
	बोध-सि	बोध-थः	बोध-थ।
	बोधामि	बोधावः	बोधामः।

इसी प्रकार हरएक गणके धातुओंसे गणचिन्ह लगाकर ये प्रत्यय लगाये जायँ, तो उसके वर्तमानकालके रूप बनते हैं। इस नियमको ध्यानमें धरनेसे पाठक हरएक धातुके वर्तमानकालके रूप विना आयास बना सकते हैं, देखिये—

१ **प्रथमगण**— (गणचिन्ह 'अ') = भू (भव्) = होना।
१ भवति, भवतः, भवन्ति। २ भवसि, भवथः, भवथ।
३ भवामि, भवावः, भवामः॥

२ **द्वितीयगण**– (गणचिन्ह कुछ नहीं है) = पा = रक्षण करना।
१ पाति, पातः, पान्ति। २ पासि, पाथः, पाथ।
३ पामि, पावः, पामः॥

३ **तृतीयगण**– (गणचिन्ह नहीं है, परंतु धातुका प्रथमाक्षर दुहराया जाता है) = दा = देना।
१ ददाति, दत्तः, ददति। २ ददासि, दत्थः, दत्थ।
३ ददामि, दद्वः, दद्मः॥

४ **चतुर्थगण**– (गणचिन्ह 'य') = क्रुध् = क्रोध करना।
१ क्रुध्यति, क्रुध्यतः, क्रुध्यन्ति। २ क्रुध्यसि, क्रुध्यथः, क्रुध्यथ। ३ क्रुध्यामि, क्रुध्यावः, क्रुध्यामः॥

५ **पंचमगण**–(गणचिन्ह 'नु') = सु = रस निकालना।
१ सुनोति, सुनुतः, सुन्वान्ति। २ सुनोषि, सुनुथः, सुनुथ।
३ सुनोमि, सुनुवः, सुनुमः॥

६ **षष्ठगण**– (गणचिन्ह 'अ') = चल् = चलना।
१ चलति, चलतः, चलन्ति। २ चलसि, चलथः, चलथ।
३ चलामि, चलावः, चलामः॥

७ **सप्तमगण**– (गणाचिन्ह 'न') यह चिन्ह धातुके बीचमें घुसता है, हिंस् = हिंसा करना।
१ हिनस्ति, हिंस्तः, हिंसन्ति। २ हिनस्सि, हिंस्थः,

हिंस्थ । ३ हिनस्मि, हिंस्वः, हिंस्मः ॥

८ अष्टमगण– (गणचिन्ह 'उ') तन् = फैलाना ।

१ तनोति, तनुतः, तन्वन्ति । २ तनोषि, तनुथः, तनुथ । ३ तनोमि, तनुवः, तनुमः ॥

९ नवमगण– (गणचिन्ह 'ना') = बंध् = बांधना ।

१ बध्नाति, बध्नीतः, बध्नन्ति । २ बध्नासि, बध्नीथः, बध्नीथ । ३ बध्नामि, बध्नीवः, बध्नीमः ॥

१० दशमगण– (गणचिन्ह 'अय') = चुर् = चोरना ।

१ चोरयति, चोरयतः, चोरयन्ति । २ चोरयसि, चोरयथः चोरयथ । ३ चोरयामि, चोरयावः, चोरयामः ॥

देखिये, इस युक्तिसे पाठक सब गणोंके धातुओंके वर्तमानकालके परस्मैपदी रूप बना सकते हैं । सब धातुओंके लिये एक ही प्रत्यय हैं केवल, गणचिन्होंका भेद है । इस प्रकार सुगमतासे धातुओंके रूप बनाइये ।

संस्कृत-वाक्यानि ।

स यत्कथयति तदहं बोधामि । यद्भवति तद्भवतु । ईश्वरः सकलं जगत्पाति । देवदत्तः यज्ञेश्वराय प्रभूतं धनं ददाति । यः पुरुषः क्रुध्यति स कथं मनसः शान्तिं लभेत ? ऋत्विजः यज्ञे सोमं सुन्वन्ति । त्वं कुत्र चलासि ? व्याघ्रः अजं हिनस्ति । तं तत्र किं तनोषि ? रश्मिना तमहं बध्नामि । चोरः धनं चोरयति ।

—०—

पाठ २

वर्तमानकालके आत्मनेपदी प्रत्यय।

पूर्व पाठमें वर्तमानकालके परस्मैपदी प्रत्यय बताये हैं अब इस पाठमें वर्तमानकालके आत्मनेपदी प्रत्यय बताये जाते हैं।

(१)

वर्तमानकालके आत्मनेपद।

(प्रथम, चतुर्थ, षष्ठ और दशमगणके लिये)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१ प्रथम पुरुष	...ते	...इते	...अन्ते
२ मध्यम ,,	...से	...इथे	...ध्वे
३ उत्तम ,,	...ई	...आवहे	...आमहे

ये प्रत्यय पूर्वोक्त रीतिसे ही धातुओंको लगकर आत्मनेपदी रूप बनते हैं। प्रथम धातु, उसके पश्चात् गणोंका चिन्ह और पश्चात् ये प्रत्यय लगानेसे धातुओंके आत्मनेपदी रूप सब गणोंके बन सकते हैं; जैसे—

प्रथमगण (गणचिन्ह'अ')

नी (नय्) लेजाना–१ नय–ते, नये-ते, नयन्ते। २ नय–से, नये–थे, नय–ध्वे। ३ नये, नयावहे, नया–महे॥

चतुर्थगण (चिन्ह 'य')

युध् = लडना = १ युध्यते, युध्येते, युध्यन्ते। २ युध्यसे, युध्येथे, युध्यध्वे। ३ युध्ये, युध्यावहे, युध्यामहे॥

षष्ठगण (चिन्ह'अ')

क्षिप् = फेंकना = १ क्षिपते, क्षिपेते, क्षिपन्ते। २ क्षिपसे, क्षिपेते, क्षिपध्वे। ३ क्षिपे, क्षिपावहे, क्षिपामहे॥

दशमगण (चिन्ह'अय')

चूर्ण = चूरण करना = १ चूर्णयते, चूर्णयेते, चूर्णयन्ते। २ चूर्णयसे, चूर्णयेथे, चूर्णयध्वे। ३ चूर्णये, चूर्णयावहे, चूर्णयामहे॥

इस प्रकार इन चार गणोंके धातुओंके रूप होते हैं। शेष छः गणोंके अर्थात् द्वितीय, तृतीय, पञ्चम, सप्तम, अष्टम और नवम गणोंके धातुओंके लिये निम्नलिखित प्रत्यय हैं—

वर्तमानकाल, आत्मनेपदी प्रत्यय।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१ प्र० पु०	...ते	...आते	...अते
२ म० पु०	...से	...आथे	...ध्वे
३ उ० पु०	...ए	...वहे	...महे

पूर्वोक्त प्रत्ययोंमें और इनमें थोडासाही फरक है। पूर्व प्रत्ययोंमें इकारके स्थानपर यहां " आ " है, तथा अन्य भी थोडासा भेद है। ये प्रत्यय द्वितीयगणसे आगे सब गणोंके लिये बडे उपयोगी हैं, जैसा—

द्वितीयगण (चिन्ह नहीं है)

आस् = बैठना = १ आस्ते, आसाते, आसते। २ आस्से, आसाथे, आध्वे। आसे, आस्वहे, आस्महे ॥

तृतीयगण (चिन्ह–धातुके आद्याक्षरका द्वित्त्व)

धा = धारण करना = १ धत्ते, दधाते, दधते। २ धत्से, दधाथे, धद्ध्वे। ३ दधे, दध्वहे, दध्महे ॥

पंचमगण (चिन्ह 'नु')

अश् = व्यापना = १ अश्नुते, अश्नुवाते, अश्नुवते। २ अश्नुषे, अश्नुवाथे, अश्नुध्वे। ३ अश्नुवे, अश्नुवहे, अश्नुमहे ॥

सप्तमगण (चिन्ह 'न')

युज् = जोडना = १ युङ्क्ते, युञ्जाते, युञ्जते। युङ्क्षे, युञ्जाथे, युङ्ध्वे। ३ युञ्जे, युञ्ज्वहे, युञ्ज्महे ॥

अष्टमगण (चिन्ह 'उ')

कृ = करना = १ कुरुते, कुर्वाते, कुर्वते। कुरुषे, कुर्वाथे, कुरुध्वे। ३ कुर्वे, कुर्वहे, कुर्महे ॥

नवमगण (चिन्ह 'ना')

क्री = क्रय करना = १ क्रीणीते, क्रीणाते, क्रीणते। २ क्रीणीषे, क्रीणाथे, क्रीणीध्वे। ३ क्रीणे, क्रीणीवहे, क्रीणीमहे॥

पाठक यहां अनुभव करें कि प्रथम, चतुर्थ, षष्ठ और दशम गणके। धातुओंके प्रत्ययोंकी आपसमें किस विषयमें समानता है। और शेष छः गणोंके प्रत्ययोंकी किस विषयमें समता है। यदि पाठक इन बातोंको ठीक प्रकार ध्यानमें रखेंगे तो वर्तमानकालके परस्मैपदी और आत्मनेपदी धातुओंके रूप बनाना उनके लिये कोई कठिण बात नहीं होगी।

संस्कृत--वाक्यानि।

सैनिकाः समरभूम्यां शस्त्राणि नयन्ते। वयं तत्र जलं नयामहे। राजा किमर्थमेवं कुध्यते ? अहं कदापि न कुध्ये। स जले प्रस्तरान् क्षिपते। त्वं भूमौ किं क्षिपसे? स वैद्यः काष्ठानि भैषजार्थं चूर्णयते। स तत्राऽऽस्ते। वयं अत्राऽऽस्महे। त्वं बहुमूल्यं ऊर्णावस्त्रं धत्से। आत्मा शरीरं धत्ते। ईशः सर्वत्राश्नुते। योगी मनः युङ्क्ते। अहं मनः युञ्जे। कर्मकारः कर्म कुरुते। इदानीमहं न किमपि कुर्वे। स धनेन धान्यं क्रीणीते।

—०—

पाठ ३

(लोट्) आज्ञार्थ

प्रथम, चतुर्थ, षष्ठ और दशमगणके परस्मैपदी धातुओंके लिये (लोट्) आज्ञार्थके प्रत्यय ये हैं—

	एक०	द्वि०	बहु०
१ प्र० पु०	...तु	...ताम्	...अन्तु
२ म० पु०	...०	...तम्	...त
३ उ० पु०	...आनि	...आव	...आम

धातु, गणचिन्ह और ये प्रत्यय मिलकर उक्त चार गणोंके आज्ञार्थके परस्मैपदी रूप होते हैं, देखिये—

प्रथमगण (चिन्ह 'अ')

नी = (नय्) ले जाना = १ नयतु, नयताम्, नयन्तु । २ नय, नयतम्, नयत । ३ नयानि, नयाव, नयाम ॥

चतुर्थगण (चिन्ह 'य')

तुष् = संतुष्ट होना = १ तुष्यतु, तुष्यताम्, तुष्यन्तु । २ तुष्य, तुष्यतम्, तुष्यत । ३ तुष्यानि, तुष्याव, तुष्याम ॥

षष्ठगण (चिन्ह 'अ')

चल् = चलना = १ चलतु, चलताम्, चलन्तु । २ चल, चलतम्, चलत । ३ चलानि, चलाव, चलाम ॥

दशमगण (चिन्ह 'अय')

तड् = ताडन करना = १ ताडयतु, ताडयताम्, ताडयन्तु । २ ताडय, ताडयतम्, ताडयत । ३ ताडयानि, ताडयाव, ताडयाम ॥

इस प्रकार प्रथम, चतुर्थ, षष्ठ और दशम गणके परस्मैपदी आज्ञार्थके रूप होते हैं, अब अन्य छः गणोंके आज्ञार्थके प्रत्यय देखिये—

	एक०	द्वि०	बहु०
१ प्र० पु०	...तु	...ताम्	...अन्तु
२ म० पु०	...हि	...तम्	...त
३ उ० पु०	...आनि	...आव	...आम

केवल द्वितीय पुरुष एकवचनमें जहां कुछ भी प्रत्यय नहीं था, वहां "हि" प्रत्यय यहां है, इतनाही भेद है अन्य प्रत्यय पूर्ववत् ही हैं, देखिये इनके रूप—

द्वितीयगण (चिन्ह नहीं)

अद् = खाना = १ अत्तु, अत्ताम्, अदन्तु । २ अद्धि, अत्तम्, अत्त । ३ अदानि, अदाव, अदाम ॥

तृतीयगण (आद्याक्षरका द्वित्त्व)

दा = देना = १ ददातु, दत्ताम्, ददतु। २ देहि, दत्तम्, दत्त। ३ ददानि, ददाव, ददाम ॥

पंचमगण (नु)

साध् = सिद्ध करना = १ साध्नोतु, साध्नुताम्, साध्नुवन्तु। २ साध्नुहि, साध्नुतम्, साध्नुत। ३ साध्नवानि, साध्नवाव, साध्नवाम ॥

सप्तमगण (न)

युज् = संयुक्त होना = १ युनक्तु, युङ्क्ताम्, युञ्जन्तु। २ युङ्ग्धि, युङ्क्तम्, युङ्क्त। ३ युनजानि, युनजाव, युनजाम।

अष्टमगण (उ)

कृ = करना = १ करोतु, कुरुताम्, कुर्वन्तु। २ कुरु, कुरुतम्, कुरुत। ३ करवाणि, करवाव, करवाम ॥

[नियम– " उ " कारके पश्चात् आनेवाले " हि " प्रत्ययका लोप होता है, इस नियमके अनुसार " कुरुहि " न बना, परंतु " कुरु " ऐसाही रूप हुआ।]

नवमगण (ना)

क्री = क्रय करना = १ क्रीणातु, क्रीणीताम्, क्रीणन्तु। २ क्रीणीहि, क्रीणीतम्, क्रीणीत। ३ क्रीणानि, क्रीणाव, क्रीणाम ॥

इस रीतिसे दसों गणोंके आज्ञार्थके परस्मैपदी रूप बनते हैं अब आत्मनेपदी बनानेकी रीति देखिये—

आज्ञार्थके आत्मनेपदी प्रत्यय।

१ प्र० पु०	...ताम्	...इताम्	...अन्ताम्
२ म० पु०	...स्व	...इथाम्	...ध्वम्
३ उ० पु०	...ऐ	...आवहै	...आमहै

प्रथम, चतुर्थ, षष्ठ और दशमगणके आत्मनेपदी धातुओंके लिये ये प्रत्यय हैं। देखिये—

प्रथमगण (अ)

बुध् = (जानना) = १ बोधताम्, बोधेताम्, बोधन्ताम्। २ बोधस्व, बोधेथाम्, बोधध्वम्। ३ बोधै, बोधावहै, बोधामहै ॥

चतुर्थगण (य)

शुच् = (शुद्ध होना) = १ शुच्यताम्, शुच्येताम्, शुच्यन्ताम्। २ शुच्यस्व, शुच्येथाम्, शुच्यध्वम्। ३ शुच्यै, शुच्यावहै, शुच्यामहै ॥

षष्ठगण (अ)

क्षिप् = (फेंकना) = १ क्षिपताम्, क्षिपेताम्, क्षिपन्ताम्। २ क्षिपस्व, क्षिपेथाम्, क्षिपध्वम्। ३ क्षिपै, क्षिपावहै, क्षिपामहै ॥

अन्य गणोंके लिये आत्मनेपदी आज्ञार्थके प्रत्यय निम्नप्रकार होते हैं—

	एक०	द्वि०	बहु०
१ प्र० पु०	...ताम्	...आताम्	...अताम्।
२ म० पु०	...स्व	...आथाम्	...ध्वम्।
३ उ० पु०	...ऐ	...आवहै	...आमहै।

पूर्वोक्त प्रत्ययोंमें और इनमें फरक इतनाही है कि पूर्व प्रत्ययोंके "इ" के स्थानपर यहां "आ" है और "अन्ताम्" प्रत्ययके स्थानपर यहां केवल "अताम्" है, देखिये इनके रूप—

द्वितीयगण (०)

ईड् = (स्तुति करना) = १ ईट्टाम्, ईडाताम्, ईडताम्। २ ईडिष्व, ईडाथाम्, ईडिध्वम्। ३ ईडै, ईडावहै, ईडामहै ॥

तृतीयगण (धातुके आद्याक्षरका द्वित्त्व)

भृ = (धारण करना) = १ बिभृताम्, बिभ्राताम्, बिभ्रताम्। २ बिभृष्व, बिभ्राथाम्, बिभृध्वम्। ३ बिभरै, बिभरावहै, बिभरामहै ॥

पंचमगण (नु)

सु = (रस निकालना) = १ सुनुताम्, सुन्वाताम्, सुन्वताम्। २ सुनुष्व, सुन्वाथाम्, सुनुध्वम्। ३ सुनवै, सुनवावहै, सुनवामहै॥

सप्तमगण (न)

इन्ध् = (जलना) = १ इन्धाम्, इन्धाताम्, इन्धताम्। २ इन्त्स्व, इन्धाथाम्, इन्ध्वम्। ३ इनधै, इनधावहै, इनधामहै॥

अष्टमगण (उ)

कृ = (करना) = १ कुरुताम्, कुर्वाताम्, कुर्वताम्। २ कुरुष्व, कुर्वाथाम्, कुरुध्यम्। ३ करवै, करवावहै, करवामहै॥

नवमगण (ना)

क्री = (क्रय करना) = १ क्रीणीताम्, क्रीणाताम्, क्रीणताम्। २ क्रीणीष्व, क्रीणाथाम्, क्रीणीध्वम्। ३ क्रीणै, क्रीणावहै, क्रीणामहै॥

इस प्रकार आज्ञार्थके रूप बनते हैं। केवल प्रत्यय ध्यानमें रखनेसे रूप, पहचाने जा सकते हैं।

संस्कृत-वाक्यानि।

पक्षिणः पत्राणि नयन्तु। त्वं अनेनान्नेन तुष्य। सर्वेऽश्वा अद्यैव शीघ्रं चलन्तु। अहं चलानि किम्? तं बिडालं मा ताडय, परंतु तं श्वानं अधुनैव ताडय।

अत्रत्याः सर्वेऽपि मानवाः यद्यद्रोचते तत्तदन्नमदन्तु। त्वं किमपि मा आद्धि। यः धनं याचकेभ्यो ददाति स ददातु। त्वं मह्यं वस्त्रं देहि। अहं तुभ्यं किं ददानि?

योगी मनः तत्र युनक्तु। त्वमपि तथैव स्वकीयं मनः युङ्ग्धि। सर्वे छात्राः स्वकीयबलवृद्ध्यर्थं व्यायामं कुर्वन्तु। त्वं तु सायंप्रातः यथा स व्यायामं करोति तथैव कुरु।

यदहं वदामि तत्त्वं बोधस्व। सोऽपि बोधताम्। त्वं ईश्वरं आत्मशुद्ध्यर्थं ईडिष्व। सर्वे शिष्याः स्वकीयानि वस्त्राणि बिभ्रताम्। त्वं यज्ञे सोमं

सुनुष्व । अग्निं त्वं इन्त्स्व ।

(लिङ्) अनद्यतनभूत (अपूर्ण-भूत)

परस्मैपदके प्रत्यय ।

	एक०	द्वि०	बहु०
१	...त्	...ताम्	...अन्
२	..स् (:)	...तम्	...त
३	...अम्	...व	...म

(लङ्) अनद्यतन भूतके रूप बनानेके समय धातुके पूर्व " अ " लगता है । देखिये—

प्रथमगण (अ)

नी (नय्) ले जाना = १ अनयत्, अनयताम्, अनयन् । २ अनयः, अनयतम्, अनयत । ३ अनयम्, अनयाव, अनयाम ॥

चतुर्थगण (य)

कुप् = (क्रोध करना) = १ अकुप्यत्, अकुप्यताम्, अकुप्यन् । २ अकुप्यः, अकुप्यतम्, अकुप्यत । ३ अकुप्यम्, अकुप्याव, अकुप्याम ॥

षष्ठगण (अ)

गुंफ् = (माला करना) = १अगुम्फत्, अगुम्फताम्, अगुम्फन् । २ अगुम्फः, अगुम्फतम्, अगुम्फत । ३ अगुम्फम्, अगुम्फाव, अगुम्फाम ॥

दशमगण (अय)

चर्व् = (चबाना) = अचर्वयत्, अचर्वयताम्, अचर्वयन् । २ अचर्वयः, अचर्वयतम्, अचर्वयत । ३ अचर्वयम्, अचर्वयाव, अचर्वयाम ॥

द्वितीयगण (०)

ख्या = (कहना) १ = अख्यात्, अख्याताम्, अख्यन् (अख्युः) । २ अख्याः, अख्यातम्, अख्यात । ३ अख्याम्, अख्याव, अख्याम ॥

तृतीयगण (द्वित्व)

दा = (देना) = १ अददात्, अदत्ताम्, अददुः । २ अददाः, अदत्तम्,

अदत्त । ३ अददाम्, अदद्व, अदद्म ॥

पंचमगण (नु)

साध् = (सिद्ध करना) = १ असाध्नोत्, असाध्नुताम्, असाध्नुवन् । २ असाध्नोः, असाध्नुतम्, असाध्नुत । ३ असाध्नवम्, असाध्नुव, असाध्नुम ॥

सप्तमगण (न)

पिष् = (चूर्ण करना) = १ अपिनट्, अपिंष्टाम्, अपिंषन् । २ अपिनट्, अपिंष्टम्, अपिंष्ट । ३ अपिनषम्, अपिंष्व, अपिंष्म ॥

अष्टमगण (उ)

तन् = (फैलाना = १ अतनोत्, अतनुताम्, अतन्वन् । २ अतनोः, अतनुतम्, अतनुत । ३ अतनवम्, अतनुव, अतनुम ॥

नवमगण (ना)

क्री = (क्रय करना) = १ अक्रीणात्, अक्रीणीताम्, अक्रीणन् । २ अक्रीणाः, अक्रीणीतम्, अक्रीणीत । ३ अक्रीणाम्, अक्रीणीव, अक्रीणीम ॥

इस रीतिसे परस्मैपदी संपूर्ण धातुओंके अनद्यतनभूत (लङ्) ने रूप बनानेके एकही प्रत्यय हैं और प्रायः सभी धातुओंके रूप एकही नियमसे बनते हैं। धातुके पूर्व " अ " उसके पश्चात् धातु उसके अनंतर गणका चिन्ह और उसके पश्चात् लङ्का प्रत्यय लगता है। सब धातुओंके लिये एकही प्रत्यय होनेके कारण ये रूप सुगम हैं। अब लङ् के आत्मनेपदी रूप देखिये—

(लिङ्) अनद्यतनभूत

आत्मनेपदी प्रत्यय

	एक०	द्वि०	बहु०
१ प्र० पु०	...त	...इताम्	...अन्त
२ म० पु०	...थाः	...इथाम्	...ध्वम्
३ उ० पु०	...इ	...वहि	...महि

पूर्वोक्त रीतिसे धातुके "अ" पश्चात् धातु, बाद गणचिन्ह और अंतमें प्रत्यय लगता है। अ + धातु + गणचिन्ह + लङ् का प्रत्यय इस प्रकार रूप बनता है, देखिये इनके रूप—

प्रथमगण

बुध् = (जानना) = १ अबोधत, अबोधेताम्, अबोधन्त। २ अबोधथाः, अबोधेथाम्, अबोधध्वम्। ३ अबोधे, अबोधावहि, अबोधामहि ॥

चतुर्थगण (य)

शुच् = (शुद्ध होना) = १ अशुच्यत, अशुच्येताम्, अशुच्यन्त। २ अशुच्यथाः, अशुच्येथाम्, अशुच्यध्वम्। ३ अशुच्ये, अशुच्यावहि, अशुच्यामहि।

षष्ठगण (अ)

क्षिप् = (फेंकना) = १ अक्षिपत, अक्षिपेताम्, अक्षिपन्त। २ अक्षिपथाः, अक्षिपेथाम्, अक्षिपध्वम्। ३ अक्षिपे, अक्षिपावहि, अक्षिपामहि ॥

दशमगण (अय)

गण् (गिनना) = १ अगणयत, अगणयेताम्, अगणयन्त। २ अगणयथाः, अगणयेथाम्, अगणयध्वम्। ३ अगणये, अगणयावहि, अगणयामहि ॥

अन्य गणोंके रूपोंके लिये पूर्वोक्त प्रत्ययोंके "इताम् और इथाम्" के स्थानपर "आथाम् और आताम्" समझिये। अब इनके रूप बनाइये—

द्वितीयगण (०)

आस् (बैठना) = १ आस्त, आसाताम्, आसत। २ आस्थाः, आसाथाम्, आध्वम्। ३ आसि, आस्वहि, आस्महि ॥

तृतीयगण (द्वित्व)

दा (देना) = १ अदत्त, अददाताम्, अददत। २ अदत्थाः, अददाथाम्, अदद्ध्वम्। ३ अददि, अदद्वहि, अदद्महि ॥

पंचमगण (नु)

सु (रस निकालना) = १ असुनुत, असुन्वाताम्, असुन्वत। २ असुनुथाः, असुन्वाथाम्, असुनुध्वम्। ३ असुन्वि, असुनुवहि, असुनुमहि ॥

सप्तमगण (न)

युज् (युक्त होना) = १ अयुङ्क्त, अयुञ्जाताम्, अयुञ्जत। २ अयुङ्क्थाः, अयुञ्जाथाम्, अयुङ्ग्ध्वम्। ३ अयुञ्जि, अयुञ्ज्वहि, अयुञ्ज्महि ॥

अष्टमगण (उ)

तन् (फैलाना) = १ अतनुत, अतन्वाताम्, अतन्वत। २ अतनुथाः, अतन्वाथाम्, अतनुध्वम्। ३ अतन्वि, अतनुवहि, अतनुमहि ॥

नवमगण (ना)

क्री (क्रय करना) = १ अक्रीणीत, अक्रीणाताम्, अक्रीणत। २ अक्रीणीथाः, अक्रीणाथाम्, अक्रीणीध्वम्। ३ अक्रीणि, अक्रीणीवहि, अक्रीणीमहि ॥

इस प्रकार अनद्यतनभूतके रूप होते हैं। परस्मैपदी और आत्मनेपदी ऐसे दोनों रूप बनानेकी रीति यहां पाठक देखें और ध्यानमें रखें। इससे उनको ये रूप बनाना सुगम होगा। कई धातुओंकी कुछ विशेषताएं भी होती हैं, परंतु यहां विशेषताओंका उल्लेख करना नहीं है, परंतु सर्वसाधारण नियमही बताना है।

संस्कृत-वाक्यानि।

यदाऽहं तवाश्वं तत्रानयं तदा त्वं कुत्र गतः? यदा सः अकुप्यत्तदा त्वं किमकरोः? यदा तव पुत्री पुष्पाणां माला अगुम्फत् तदा स कुत्र गतः? यदा त्वमन्नमचर्वयस्तदा त्वं जलं किं नापिबः? स त्वां तदा किमख्यात्? त्वं तदा तस्मै किमददाः? तेन कर्मणा ते सर्वे पुरुषाः किमसाध्नुवन्? यदाऽहं सर्वाणि भेषजानि सम्यक्तयाऽपिनषम् तदा त्वया तत्र जलं किं

नानीतम् ? युद्धेन स्वकीयं यशः सर्वासु दिक्षु स वीरोऽतनोत्। तदा गाः कोऽक्रीणात् ?

त्वमबोधथाः किं यन्मया कथितम् ? यदा स अशुच्यत तदा त्वया किं कृतम् ? कस्तत्र तदक्षिपत ? किमर्थं त्वमेवं तदाक्षिपः ? त्वमगणयथाः किम् ? अहं नागणये। स तत्रास्त। अहं छात्राय पुस्तकमददि। स ग्राममसुनुत। योगी परमात्मनि मनः अयुङ्क्त। स तत्र वस्त्रं नातनुत। स वणिक्तत्र नाक्रीणीत।

—०—

पाठ ४

विध्यर्थ (विधिलिङ्)

विधिलिङ् के परस्मैपदी धातुओंके प्रत्यय निम्नलिखित हैं—

विधिलिङ्– परस्मैपदी प्रत्यय।

१	...ईत्	...ईताम्	...ईयुः
२	...ईः	...ईतम्	...ईत
३	...ईयम्	...ईव	...ईम

प्रथमगण (अ)

बुध् (जानना)— १ बोधेत्, बोधेताम्, बोधेयुः। २ बोधेः, बोधेतम्, बोधेत। ३ बोधेयम्, बोधेव, बोधेम ॥

चतुर्थगण (य)

कुप् (क्रोध करना) – १ कुप्येत्, कुप्येताम्, कुप्येयुः। २ कुप्येः, कुप्येतम्, कुप्येत। ३ कुप्येयम्, कुप्येव, कुप्येम ॥

षष्ठगण (अ)

क्षिप् (फेंकना) – १ क्षिपेत्, क्षिपेताम्, क्षिपेयुः। २ क्षिपेः, क्षिपेतम्, क्षिपेत। ३ क्षिपेयम्, क्षिपेव, क्षिपेम ॥

दशमगण (अय)

चुर् (चोरना) – १ चोरयेत्, चोरयेताम्, चोरयेयुः । २ चोरयेः, चोरयेतम्, चोरयेत । ३ चोरयेयम्, चोरयेव, चोरयेम ॥

अन्य गणोंके लिये विधिलिङ् के प्रत्यय निम्नलिखित होते हैं ।

१	...यात्	...याताम्	...युः
२	...याः	...यातम्	...यात
३	...याम्	...याव	...याम

द्वितीयगण (०)

अद् (खाना) – १ अद्यात्, अद्याताम्, अद्युः । २ अद्याः, अद्यातम्, अद्यात । ३ अद्याम्, अद्याव, अद्याम ॥

तृतीयगण (द्वित्व)

दा (देना) – १ दद्यात्, दद्याताम्, दद्युः । २ दद्याः, दद्यातम्, दद्यात । ३ दद्याम्, दद्याव, दद्याम ॥

पंचमगण (नु)

साध् (साधन करना) — १ साध्नुयात्, साध्नुयाताम्, साध्नुयुः । २ साध्नुयाः, साध्नुयातम्, साध्नुयात । ३ साध्नुयाम्, साध्नुयाव, साध्नुयाम ॥

सप्तमगण (न)

पिष् (पिष्ट करना) – १ पिंष्यात्, पिंष्याताम्, पिंष्युः । २ पिंष्याः, पिंष्यातम्, पिंष्यात । ३ पिंष्याम्, पिंष्याव, पिंष्याम ॥

अष्टमगण (उ)

कृ (करना)– १ कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्युः । २ कुर्याः, कुर्यातम्, कुर्यात । ३ कुर्याम्, कुर्याव, कुर्याम ॥

नवमगण (ना)

स्तभ् (स्तंभन करना) – १ स्तभ्नीयात्, स्तभ्नीयाताम्, स्तभ्नीयुः । स्तभ्नीयाः, स्तभ्नीयातम्, स्तभ्नीयात । ३ स्तभ्नीयाम्,

*

स्तभ्नीयाव, स्तभ्नीयाम ॥

आशीर्लिङ्

विधिलिङ् का उपयोग विधि कहने समय और आशीर्लिङ् का उपयोग आशीर्वादके अर्थमें किया जाता है, इसलिये आशीर्लिङ्के परस्मैपदी रूप बनानेकी रीति अब बतायी जाती है–

आशीर्लिङ् के प्रत्यय

१	...यात्	...यास्ताम्	...यासुः
२	...याः	...यास्तम्	...यास्त
३	...यासम्	...यास्व	...यास्म

भू (होना) – १ भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः । २ भूयाः, भूयास्तम्, भूयास्त । ३ भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म ॥

धु (हिलाना) – १ धूयात्, धूयास्ताम्, धूयासुः । २ धूयाः, धूयास्तम्, धूयास्त । ३ धूयासम्, धूयास्व, धूयास्म ॥

स्मृ (स्मरण करना) – १ स्मर्यात्, स्मर्यास्ताम्, स्मर्यासुः । २ स्मर्याः, स्मर्यास्तम्, स्मर्यास्त । ३ स्मर्यासम्, स्मर्यास्व, स्मर्यास्म ॥

दा (देना) – १ देयात्, देयास्ताम्, देयासुः । २ देयाः, देयास्तम्, देयास्त । ३ देयासम्, देयास्व, देयास्म ॥

यज् (यज्ञ करना) – १ इज्यात्, इज्यास्ताम्, इज्यासुः । २ इज्याः, इज्यास्तम्, इज्यास्त । ३ इज्यासम्, इज्यास्व, इज्यास्म ।

पाठकोंने यहां देखा होगा कि गणकी भिन्नताका यहां कोई विशेष संबंध नहीं है, प्रायः सब धातुओंके रूप एकसे ही होते हैं। अस्तु । अब लिङ् के आत्मनेपदी रूप देखिये—

विधिलिङ् (आत्मनेपदी)

१	...ईत	...ईयाताम्	...ईरन्
२	...ईथाः	.. ईयाथाम्	...ईध्वम्
३	...ईय	...ईवहि	...ईमहि

प्रथमगण (अ)

नी (ले जाना) १ नयेत, नयेयाताम्, नयेरन्। २ नयेथाः, नयेयाथाम्, नयेध्वम्। ३ नयेय, नयेवहि, नयेमहि ॥

चतुर्थगण (य)

शुच् (शुद्ध होना) — १ शुच्येत, शुच्येयाताम्, शुच्येरन्। २ शुच्येथाः, शुच्येयाथाम्, शुच्येध्वम्। ३ शुच्येय, शुच्येवहि, शुच्येमहि ॥

षष्ठगण (अ)

क्षिप् (फेंकना)– १ क्षिपेत, क्षिपेयाताम्, क्षिपेरन्। २ क्षिपेथाः, क्षिपेयाथाम्, क्षिपेध्वम्, । ३ क्षिपेय, क्षिपेवहि, क्षिपेमहि ॥

दशमगण (अय)

तड् (पीटना) – १ ताडयेत, ताडयेयाताम्, ताडयेरन्। २ ताडयेथाः ताडयेयाथाम्, ताडयेध्वम्। ३ ताडयेय, ताडयेवहि, ताडयेमहि ॥

द्वितीयगण (०)

आस् (बैठना) – १ आसीत, आसीयाताम्, आसीरन्। २ आसीथाः, आसीयाथाम्, आसीध्वम्। ३ आसीय, आसीवहि, आसीमहि ॥

तृतीयगण (द्वित्व)

दा (देना) — १ ददीत, ददीयाताम्, ददीरन्। ददीथाः, ददीयाथाम्, ददीध्वम्। ३ ददीय, ददीवहि, ददीमहि ॥

पंचमगण (नु)

सु (रस निकालना)– १ सुन्वीत, सुन्वीयाताम्, सुन्वीरन्। २ सुन्वीथाः, सुन्वीयाथाम्, सुन्वीध्वम्। ३ सुन्वीय, सुन्वीवहि, सुन्वीमहि ॥

सप्तमगण (न)

इन्ध् (जलाना) – १ इन्धीत, इन्धीयाताम्, इन्धीरन्। २ इन्धीथाः, इन्धीयाथाम्, इन्धीध्वम्। ३ इन्धयि, इन्धीवहि, इन्[illegible]

अष्टमगण (उ)

कृ (करना)– १ कुर्वीत, कुर्वीयाताम्, कुर्वीरन् । २ कुर्वीथाः, कुर्वीयाथाम्, कुर्वीध्वम् । ३ कुर्वीय, कुर्वीवहि, कुर्वीमहि ॥

नवमगण (ना)

क्री (क्रय करना) — १ क्रीणीत, क्रीणीयाताम्, क्रीणीरन् । २ क्रीणीथाः, क्रीणीयाथाम्, क्रीणीध्वम् । ३ क्रीणीय, क्रीणीवहि, क्रीणीमहि ॥

आशीर्लिङ् (आत्मनेपदी प्रत्यय)

१	...सीष्ट	...सीयास्ताम्	...सीरन् ।
२	...सीष्ठाः	...सीयास्थाम्	...सीध्वम् ।
३	...सीय	...सीवहि	...सीमहि ।

धु (हिलाना) – १ धोषीष्ट, धोषीयास्ताम्, धोषीरन् । २ धोषीष्ठाः, धोषीयास्थाम्, धोषीढ्वम्, । ३ धोषीय, धोषीवहि, धोषीमहि ॥

जन् (उत्पन्न करना) – १ जनिषीष्ट, जनिषीयास्ताम्, जनिषीरन् । २ जनिषीष्ठाः, जनिषीयास्थाम्, जनिषीढ्वम् । ३ जनिषीय, जनिषीवहि, जनिषीमहि ॥

आशीर्लिङ् के रूप सब धातुओंके इसी प्रकार बनते हैं ।

रामायणम् ।

एवं सान्त्वितो रामो वस्त्रान्तेनाश्रूणि प्रमार्जयत् । सुग्रीवमुवाच च- " कृतं कृतं त्वया मित्रस्य कर्तव्यम् । दुर्लभो हि त्वत्सदृशो बंधुः । विशेषत एवंविधेऽस्मिन्काले । किंतु त्वया महान्यत्नः कार्यः सीतायाः परिमार्गणे । " इति ।

ततो मधुरया गिरा प्रणयात्सुग्रीव उवाच- " भ्रात्रा हृतभार्योऽहं भयार्दितश्चरामि गिरिं ऋष्यमूकम् । मम भ्रातुर्वालिनो भयान्मां त्रातुमर्हसि । " इति ।

एवमुक्तस्तु धर्मवत्सलो रामः सुग्रीवं प्रहसन्निव प्रत्युवाच- " उपकार—लक्षणं मित्रं, अरिलक्षणं अपकारः। अतस्तव भार्यापहारिणं त्वद्भ्रातरमद्यैव हनिष्यामि।" इति।

तच्छ्रुत्वा हृष्टः सुग्रीवो रामं प्रशशंस च। उवाच च रामम्— " राम ! वालिनः शौर्यं वीर्यं पौरुषं च श्रुत्वा यद्युक्तं तद्विधत्स्व। शृणु तस्य वीर्यं--अनुदिते सूर्ये वाली आविश्रान्तः पश्चिमं समुद्रं क्रामति। शैलशिखराण्य—प्यूर्ध्वं तरसोत्पातयति। एवंविधं बलिष्ठं कथं त्वं हन्तुं शक्ष्यसे ? "

लिङ्के लिये लेट्

लिङ् इससे पूर्व बतायाही है जिसके भेद विधिलिङ् और आशीर्लिङ् पाठक जानते ही हैं। वेदमें इस लिङ् के स्थानपर " लेट् " का प्रयोग होता है। इस समयतक " लेट् " ने रूप बनानेकी रीति कही नहीं। क्योंकि इस " लेट् " के प्रयोग केवल वेदमें ही आते हैं और कही भी नहीं आते। वेदके शब्द नये घडे नहीं जाते। वेदमें जो शब्द बनेबनाये हैं उनको ही पढना है। इसलिये इसके रूप बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। " लिङ् " के अर्थमें " लेट् " होता है इतनाही पाठक ध्यानमें धारण करें।

पाठक इस पाठको पढें और समझनेका यत्न करें।

—०—

पाठ ५

भविष्यकाल (लृट्)

इस पुस्तकके प्रथम पाठमें वर्तमानकालके प्रत्यय दिये हैं, धातु और इन प्रत्ययोंके बीचमें " स्य " लगानेसे भविष्यकाल बनता है। जैसा—

भू = भव + ति = भवति
भू = भव् + स्य + ति = भविष्यति

सब धातुओंके लिये इसके नियम समानही हैं परंतु विशेषता इतनी ही है कि कई धातुको " स्य " के पूर्व " इ " लगती है और कइयोंको नहीं। इसके उदाहरण ये हैं—

कृ — १ करिष्यति, करिष्यतः, करिष्यन्ति । २ करिष्यसि, करिष्यथः, करिष्यथ । ३ करिष्यामि, करिष्यावः, करिष्यामः ॥

सूचना- आत्मनेपदके प्रत्यय लगनेसे उक्त प्रकार आत्मनेपदी धातुओंके रूप बनते हैं। जैसा—

कृ - १ करिष्यते, करिष्येते, करिष्यन्ते। २ करिष्यसे, करिष्येथे, करिष्यध्वे। ३ करिष्ये, करिष्यावहे, करिष्यामहे ॥

जिन धातुओंको " इ " कार लगता नहीं उनके रूप निम्नलिखित प्रकार होते हैं।

दृश् - १ द्रक्ष्यति, द्रक्ष्यतः, द्रक्ष्यन्ति । २ द्रक्ष्यसि, द्रक्ष्यथः, द्रक्ष्यथ। ३ द्रक्ष्यामि, द्रक्ष्यावः, द्रक्ष्यामः ॥

सृज् - १ स्रक्ष्यति, स्रक्ष्यतः, स्रक्ष्यन्ति। २ स्रक्ष्यसि, स्रक्ष्यथः, स्रक्ष्यथ। ३ स्रक्ष्यामि, स्रक्ष्यावः, स्रक्ष्यामः ॥

इन उदाहरणोंके देखनेसे पाठकोंको विश्वास हुआ होगा कि इस भविष्य-कालके रूप करना सुगम है। क्योंकि संपूर्ण धातुओंके लिये प्रत्यय एकसे ही हैं। तथापि पाठकोंकी सुविधाके लिये यहां इसके प्रत्यय देता हूं—

भविष्यकाल (लृट्) के प्रत्यय

परस्मैपदी।

१	...स्यति	...स्यतः	...स्यन्ति
२	..स्यसि	...स्यथः	...स्यथ
३	...स्यामि	...स्यावः	...स्यामः

आत्मनेपदी।

१	...स्यते	...स्येते	...स्यन्ते
२	...स्यसे	.. स्येथे	...स्यध्वे
३	...स्ये	...स्यावहे	...स्यामहे

इकारके स्यका 'ष्य' बनता है और 'भविष्यति' आदि रूप होते हैं।

हेतुहेतुमद्भावार्थ। (लृङ्)

चतुर्थ पाठके प्रारंभमें इसी पुस्तकमें अनद्यतनभूत (लङ्) के प्रत्यय दिये हैं उनके पूर्व 'स्य' लगानेसे इस लृङ् के रूप बनते हैं। सुबोधताके लिये इसके प्रत्यय यहां देते हैं। इसमें भी लङ् (अनद्यतनभूतके समान) धातुके पीछे 'अ' लगता है; अब इसके प्रत्यय देखिये—

हेतुहेतुमद्भावार्थ

परस्मैपदी प्रत्यय।

१	...स्यत्	...स्यताम्	...स्यन्
२	...स्यः	...स्यतम्	...स्यत
३	...स्यम्	...स्याव	...स्याम

आत्मनेपदी प्रत्यय।

१	...स्यत	...स्येताम्	...स्यन्त
२	...स्यथाः	...स्येथाम्	...स्यध्वम्
३	...स्ये	...स्यावहि	...स्यामहि

अब इनके उदाहरण देखिये—

परस्मैपदी धातु।

बुध् – १ अबोधिष्यत्, अबोधिष्यताम्, अबोधिष्यन्। २ अबोधिष्यः, अबोधिष्यतम्, अबोधिष्यत। ३ अबोधिष्यम्, अबोधिष्याव, अबोधिष्याम ॥

नी – १ अनेष्यत्, अनेष्यताम्, अनेष्यन्। २ अनेष्यः, अनेष्यतम्, अनेष्यत। ३ अनेष्यम्, अनेष्याव, अनेष्याम ॥

आत्मनेपदी धातु।

वृध् – १ अवर्धिष्यत, अवर्धिष्येताम्, अवर्धिष्यन्त। २ अवर्धिष्यथाः, अवर्धिष्येथाम्, अवर्धिष्यध्वम्। ३ अवर्धिष्ये, अवर्धिष्यावहि, अवर्धिष्यामहि ॥

नी – १ अनेष्यत, अनेष्येताम्, अनेष्यन्त । २ अनेष्यथाः, अनेष्येथाम्, अनेष्यध्वम् । ३ अनेष्ये, अनेष्यावहि, अनेष्यामहि ॥

हेतुहेतुमद्भावार्थके रूपोंका उपयोग हेतु दर्शानेके वाक्योंमें होता है जैसा— " यदि स तत्रागमिष्यत् तर्हि एवं नाभविष्यत् । " (यदि वह वहां जाता तो ऐसा न होता) इस प्रकारके वाक्योंमें हेतुमद्भावका प्रयोग होता है।

अब अनद्यतन-भविष्यके रूप बनानेका विधि देखिये–

अनद्यतन-भविष्य (लुट्)

अनद्यतन-भविष्य (लुट्) के प्रत्यय निम्नलिखित हैं। संपूर्ण धातुओंके लिये येही प्रत्यय हैं–

परस्मैपदी ।

१	...ता	...तारौ	...तारः
२	...तासि	...तास्थः	...तास्थ
३	...तास्मि	...तास्वः	...तास्मः

दा (देना) = १ दाता, दातारौ, दातारः। २ दातासि, दातास्थः, दातास्थ। ३ दातास्मि, दातास्वः, दातास्मः ॥

भ्रम् (भ्रमण करना) = १ भ्रमिता, भ्रमितारौ, भ्रमितारः । २ भ्रमितासि, भ्रमितास्थः, भ्रमितास्थ । ३ भ्रमितास्मि, भ्रमितास्वः, भ्रमितास्म ॥

आत्मनेपदी ।

१	...ता	...तारौ	...तारः
२	...तासे	...तासाथे	...ताध्वे
३	...ताहे	...तास्वहे	...तास्महे

आत्मनेपदी धातुओंको ये प्रत्यय लगते हैं और अनद्यतन-भविष्यके रूप बन जाते हैं–

दा (देना) – १ दाता, दातारौ, दातारः। २ दातासे, दातासाथे, दाताध्वे। ३ दाताहे, दातास्वहे, दातास्महे ॥

ये प्रत्यय लगनेके पूर्व भी कई धातुओंको " इ " लगती है और कईयोंके लिये नहीं लगती। अथवा कई धातुओंको विकल्पसे लगती है देखिये–

लुभ् (लोभ करना)

इकारयोग – १ लोभिता, लोभितारौ, लोभितारः। २ लोभितासि, लोभितास्थः, लोभितास्थ। ३ लोभितास्मि, लोभितास्वः, लोभितास्मः॥

इकाररहित – १ लोब्धा, लोब्धारौ, लोब्धारः। २ लोब्धासि, लोब्धास्थः, लोब्धास्थ। ३ लोब्धास्मि, लोब्धास्वः, लोब्धास्मः॥

जिन धातुओंको इकार (इट्) लगता है उनको " सेट् " (स+इट् = इकारसहित) कहते हैं, जिनको नहीं लगता उन धातुओंको ' अनिट् ' (अन्+ इट् = इकाररहित) कहा जाता है और जिनको विकल्पसे इकार लगता है उनको ' वेट् ' (वा+इट् = विकल्पसे इट्वाला) कहते हैं। धातु सेट्, अनिट् वा वेट् पहिलेसेही निश्चित हैं और जो धातु जैसा है उसके वैसे ही रूप बनते हैं।

पाठ ६

पूर्णभूतकाल (लिट्)

अनद्यतन-परोक्ष–भूतकाल के लिये ' लिट् ' कहते हैं। जो क्रिया आज नहीं हुई और जो क्रिया देखी भी नहीं उसके लिये इस लिट्के रूप प्रयुक्त किये जाते हैं। जैसा ' रामो राजा बभूव ' (राम राजा हुआ था।) अर्थात् कहनेवालेके सामने राम राजा नहीं हुआ और बहुत दिन पूर्व हुआ था। इस लिट् के प्रत्यय ये हैं—

परस्मैपदी (लिट्)

१	...अ	...अतुः	...उः
२	...थ	...अथुः	...अ
३	...अ	...व	...म

भू (होना) – १ बभूव, बभूवतुः, बभूवुः । २ बभूविथ, बभूवथुः, बभूव । ३ बभूव, बभूविव, बभूविम ॥

इसमें धातुके प्रथमाक्षरका द्वित्त्व होता है और उस वर्णका मृदुत्व भी होता है। जैसा--'भू+अ' ='भू भू+अ' = 'बुभू+अ' = बभू+अ = बभूव। इस ढंगसे रूप बनते हैं। और उदाहरण देखिये—

यु (मिश्रण करना) — १ युयाव, युयुवतुः, युयुवुः। २ युयुविथ, युयुवथुः, युयुव । ३ युयाव, युयुविव, युयुविम ॥

रु (शब्द करना) — १ रुराव, रुरुवतुः, रुरुवुः। २ रुरुविथ, रुरुवथुः, रुरुव। ३ रुराव, रुरुविव, रुरुविम ॥

वृ (पसंद करना) -- १ ववार, वव्रतुः, वव्रुः। २ ववरिथ, वव्रतुः वव्र । ३ ववार, ववृव, ववृम ॥

मुच् (मुक्त करना) -- १ मुमोच, मुमुचतु, मुमुचुः। २ मुमोचिथ, मुमुचथुः, मुमुच । ३ मुमोच, मुमुचिव, मुमुचिम ॥

वच् (बोलना) -- १ उवाच, ऊचतुः, ऊचुः। २ उवाचिथ, ऊचथुः, ऊच। उवाच, ऊचिव, ऊचिम ॥

प्रच्छ (पूछना) -- १ पप्रच्छ, पप्रच्छतुः, पप्रच्छुः। २ पप्राच्छिथ, पप्रच्छथुः, पप्रच्छ। ३ पप्रच्छ, पप्राच्छिव, पप्राच्छिम ॥

त्यज् (छोडना) -- १ तत्याज, तत्यजतुः, तत्यजुः। २ तत्यजिथ, तत्यजथुः, तत्यज । ३ तत्याज, तत्यजिव, तत्यजिम ॥

भुज् (भोजन करना) – १ बुभोज, बुभुजतुः, बुभुजुः । २ बुभोजिथ, बुभुजथुः, बुभोज। ३ बुभोज, बुभुजिव, बुभुजिम ॥

युज् (जोडना) -- १ युयोज, युयुजतुः, युयुजुः। २ युयोजिथ, युयुजथुः, युयुज। ३ युयोज, युयुजिव, युयुजिम ॥

तप् (तप करना) -- १ तताप, तेपतुः, तेपुः। २ ततपिथ, ततपिथुः तेप। ३ ततप, तेपिव, तेपिम ॥

इस रीतिसे परस्मैपदी धातुओंके रूप बनते हैं । अब आत्मनेपदी धातुओंके रूप देखिये—

भूतकाल (लिट्) आत्मनेपदी ।

आत्मनेपदी लिट्के प्रत्यय निम्नलिखित हैं-

१	...ए	...आते	...इरे
२	...से	...आथे	...ध्वे
३	...ए	...वहे	...महे

इन प्रत्ययोंके द्वारा आत्मनेपदी धातुओंके रूप इस प्रकार बनते हैं--

रु (शब्द करना) -- १ रुरुवे, रुरुवाते, रुरुविरे। २ रुरुविषे, रुरुवाथे, रुरुविध्वे। ३ रुरुवे, रुरुविवहे, रुरुविमहे ॥

शी (सोना) -- १ शिश्ये, शिश्याते, शिश्यिरे। २ शिश्यिषे, शिश्याथे, शिश्यिध्वे। ३ शिश्ये, शिश्यिवहे, शिश्यिमहे ॥

वृ (पसंद करना) -- १ वव्रे, वव्राते, वव्रिरे । २ ववृषे, वव्राथे, ववृड्ढ्वे । ३ वव्रे, ववृवहे, ववृमहे ॥

पच् (पकाना) -- १ पेचे, पेचाते, पेचिरे । २ पेचिषे, पेचाथे, पेचिध्वे। ३ पेचे, पेचिवहे, पेचिमहे ॥

भज् (सेवा करना) -- १ भेजे, भेजाते, भेजिरे। २ भेजिषे, भेजाथे, भेजिध्वे। ३ भेजे, भेजिवहे, भेजिमहे ॥

यज् (यज्ञ करना) — १ ईजे, ईजाते, ईजिरे। २ ईजिषे, ईजाथे, ईजिध्वे। ३ ईजे, ईजिवहे, ईजिमहे ॥

विद् (विचार करना) -- १ विविदे, विविदाते, विविदिरे। २ विविदिषे, विविदाथे, विविदिध्वे। ३ विविदे, विविदिवहे, विविदिमहे ॥

बुध् (जानना) – १ बुबुधे, बुबुधाते, बुबुधिरे । २ बुबुधिषे, बुबुधाथे, बुबुधिध्वे । ३ बुबुधे, बुबुधिवहे, बुबुधिमहे ॥

मन् (विचार करना) – १ मेने मेनाते, मेनिरे । २ मेनिषे, मेनाथे, मेनिध्वे । ३ मेने, मेनिवहे, मेनिमहे ॥

लभ् (लाभ करना) -- १ लेभे, लेभाते, लेभिरे । २ लेभिषे, लेभाथे, लेभिध्वे । ३ लेभे, लेभिवहे, लेभिमहे ॥

कृष् (हल चलाना) -- १ चकृषे, चकृषाते, चकृषिरे । २ चकृषिषे। चकृषाथे, चकृषिध्वे । ३ चकृषे, चकृषिवहे, चकृषिमहे ॥

धु (हिलाना) – १ दुधुवे, दुधुवाते, दुधुविरे । २ दुधुविषे, दुधुवाथे, दुधुविध्वे । ३ दुधुवे, दुधुविवहे, दुधुविमहे ॥

कृ--भू—अस् धातुओंका प्रयोग ।

धातुको 'आम्' प्रत्यय लग कर उसके साथ 'कृ, भू, अस्' इन तीन धातुओंके लिट् के रूप लगाने से भी लिट् के रूप बनानेकी एक रीति है। कृ, भू, अस् धातुके परस्मैपदी और आत्मनेपदी रूप निम्न प्रकार हैं--

कृ (परस्मै०)– १ चकार, चक्रतुः, चक्रुः । २ चकर्थ, चक्रथुः, चक्रः। ३ चकार, चकृव, चकृम ॥

कृ (**आत्मने०**) -- १ चक्रे, चक्राते, चक्रिरे । २ चकृषे, चक्राथे, चकृड्ढ्वे, ३ चक्रे, चकृवहे, चकृमहे ॥

भू (परस्मै०) – १ बभूव, बभूवतुः, बभूवुः । २ बभूविथ, बभूवथुः बभूव । ३ बभूव, बभूविव, बभूविम ॥

अस् (परस्मै०) १ आस, आसतुः, आसुः । २ आसिथ, आसथुः, आस । ३ आस, आसिव, आसिम ॥

ये रूप निम्नप्रकार धातुओंके साथ लगकर लिट् के रूप बनते हैं—

कास् (खांसना)

१ कासाञ्चक्रे, कासाञ्चक्राते, कासांचक्रिरे ।

१ कासामास, कासामासतुः, कासामासुः ।

१ कासांबभूव, कासांबभूवतुः, कासांबभुवुः ।

कथ् (कहना)

१ कथयांचकार, कथयांचक्रतुः, कथयांचक्रुः ।

१ कथयांचक्रे, कथयांचक्राते, कथयांचक्रिरे ।

१ कथयामास, कथयामासतुः, कथयामासुः ।

१ कथयांबभूव, कथयांबभूवतुः, कथयांबभूवुः ।

यहां प्रथम पुरुषके रूप बताये हैं, अन्य पुरुषोंके अर्थात् द्वितीय तथा उत्तम पुरुषोंके रूप इस प्रकार पूर्वोक्त रूप लगाकर पाठक बना सकते हैं।

———

पाठ ७

भूतकाल (लुङ्)

इस भूतकालके कई प्रकारके प्रत्यय हैं, उनमें प्रथम विभागके प्रत्यय हैं--

परस्मैपदी ।

१	...त्	...ताम्	...उस्
२	...स् (:)	...तम्	...त
३	...अम्	...व	...म

ये प्रत्यय प्रायः अनद्यतनभूत (लङ्) के प्रत्ययोंके समानही हैं केवल भेद इतना है कि " अन् " प्रत्ययके स्थानपर यहां ' उस् ' प्रत्यय है। इनके रूप ये हैं--

स्था (ठरना) – १ अस्थात्, अस्थाताम्, अस्थुः । २ अस्थाः, अस्थातम्, अस्थात । ३ अस्थाम्, अस्थाव, अस्थाम ॥

दा (देना) – १ अदात्, अदाताम्, अदुः । २ अदाः, अदातम्, अदात । ३ अदाम्, अदाव, अदाम ॥

पा (पीना) -- १ अपात्, अपाताम्, अपुः । २ अपाः, अपातम्, अपात । ३ अपाम्, अपाव, अपाम ॥

जिन धातुओंके अंतमें आ न हो उन धातुओंके लिये " लङ् " के समान " अन् " प्रत्यय " उस् " के स्थानपर होता है ।

भू (होना) — १ अभूत्, अभूताम्, अभूवन् । २ अभूः, अभूतम्, अभूत । ३ अभूवम्, अभूव, अभूम ॥

पाठकोंके ध्यानमें यह बात आचुकी होगी कि, इस भूतकाल में " भू " का " भव् " बनता नहीं और न गुण होता है । इसीलिये " अभूत् ', रूप बना है अन्यथा पूर्वोक्त लङ् का रूप " अभवत् " होता है । यही लङ् आर लुङ् के रूपोंमें भेद है ।

परस्मैपदी प्रत्यय – १... ...त् ...ताम् ...न् । २ ...स् तम् ...त । ३ ...म् ...व ...म ।

शक् (समर्थ होना)

१ अशकत्, अशकताम्, अशकन् । २ अशकः, अशकतम्, अशकत । ३ अशकम्, अशकाव, अशकाम ॥

वच् (बोलना)

१ अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन् । २ अवोचः, अवोचतम्, अवोचत । ३ अवोचम्, अवोचाव, अवोचाम ॥

सिच् (छिटकना)

१ असिचत्, असिचाताम्, असिचन् । २ असिचः, आसिचतम्, आसिचत । ३ असिचम्, असिचाव, असिचाम ॥

आत्मनेपदी प्रत्यय – २ ...त ...इताम् ...न्त । २ ...थाः, इथाम्... ध्वम् । ३ ...इ ...वहि ...महि ।

(लिप् (लीपना)

१ अलिपत, आलिपेताम्, आलिपन्त । २ अलिपथाः, आलिपेथाम्, आलिपध्वम् । ३ आलिपे, अलिपावाहि, अलिपामहि ॥

इस प्रकार अन्यान्य धातुओंके रूप होते हैं। पाठक इस प्रकार अन्य धातुओंके रूप बना सकते हैं, इसीके कई अन्य प्रकार हैं परंतु उन सबको जाननेका कोई विशेष प्रयोजन नहीं है।

णिजन्त (प्रयोजक) क्रिया।

क्रियाके दो भेद हैं। एक स्वयं करनेकी क्रिया और दूसरी दूसरेके द्वारा करानेकी क्रिया। जैसे करना, कराना। पहिली स्वयं करनेकी है और दूसरी दूसरेसे करानेकी है। पहिले प्रकारके रूप इस समयतक दिये ही हैं, अब दूसरे प्रकारके देते हैं।

धातु	अर्थ	णिजन्त (प्रयोजक) रूप	
१ स्फुर्-	(स्फुरण करना)	स्फारयति, स्फारयते।	
२ पा-	(रक्षण करना)	पालयति, पालयते।	
३ दा-	(देना)	दापयति	ते।
४ रुह्-	(बढना)	रोहयति	ते।
५ दुष्-	(दूषित करना)	दूषयति	ते।
६ प्री-	(प्रीति करना)	प्रीणयति	ते।
७ व्यथ्-	(दुःखी करना)	व्यथयति	ते।
८ प्रथ्-	(प्रसिद्ध होना)	प्रथयति	ते।
९ नट्-	(नाचना)	नटयति, नाटयति	ते।
१० ज्वल्-	(जलना)	ज्वलयति, ज्वालयति	ते।
११ चल्-	(चलना)	चलयति, चालयति	ते।
१२ ध्वन्-	(शब्द करना)	ध्वनयति, ध्वानयति	ते।
१३ क्रम्-	(आक्रमण करना)	क्रमयति।	ते।
१४ नम्-	(नम्र होना)	नमयति, नामयति	ते।
१५ स्ना-	(स्नान करना)	स्नपयति, स्नापयति	ते।
१६ कम्-	(इच्छा करना)	कामयति	ते।
१७ शम्-	(शांत करना)	शामयति	ते।

१८ यम्-- (स्वाधीन रखना) यामयति—ते ।

ये प्रयोजक क्रियाके वर्तमानकालके रूप हैं। इनके अन्य लकारोंके रूप पूर्व पाठोंमें बतायी रीतिके अनुसार ही होते हैं । इनके अर्थ इस प्रकार होते हैं—

दा- ददाति	(देता है)
दापयति	(दिलाता है)
व्यथ्--व्यथते	(दुःखी होता है)
व्यथयति	(दुःख देता है)
नट्---नटति	(नाचता है)
नटयति	(नचाता है)
चल्--चलति	(चलता है)
चलयति	(चलाता है)
नम्--- नमति	(नम्र होता है)
नमयति	(नमाता है)
स्ना- स्नाति	(स्नान करता है)
स्नापयति	(स्नान कराता है)

इस प्रकार इनके अर्थ हैं । यह प्रयोजक क्रिया बहुत उपयोगी है।

श्लोकपाठः ।

एवं बहुविधैर्वाक्यैर्याच्यमानस्तया नृपः ।
नाश्रद्दधच्छाल्वपतिः कन्यायां भरतर्षभ ॥ २० ॥
ततः सा मन्युनाऽऽविष्टा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ।
अब्रवीत्साऽश्रुनयना बाष्पविप्लुतया गिरा ॥ २१ ॥

(म० भा० उद्योग० अ० १७५)

"हे भरतर्षभ ! एवं तया बहुविधैः वाक्यैः याच्यमानः नृपः शाल्वपतिः तस्यां कन्यायां न अश्रद्दधत ॥ ततः सा काशिपतेः ज्येष्ठा सुता मन्युना आविष्टा साश्रुनयना बाष्पविप्लुतया गिरा अब्रवीत ॥

पाठ ८

सन्नन्त-क्रिया।

गम् (जाना) = गच्छति (जाता है)।

जिगमिषति (जाना चाहता है)। यह सन्नन्त क्रिया है।

पठ् (पढना) = पठति (पढता है)।

पिपठिषति (पढनेकी इच्छा करता है) ,, ,, ,,

ये सन्नन्त- क्रियाके उदाहरण हैं। किसीके करनेकी इच्छा करनेका भाव व्यक्त करनेके लिये इस क्रियाका प्रयोग होता है। इस क्रियामें धातुका द्वित्व होता है और पश्चात् ' स ' प्रत्यय लगता है, जैसा—

भू = भु भू = बुभू + स = बुभूष + ति = बुभूषति (होनेकी इच्छा करता है) इसी प्रकार इस क्रियाके रूप बनते हैं।

१ भू (होना)	...	बुभूषति।
२ पठ् (पढना)	...	पिपठिषति।
३ मुष् (चोरना)	...	मुमुषिषति।
४ भिद् (भेद करना)	...	बिभित्सति।
५ हन् (मारना)	...	जिघांसति।
६ गम् (जाना)	...	जिगमिषति।
७ लिख् (लिखना)	...	लिलिखिषति।
८ ज्ञा (जानना)	...	जिज्ञासते।
९ मान् (मानना)	...	मीमांसते।
१० स्था (ठरना)	...	तिष्ठासति।
११ रक्ष् (रक्षण करना)	...	रिरक्षिषति।
१२ कृ (करना)	...	चिकीर्षति।
१३ लष् (इच्छा करना)	...	लिलषिषति।
१४ वद् (बोलना)	...	विवदिषति।

इनके अर्थ कैसे होते हैं, इस बातको पहिले ही दर्शाया है। इसलिये उसको फिर यहां दुहराना आवश्यक नहीं है।

यहां क्रियापदविचार समाप्त हुआ। अब उपसर्गके साथ धातुओंका प्रयोग करनेकी विधि बतानी है।

उपसर्ग और धातु।

धातुके पूर्व उपसर्ग लगता है और धातुका अर्थ भी बदल देता है। जैसे-
गम् — (जाना) गच्छति, अगच्छत्, गमिष्यति, जगाम।
इसीको उपसर्ग लगनेसे क्रियाएं निम्नलिखित प्रकार होती हैं—
१ प्रगच्छति, संगच्छति, उद्गच्छति, अनुगच्छति।
२ प्रागच्छत्, समगच्छत्, उदगच्छत्, अन्वगच्छत्।
(प्र+अगच्छत्, सम्+अगच्छत्। उत्+अगच्छत्। अनु+अगच्छत्।)
३ प्रगमिष्यति, संगमिष्यति, उद्गमिष्यति, अनुगमिष्यति।
४ प्रजगाम, संजगाम, उज्जगाम, अनुजगाम।

प्रत्येक लकारका रूप बननेके पश्चात् वह इष्ट उपसर्गके पश्चात् रखा जाता है। अर्थात् 'संगम्' धातुका लङ् का रूप 'समगच्छत्' होता है क्योंकि लङ् का रूप 'अगच्छत्' है और उसके पूर्व 'सम्' उपसर्ग लग जानेसे 'सम्+अगच्छत् = समगच्छत्' बन जाता है। इसी प्रकार अन्यान्य धातुओंके रूप करनेका यत्न करना चाहिये। पाठकोंकी सुविधाके लिये कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं—

१ गम् (जाना)

१ अधि+गम् = (प्राप्त करना) = अधिगच्छति, अध्यगच्छत्, अधिगमिष्यति।
२ अनु + गम् = (पीछे चलना) = अनुगच्छति, अन्वगच्छत्, अनुगमिष्यति।
३ अव+गम् = (जानना) = अवगच्छति, अवागच्छत्, अवगमिष्यति।

४ आ+गम् = (आना) = आगच्छति, आगच्छत्, आगमिष्यति।
५ उप+गम् = (समीप जाना) = उपगच्छति, उपागच्छत्, उपगमिष्यति।

६ निगम् = (जाना) = निगच्छति, न्यगच्छत्, निगमिष्यति।
७ निर्गम् = (बाहर जाना) = निर्गच्छति, निरगच्छत्, निर्गमिष्यति।

८ विगम् = (चला जाना) = विगच्छति, व्यगच्छत्, विगमिष्यति।
९ संगम् = (मिलना) = संगच्छति, समगच्छत्, संगमिष्यति।

इसी प्रकार अन्यान्य धातुओंसे अन्यान्य उपसर्ग लगकर विविध धातु बनते हैं। समय समयपर एकसे भी अधिक उपसर्ग लग जाते हैं। अब अन्य धातुओंके भी कई उदाहरण देखिये।

उपवस् = (उपवास करना) उपवसति, उपावसत्, उपवासिष्यति।
निर्मुच् = (छोडना) = निर्मुञ्चति, निरमुञ्चत्, निर्मोक्ष्यति।
निर्या = (जाना) निर्याति, निरयात्, निर्यास्यति।
प्रदह् = (जलाना) = प्रदहति, प्रादहत्, प्रधक्ष्यति।
प्रदुष् = (दोषयुक्त बनना) = प्रदुष्यति, प्रादुष्यत्, प्रदोक्ष्यति।
विक्रम् = (पराक्रम करना) = विक्रमति, व्यक्रमत्, विक्रमिष्यति।
विगर्ह् = (निंदा करना) = विगर्हति, व्यगर्हत्, विगर्हिष्यति।
विचल् = (हिलना) = विचलति, व्यचलत्, विचलिष्यति।
वितॄ = (पार होना, देना) = वितरति, व्यतरत्, वितरिष्यति।
संभू = (जन्म लेना) = संभवति, समभवत्, संभविष्यति।
संभाष् = (संभाषण करना) = संभाषते, समभाषत, संभाषिष्यते।

इसी प्रकार अन्यान्य धातुओंके उपसर्गपूर्वक रूप जानने उचित हैं। इनके प्रयोग संस्कृत भाषामें सैकडों स्थानोंपर आते हैं। इसलिये उपसर्गपूर्वक धातुओंके रूपोंका महत्त्व पाठक स्वयं ही जान सकते हैं। उदाहरणके लिये निम्नलिखित श्लोक देखिये—

आत्मवीर्यं समाश्रित्य भृत्यवीर्यं च कौरव।
आह्वयस्व रणे पार्थान्सर्वथा क्षत्रियो भव ॥ ५४ ॥
परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान्।
अशक्तः स्वयमादातुमेतदेव नपुंसकम् ॥ ५५ ॥

(म० भा० उद्योग० अ० १६२)

"अपने वीर्यका और नौकरोंके पराक्रमका आश्रय करके, हे कौरव! युद्धमें (पार्थान्) पांडवोंको आह्वान कर, सब प्रकारसे क्षत्रिय बन॥ दूसरेके बलका आश्रय करके जो शत्रुओंको युद्धके लिये आह्वान करता है और स्वयं युद्धका भार उठानेमें अशक्त होता है, वह नपुंसक है॥ "

इन श्लोकोंमें—

समाश्रित्य - (सम्+आ+श्रि),
आह्वयस्व - (आ+ह्वे),
समाह्वयते - (सं+आ+ह्वे),
आदातुं - (आ+दा)

ये सब रूप उपसर्गपूर्वक धातुओंके हैं। पाठक इस प्रकार जान लें।

—०—

पाठ ९

धातुसाधित रूप ।

धातुके साथ प्रत्यय लगकर कई आवश्यक रूप बनते हैं और उनका वारंवार उपयोग होता है, इसलिये इस पाठमें इन प्रत्ययोंका विचार करना है ।

' तम्' प्रत्यय

'क्रियाके करने ' के लिये ' इस अर्थमें यह प्रत्यय लगता है । जैसे—

कृ (करना) — कर्तुम् । (करनेके लिये)
गम् (जाना) — गन्तुम् । (जानेके ,,)
लिख् (लिखना) — लेखितुम् । (लिखनेके ,,)
सेव् (सेवा करना) — सेवितम् । (सेवा करनेके ,,)

ये रूप वारंवार संस्कृत-भाषामें प्रयुक्त होते हैं और इनका बनना बडा आसान है। इसलिये कई रूप यहां देते हैं—

अंक् (चिह्न करना) = अंकयितुम्
अत् (जाना) = अतितुम्
अद् (खाना) = अत्तुम्
अन् (जीवन धारण करना) = अनितुम्
अर्च् (पूजा करना) = अर्चितुम् (१ गण) । अर्चयितुम् (१० गण)
अर्थ् (मांगना) = अर्थयितुम्
अव् (रक्षा करना) = अवितुम्

अश् (भोजन करना) = अशितुम्
आप् (व्यापना) = आप्तुम्
कथ् (कहना) = कथयितुम्
कम्प् (हिलना) = कम्पितुम्
कृष् (हल चलाना) = कर्ष्टुम्
क्रम् (चलना) = क्रमितुम्
गण् (गिनना) = गणयितुम्
छिद् (काटना) = छेत्तुम्
जी (जय प्राप्त करना) = जेतुम्
तड् (ताडन करना) = ताडयितुम्

*

इसी प्रकार अन्यान्य धातुओंसे 'तुम्' प्रत्ययान्त धातुसाधित रूप बनते हैं। अब पाठक इनको पहचान सकते हैं।

'त्वा' प्रत्यय

'...करके' इस अर्थमें संस्कृत धातुओंको 'त्वा' प्रत्यय लगकर रूप बनते हैं, जैसे—

गम् = गत्वा = (जाकर)
पा = पीत्वा = (पीकर)
भुज् = भुक्त्वा = (भोजन करके)
नम् = नत्वा = (नमन करके)
तृष् = तृषित्वा = (तृषित होकर)

इस प्रकार रूप इस प्रत्ययसे बनते हैं। इनका भी संस्कृत-भाषामें बहुत ही उपयोग है। अब इनके कई उदाहरण देते हैं—

त्रुट् (टूटना) – त्रुटित्वा
त्वर् (त्वरा करना) – त्वरित्वा
दण्ड् (दण्ड देना) – दण्डयित्वा
दम् (दमन करना) – दमित्वा
दंश् (काटना) – दष्ट्वा
दा (देना) – दत्त्वा
दुह् (दोहना) – दुग्ध्वा
द्विष् (द्वेष करना) – द्विष्ट्वा
धाव् (दौडना) – धावित्वा
धा (धारण करना) – हित्वा
धु (हिलना) – धुत्वा

धृ (धरना) -- धृत्वा
नट् (नाचना) -- नटित्वा
नश् (नाश होना) -- नाशित्वा, नष्ट्वा
निन्द् (निंदा करना) – निन्दित्वा
नृत् (नाचना) -- नर्तित्वा
पच (पकाना) -- पक्त्वा
पठ् (पढना) -- पठित्वा
पा (रक्षण करना) -- पात्वा
पुष् (पुष्ट करना) -- पुष्ट्वा
पूज् (पूजा करना) – पूजयित्वा

इसी प्रकार अन्यान्य धातुओंसे "त्वा" प्रत्यय लगकर रूप बनते हैं।

' य ' प्रत्यय

धातुके पूर्व उपसर्ग रहा तो उस समय " त्वा "प्रत्ययके स्थानपर ' य ' प्रत्यय लगता है, इसका भी वही अर्थ है। इसके उदाहरण देखिये—

आधि -- ई = अधीत्य (अध्ययन करके)
नि -- यम् = नियम्य (नियमन करके)
प्र -- णम् = प्रणम्य (नमन ,,)
वि -- तन् = वितत्य (फैला करके)
आ -- दा = आदाय (ला ,,)
वि -- धा = विधाय (बना ,,)
प्र -- हा = प्रहाय (छोड ,,)
आ -(क्रम् = आक्रम्य (आक्रमण ,,)
सं-आ - भाष् = समाभाष्य (संभाषण ,,)
सं -- चि = संचित्य (इकट्ठा ,,)
सं -- चिन्त् = संचिन्त्य (विचार ,,)
प्र - जल्प् = प्रजल्प्य (बोल ,,)
वि -- जि = विजित्य (विजय ,,)
वि -- ज्ञा = विज्ञाय (जान ,,)

इसी प्रकार उपसर्गपूर्वक धातुओंके रूप होते हैं। इनके प्रयोग संस्कृतमें बहुत हैं। इसलिये पाठक इनका अच्छा अभ्यास करें।

कृत्य-प्रक्रिया

" तव्य " और " अनीय " ये दो प्रत्यय धातुओंको लगते हैं और ' योग्य ' अर्थ व्यक्त करते हैं, जैसे—

कृ—कर्तव्यं, करणीयं (करने योग्य)
भिद्—भेत्तव्यम्, भेदनीयं (भेदन करने योग्य)
पच्—पक्तव्यं, पचनीयं (पकाने योग्य)

निन्द् — निन्दितव्यं, निंदनीयं (निंदा करने योग्य)
कथ् - कथयितव्यं, कथनीयं (कहने ,,)
चि - चेतव्यं, चयनीयं (इकट्ठा करने ,,)
मृज् - मार्ष्टव्यं, मार्जनीयं (शुद्ध करने ,,)

जिन धातुओंके अंतमें स्वर होता है उस धातुको " य " प्रत्यय इसी अर्थ में लगता है, जेसे—

जि - जेयं (जीतने योग्य)
चि - चेयं (इकट्ठा करने योग्य ,,)
दा - देयं (देने ,,)
धा —धेयं (धारण करने ,,)
गै ---गेयं (गाने योग्य)

कई व्यञ्जनान्त धातुओंसे भी यह " य " प्रत्यय होता है, जैसे-

जन्— जन्यं (जन्म देने योग्य)
आलभ् - आलभ्यं (प्राप्त करने योग्य)
चर् - चर्यं (आचरने योग्य)
नियम् - नियम्यं (नियममें रखने योग्य)

इसी प्रकार अन्यान्य धातुओंसे ये प्रत्यय लगते हैं।

पाठ १०

रामायणम्।

तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं लक्ष्मणः प्रहसन्निवाब्रवीत् - " कस्मिन् कर्मणि कृते सति वालिनो वधं श्रद्दध्याः ? "

सुग्रीव उवाच— " इमान् सप्त तालवृक्षान् पुरा वाली विव्याध। एवं यः कर्तुं शक्नोति स एव वालिनो वधं कर्तुं समर्थो भविष्यति। "

एतत्सुग्रीवस्य भाषणं श्रुत्वा महातेजा रामस्तस्य प्रत्ययार्थमेकमेव शरं चिक्षेप, स शरः सप्त तालान् भित्त्वा भूमिं प्रविवेश। रामस्य शरवेगेन सुग्रीवः परं विस्मयं गतः कृताञ्जली रामायोवाच– "पुरुषर्षभ! समरे सर्वानपि सुरान्हन्तुं त्वं समर्थोऽसि किंपुनर्वालिनम्? येन त्वया सप्त तालवृक्षा गिरिर्भूमिश्च एकेनैव बाणेन विदारितास्तेन त्वया सह को रणे स्थाता? अतस्त्वं वालिनं जहीति।"

ततः सुग्रीवं रामः प्रत्युवाच– "गच्छामेदानीं किष्किंधाम्। अग्रतो गत्वा वालिनं युद्धायाह्वाय" इति।

ते सर्वे ततो वालिनः पुरीं किष्किंधां गत्वा वृक्षैरावृत्यातिष्ठन्। सुग्रीवोऽपि वालिन आह्वनकारणात् घोरमनदत्। भ्रातुराह्वानं श्रुत्वा वाली गृहान्निष्पपात। ततो वालिसुग्रीवयोस्तुमुलं युद्धमभूत्। रामस्तु तावत्यन्त– सदृशौ दृष्ट्वा नावगच्छत्सुग्रीवतो वालिनम्। अतोऽन्तकरं शरं मोक्तुं बुद्धिं न कृतवान्। भग्नस्तदा वालिना सुग्रीवोऽपश्यंश्च रामं प्रदुद्रुवे पर्वतमृष्यमूकम्। "शापभयान्मुक्तोऽसि" इति वाली तमुक्त्वा स्वगृहं निवृत्तः। रामस्तु तदेव वनं जगाम यत्र सुग्रीवो गतः।

रामं दृष्ट्वा सुग्रीवोऽब्रवीत् किमिदानीं त्वया लब्धं वैरिणा मां घातयित्वा आदौ च तमाह्वयस्वेत्युक्त्वा विक्रमं च दर्शयित्वा? इति

रामोऽपि तं सान्त्वयन्निव पुनरब्रवीत्–" त्वं च वाली च वाचा, वर्चसा स्वरेणातिसदृशौ। अतो नावगच्छं कः क इति। अत एव नोत्सृष्टो मया शरः। मित्रस्यैव विघातो भ्रमान्मा भूदिति। दत्ताभयस्य मित्रस्य विनाशस्तु महत्पातकम्। भवांस्तु वने शरणमस्माकं सर्वेषाम्। तस्मात्पुनर्युद्धयस्व मा शंकीः। एकेनैवेषुणा वालिनमद्य मृतं पश्य। त्वमात्मनोऽभिज्ञानार्थं किंचिच्चिह्नं कुरु। लक्ष्मण! अस्य सुग्रीवस्य कण्ठे पुष्पमालां स्थापय।" इति।

लक्ष्मणेन धारितया मालया स सुग्रीवोऽतीव शुशुभे। पुनश्च गत्वा किष्किंधां वालिनं अतिघोरस्वरेणाह्वयत्। शब्दं श्रुत्वा वाली वेगेन रोषाद्-

गृहान्निष्पपात । सुग्रीवं च दृष्ट्वाऽब्रवीत् " एष मम बद्धो मुष्टिस्तव प्राणा-नादाय एव यास्यति । " इति ।

तेन वालिना रोषादेव ताडितः सुग्रीवो रुधिरं वमन् किंचिन्मूर्च्छित इवाभवत् । सोऽपि सत्वरं संज्ञां प्राप्य सालवृक्षमुत्पाट्य वालिनं सकोपं ताडितवान् । शोणिताक्तौ तौ परस्परं तर्जयानौ अयुध्येताम् । रामस्ततो धनुः संधाय एकेनैव शरेण वालिनं गतसत्त्वं विचेतनं अकरोत् ।

तं मूर्च्छितं गतसत्त्वं दृष्ट्वा महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ बहुमान्यं वीरं सुग्रीवमुपयातौ । वाली तु रामं दृष्ट्वा परुषमब्रवीत् । " मम पराङ्मुखवधं कृत्वा त्वया किं यशः प्राप्तम् ? रामः कुलीनस्तेजस्वी दृढव्रतश्चेति सर्वे कथयन्ति । परंतु पापाचारमेवाहं त्वां पश्यामि । अहं तु तव विषये पुरे वा न करोमि किंचिदपि पापम् । नापि त्वामवजाने । कस्मात्त्वमकिल्बिषं मां कंसि ? त्वयाद्य तु धर्मं त्यक्त्वैवाऽहं रणे निहतः । किमर्थमेवमधर्माचरणं भवताचरितम् ? "

—०—

श्रीमद्भगवद्गीता

संपादक- पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

इस ' पुरुषार्थबोधिनी ' भाषाटीकामें यह बात दर्शायी गयी है कि वेद, उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रंथोंकेही सिद्धान्त गीतामें नये ढंगसे किस प्रकार कहे हैं । अतः इस प्राचीन परंपराको बताना इस ' पुरुषार्थबोधिनी ' टीकाका मुख्य उद्देश्य है, अथवा यही इसकी विशेषता है ।

गीता-के १८ अध्याय ३ भागोंमें विभाजित किये हैं और एकही जिल्दमें बांधे हैं । इसका मू. १०) रु. और डाकव्यय १!) रु. है । लेकिन मनीआर्डरसे ११) रु. भेजनेवालोंको हमारे अपने व्ययसे भेज देंगे । प्रत्येक अध्यायका मू० ।।।) और डा० व्यय ।-) है ।

श्रीमद्भगवद्गीता-समन्वय ।

' वैदिक धर्म ' के आकारके १३६ पृष्ठ, चिकना कागज, सजिल्दका मू० २) रु०, डा० व्य० ।=) डा० व्यय सहित मूल्य भेज दीजिये ।

भगवद्गीता-श्लोकार्धसूची ।

इसमें श्रीगीताके श्लोकार्धोंकी अकारादिक्रमसे आद्याक्षरसूची है और उसी क्रमसे अन्त्याक्षरसूची भी है । मूल्य केवल ।।।-) डा० व्य० ।=)

भगवद्गीता--लेखमाला ।

' गीता ' मासिकके प्रकाशित गीताविषयक लेखोंका यह संग्रह है । इसके १,२,६,७ भाग तैयार हैं, जिनका मू० ५) रु० और डा० व्यय १।) है ।

मंत्री-स्वाध्याय-मण्डल, पारडी (जि० सूरत)

संस्कृत-पाठ-माला।

(संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

भाग अठारहवां।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय-मंडल, पारडी, (जि० सूरत)

संवत् २००९, शके १८७४, सन १९५२

मूल्य ८ आने
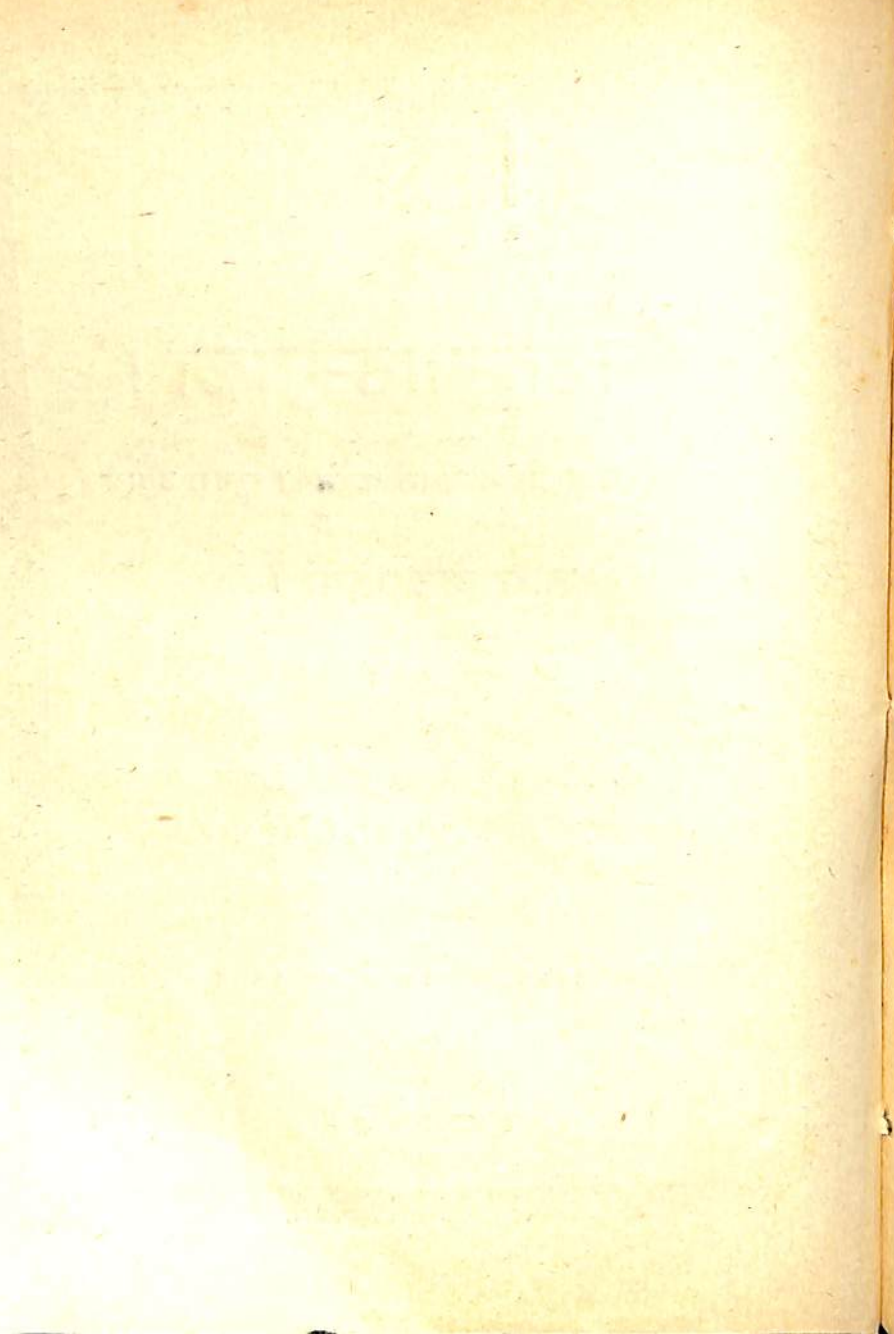
संस्कृत-पाठ-माला।

(संस्कृत-भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

भाग अठारहवां।

लेखक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय-मंडल, पारडी, (जि० सूरत)

सप्तम वार

संवत् २००८, शके १८७४, सन १९५२

शब्दसिद्धि

पाठकोंका धातुओंके साथ परिचय अच्छी प्रकार हो चुका है, उनके रूप बनाना भी वे अब भली प्रकार जानने लगे हैं। इसलिये अब धातुओंसे शब्दसिद्धि किस रीतिसे होती है इसका विचार इस भागमें संक्षेपसे करना है। यदि इस भागका अभ्यास पाठक अच्छी तरहसे करेंगे तो उनको शब्दोंकी उत्पत्ति कैसी हुई है यह समझमें आयेगा और नामोंके यौगिक अर्थ कैसे होते हैं इसका भी पता लगेगा। इसलिये आशा है कि पाठक इस भागका उत्तम अध्ययन करेंगे और उचित लाभ उठावेंगे।

स्वाध्याय-मण्डल
'आनंदाश्रम'
पारडी (जि० सूरत)

लेखक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष—स्वाध्याय-मंडल

मुद्रक और प्रकाशक—व० श्री० सातवळेकर, बी. ए.
भारत-मुद्रणालय, पारडी (जि. सूरत)

संस्कृत–पाठ–माला ।

भाग अठारहवां ।

पाठ १

धातुसे प्रत्यय लगाकर जो शब्द बनते हैं उनका विधि अब बताया जाता है। इससे पूर्वभागोंमें कुछ प्रत्यय बताये गये हैं उनका संक्षेपसे उल्लेख यहां किया जाता है—

(१) तव्य ।

संस्कृतमें ' तव्य ' प्रत्यय बहुत उपयोगी है और इसके लगनेसे अति-सुगम रीतिसे शब्द बनते हैं। देखिये 'गम्' धातुसे ' गन्तव्यं ' बनता है, ' कृ ' धातुसे ' कर्तव्यं ' बनता है। इसी प्रकार अन्यान्य धातुओंसे शब्द बनते हैं। इनका उपयोग निम्न स्थानपर दिया है—

मया गन्तव्यम् = मुझे जाना चाहिये ।
मया कर्म कर्तव्यम् = मुझे कर्म करना चाहिये ।
मया पुस्तकं पठितव्यम् = मुझे पुस्तक पढना चाहिये ।
त्वया इदानीं न क्रीडितव्यम् = तुझे अब नहीं खेलना चाहिये ।

इस प्रकार इन शब्दोंका उपयोग होता है। ये शब्द विशेषण रूपमें आगये तो इनका लिंग, वचन, विभक्ति विशेष्यके लिंगवचनके अनुरूप होती है जैसे—

एषा बाला त्वया रक्षितव्या = यह बालिका तेरेद्वारा रक्षित होने योग्य है।

एष प्रासादस्त्वया रक्षितव्यः = यह राजमहल तेरेद्वारा रक्षित होने योग्य है।

एतत्क्षेत्रं त्वया रक्षितव्यम् = यह खेत तेरेद्वारा रक्षित होने योग्य है।

पाठक इसमें देख सकते हैं कि एकही 'रक्षितव्य' शब्द विशेष्यके अनुसार किस प्रकार बदला है। ऐसे वाक्योंमें प्रायः 'अस्ति' क्रिया अध्याहृत कल्पना करकेही अर्थ देखा जाता है, जैसा—

एतत्पुस्तकं त्वया तत्र रक्षितव्यं अस्ति।

एतत्पुस्तकं त्वया तत्र रक्षितव्यम्।

इन दोनों वाक्योंका तात्पर्य एकही है। जिस समय क्रियापदके रूप करना कठिन होता है उस समय ऐसे रूपोंसे वाक्य बनाना बहुतही सुगम होता है। यह संस्कृतमें बडीही सुविधा है।

शब्द।

स्पर्ध्- स्पर्धितव्यं = स्पर्धा करनेयोग्य
विद्- वेदितव्यं = जानने ,,
मुद्- मोदितव्यं = आनंद करने ,,
खाद्- खादितव्यं = खाने ,,
भर्ज्- भर्जितव्यं = भूनने ,,
अर्च्- अर्चितव्यं = पूजा करने ,,
वाञ्छ्-वाञ्छितव्यं = इच्छा ,,
वेष्ट्- वेष्टितव्यं = वेष्टन ,,
चेष्ट्-- चेष्टितव्यं = चेष्टा ,, ,,
जल्प्-- जल्पितव्यं = बोलने ,, ,,
भाष्-- भाषितव्यं = ,, ,,

ज्ञा— ज्ञातव्यं = जानने योग्य
दा— दातव्यं = देने ,,
हन्— हन्तव्यं = हवन करने ,,
वस्— वस्तव्यं = रहने ,,
वच्— वक्तव्यं = बोलने ,,

इस प्रकार कई शब्द बन सकते हैं। पाठक पूर्वोक्त धातुओंसे शब्द बनावें और जहां इस प्रत्ययका रूप आजाये वहां वह रूप पहचानें।

संस्कृत-वाक्यानि।

तेन वीरेण किमर्थं तेन सह न स्पर्धितव्यम्? बालकैः एवदत्तं इदानी-मेव खादितव्यम्। मम भृत्येन सर्वेऽपि चणकाः अद्यैव भर्जितव्याः। ईश्वरस्त्वया नित्यशोऽर्चितव्यः। बालकैर्बालिकाभिश्च शोभनानि पुस्तकानि नित्यशः पठितव्यानि। सर्वैर्मनुष्यैः सायं समये क्रीडांगणं गत्वाऽवश्यं क्रीडितव्यम्। वीरैः पुरुषैः स्त्रीणां रक्षा कर्तव्या। इदानीं एष ग्रामो वीरैः रक्षितव्यः। त्वया पूर्वं सर्वं ज्ञातव्यं पश्चात् स्वकर्तव्यं कर्तव्यम्।

इस प्रकार पाठक अनेकानेक वाक्य बना सकते हैं। इस ' तव्य ' प्रत्ययवाले शब्दोंके लिये तृतीया विभक्तिके कर्ताकी आवश्यकता रहती है। जैसा—

मया वक्तव्यं। रामेण शत्रुर्हन्तव्यः। व्याघ्रेण पुरुषः न हन्तव्यः। अग्निना सर्वं वनं दग्धव्यम्।

इस रीतिसे अनेकानेक वाक्य बनाना सुगम है।

(२) अनीय।

दूसरा ' अनीय ' प्रत्यय उसी अर्थमें होता है। इसके बनानेकी रीति भी अति सुगम है। ' कृ ' धातुसे ' करणीय, ' ' गम् ' धातुसे ' गमनीय ' रूप होते हैं। देखिये इसके रूप—

कृ— करणीयं = करने योग्य।
स्मृ— स्मरणीयं = स्मरण करने योग्य

भृ— भरणीयं = भरणपोषण करनेयोग्य
प्रथ्— प्रथनीयं = फैलाने ,,
त्वर्— त्वरणीयं = शीघ्रता करने ,,
वृध्— वर्धनीयं = बढाने ,,
रुच्— रोचनीयं = प्रकाशने ,,
शुभ्— शोभनीयं = शोभित करने ,,
बुध्— बोधनीयं = जानने ,,
ज्वल्— ज्वलनीयं = जलाने ,,
स्पृह्— स्पृहणीयं = इच्छा करने ,,

इसी प्रकार सुगमतापूर्वक अन्य धातुओंसे अन्यान्य रूप बनते हैं। इनसे वाक्य भी पूर्ववत् बनते हैं—

संस्कृत-वाक्यानि ।

त्वया सर्वं कर्म इदानीमेव करणीयम् । यन्मया वर्धनीयं अस्ति तदहं वर्धयामि । यत्त्वया संवर्धनीयं भवेत्तत्त्वं संवर्धय । त्वया पुष्पमालाभिः शोभनीय एष मण्डपः । अग्निना त्वया ज्वलनीयमेतत्पत्रम् । त्वया भरणीय एष बालः । तेन करणीय एष यत्नः ।

इस प्रकार वाक्य बनाये जा सकते हैं।

पाठ २

रामायणम् ।

रामस्तु वालिनमब्रवीत् " धर्मं अर्थं कामं चापि लौकिकव्यवहारम-विज्ञाय बाल्यादिव कथं विगर्हसे ? इक्ष्वाकूणां राज्ञां पालितेयं भूमिः भरत-भूमिरिति कथ्यते। वयं चात्र धर्मस्य रक्षितारः। तथा चान्येऽपि बहवः पार्थिवाः सन्त्येव । वयं धर्मरक्षणार्थमेवात्र संचरामः । धर्मस्य रक्षणं, सज्जनानां पालनं, दुष्टानां निर्दलनं चास्माकं कर्म। त्वं तु धर्ममार्गे न स्थितः ।

सनातनं धर्मं त्यक्त्वा भ्रातुर्भार्यायां पापमाचरसि। यस्तु भगिनीमौरसीं भार्यां वाऽनुजस्य कामात्प्रचरेत् स नरो वध्य इति सद्भिः कथितो धर्मः। अतएव त्वं मया हतः। पापस्य नरस्याशासनाद्राजा किल्बिषमाप्नोति, तस्य शासनादेव राजा श्रेयः प्राप्नोति। अतस्त्वं वधाय एव योग्यः पापाचारो मया हतः।"

एतद्रामवचनं श्रुत्वा धर्मेऽधिगतनिश्चयो वाली रामचंद्रे दोषं न दध्यौ। उवाच तं– "यत्वं आत्थ तत्तथैव, न संशयः। न चात्मानं शोचे, न च भार्यां, नापि बान्धवान् यथा तु पुत्रं गुणज्येष्ठमङ्गदं शोचे। विधत्स्व सुग्रीवेऽङ्गदे च उत्तमां मतिम्। त्वमेवासि गोप्ता शास्ता च इति।" एवमुक्त्वा मुमोह, जीवितान्तं जगाम च।

वालिनो भार्या तु तारा तच्छ्रुत्वोद्विग्ना भूत्वा तत्रागमत्। पतिं पञ्चत्वं गतं दृष्ट्वा विललाप च। तारां दीनां तथा क्रोशन्तीं दृष्ट्वाऽङ्गदं च विलपन्तमवलोक्य सुग्रीवोऽपि विषादमगमत्। पतिमुखं समुपजिघ्रन्ती तारा बहु विललाप आह च—

'किं मही मत्तोऽपि प्रियतरा तव? यतस्तां भूमिं परिष्वज्य शेषे? नापि मां प्रतिभाषसे? विपश्चिता शूराय खलु कन्या न प्रदातव्या।' इति।

समानशोकः काकुत्स्थो रामस्तां सान्त्वयन्नाह– 'मृतः पुरुषः शोकपरितापेन युज्यते श्रेयसा न। अतः अनन्तरं कार्यं कर्तुं त्वमर्हसि। अलं शोकेन। नियतिः श्रेष्ठा, तत्प्राप्तकालं कर्म उपास्यताम्।' इति।

ततः सह सुग्रीवेणाङ्गदो रुदन् विधिवत् पितरं अग्निं ददौ, चकार च दीर्घमध्वानं प्रस्थितं पितरमपसव्यं प्रदक्षिणं सह रामेण। ततो हनुमानब्रवीत्-- 'भवत्प्रसादात्, काकुत्स्थ! पितृपैतामहं राज्यं दुष्प्राप्यमपि सुग्रीवेण प्राप्तम्। अत इदानीं त्वया समनुज्ञातः सुग्रीवो भवता सह नगरं प्रवेक्ष्यति इति।' तच्छ्रुत्वा राम उवाच-- हे हनूमन्! अहं तु पितुर्निर्देशमनुसरन् चतुर्दशवर्षपर्यन्तं ग्रामं वा नगरं वा न प्रवेक्ष्यामि। सुग्रीवश्च राज्ये अभिषिच्यतां, अङ्गदश्च यौवराज्येऽभिषिक्तो भवतु विधिवत् इति।

रामेणैवं समनुज्ञातः सुग्रीवो रम्यां किष्किंधां पुरीं प्रविवेश । साधु इति ब्रुवत्सु वानरेषु यौवराज्येऽङ्गदं चाभ्यषेचयत् ।

माल्यवतः पर्वतस्य पृष्ठे वसन् राम एकदा लक्ष्मणमब्रवीत् 'पश्यायं जलसमागमे वर्षाकालः संप्राप्तः मेघपटलैरम्बरमाच्छादितम् । नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरति । '

'पर्जन्यजलधाराभिरभिषिच्यमानाः पर्वताः नवयौवनेनैवाधिकतरं विभान्ति । अस्मिन्भाद्रपदे मासे मंत्ररतानां ब्राह्मणानां अध्ययनकालोऽयमुपस्थितः इति । '

तत ऊर्ध्वं शारदीं रजनीं ज्योत्स्नामयीं दृष्ट्वा सुग्रीवं च कामवृत्तं दृष्ट्वा रामः परमातुरो भूत्वा मुमोह । सीतां अनुचिन्तयंश्च कृशेन वदनेन लक्ष्मणमुवाच-- ' अधुना मेघाः शान्तवेगाः । वार्षिकाश्चत्वारो मासाः वर्षशतोपमाः सीतामपश्यतो मम गताः । हे लक्ष्मण ! सुग्रीवः कृपां न कुरुते । स त्वं किष्किन्धां प्रविश्य ग्राम्यसुखे सक्तं मूर्खं सुग्रीवं ब्रूहि । वीरः सत्यपरः एव भवति । हे सुग्रीव ! त्वं समये तिष्ठ । मा वालिनः मार्गेण गच्छ । इति । '

एवं समादिष्टो लक्ष्मणो रम्यां किष्किन्धां नगरीं प्रविवेश । नानापुष्पफलशोभितां च तां नगरीं ददर्श । अवार्यमाणश्च लक्ष्मणः प्रविवेश रम्यं सुग्रीवस्य गृहम् । तस्यान्तःपुरे बहुभिः स्त्रीभिः सततं प्रवर्तमानं संगीतं निशम्योद्विग्न इवाभवत् । स्थित्वा च तत्र कंचित्कालं ज्याशब्दं कृतवान् । तं ज्याशब्दं श्रुत्वा आगतं लक्ष्मणं ज्ञात्वा, तं क्रोधयुक्तं च दृष्ट्वा स तारामुवाच-- ' किं नु क्रोधकारणम् ! यत्प्रकृत्या मृदुरपि लक्ष्मण इदानीं सरोष इव दृश्यते ! अतस्त्वमेव अग्रे गत्वा तं प्रसादयेति ।

तथेत्युक्त्वा तारा सलज्जा इव लक्ष्मणसंनिधानं जगाम । स्त्रीसंनिकर्षाद्वाङ्मुखो निवृत्तक्रोधश्चाभूल्लक्ष्मणः । साऽपि तं प्रार्थयामास किमर्थं कोपः ? को न तिष्ठति भवन्निदेशे ? वानरवंशनाथस्य प्रमादमपि सोढुमर्हसि । महाबाहो लक्ष्मण ! आगच्छ अन्तः, क्षमस्व सुग्रीवमिति । ततोऽरिन्दमो लक्ष्मणोऽभ्यन्तरं प्रविवेश ।

सुग्रीवोऽपि तत्र लक्ष्मणं दृष्ट्वा व्याथितेन्द्रियो बभूव । रुमाद्वितीयं नारीमध्यगतं सुग्रीवं लक्ष्मणोऽब्रवीत्- ' राजा कृतज्ञः सत्यवादी च लोके महीयते । कृतार्थेन त्वया सीताया मार्गणे यत्नो विधेयः । तस्मिन् विषये त्वं किमपि कर्म न करोषि । तत्किं वालिनो मार्गेणैव गन्तुमिच्छसि ? न स संकुचितो मार्गः येन वाली हतो मृतश्च । अतः सुग्रीव ! समये तिष्ठ, मा वालिपथमन्वगाः' इति ।

" तच्छ्रुत्वा सुग्रीवो विमद आसीत् । उवाच च लक्ष्मणम् " सर्वमेव मयेदं ऐश्वर्यं रामप्रसादादेव प्राप्तम् । स एव स्वेनैव तेजसा रावणं वधिष्यति सीतां च प्राप्स्यति । तस्यानुयात्रां अयमहं करिष्यामि, इति । "

लक्ष्मणोऽपि प्रीत्योवाच-- " त्वया सनाथेन सनाथो मे भ्राता । क्षमस्व मे परुषोक्ति. इति । "

सुग्रीवोऽपि पार्श्वस्थं हनूमन्तमब्रवीत् । क्षिप्रं तांस्तान् वानरानानय, आनुयात्रिकं कल्पय च । श्रुत्वा तद्वचनं वायुपुत्रो हनूमान् वानरान् सर्वासु दिक्षु प्रेषयामास । वानरराजस्याज्ञां श्रुत्वा सर्वे वानरा आययुः । तेषां सर्वेषां वानराणां महती सेना बभूव । तया सेनया सह सुग्रीवो राघवं आगत्य तस्य पादयोः पपात । तं पादयोः पतितं बहुमानादुत्थाप्य राघवः सुग्रीवं परिषस्वजे ।

शब्दार्थ ।

लौकिकव्यवहारः=लोगोंमें करनेका व्यवहार
बाल्यं = मूढता
विगर्ह् = निंदा करना
संचर् = भ्रमण करना
निर्दलनं = नाश
औरसी = औरस
किल्बिषं = पाप
पञ्चत्वं गतः = मृत
विपश्चित् = ज्ञानी
नियतिः = दैव

परमातुरः = अति दुःखी
ग्राम्यसुखं = हीन सुख
अनिवार्यमाणः = जिसको प्रतिबंध न हुआ हो
अवाङ्मुख = नीचे मुख किया हुआ
सोढुं = सहन करनेयोग्य
मार्गणं = शोध, ढूंढना
विमदः = जिसको गर्व नहीं
पार्श्वस्थः = पीछे खडा
निर्देश = आज्ञा

समासाः ।

१ लौकिकव्यवहारः = लौकिकश्चासौ व्यवहारश्च ।
२ धर्मरक्षणार्थं = धर्मस्य रक्षणं धर्मरक्षणं तदर्थम् ।
३ पापाचारः = पापं आचरतीति ।
४ गुणज्येष्ठं = गुणैः ज्येष्ठं ।
५ समानशोकः = समानः शोकः यस्य ।
६ भवत्प्रसादः = भवतां प्रसादः ।
७ दुष्प्राप्यं = दुःखेन प्राप्यं ।
८ जलसमागमः = जलस्य समागमः ।
९ मेघपटलं = मेघानां पटलम् ।
१० नीलमेघाश्रिता = नीलश्चासौ मेघश्च नीलमेघः । नीलमेघे आश्रिता ।

पाठ ३

(महाभारत भीष्मपर्व अ० ५१)

सञ्जय उवाच ।

क्रौञ्चं दृष्ट्वा ततो व्यूहमभेद्यं तनयस्तव ।
रक्ष्यमाणं महाघोरं पार्थेनामिततेजसा ॥ १ ॥
आचार्यमुपसंगम्य कृपं शल्यं च पार्थिव ।
सौमदत्तिं विकर्णं च सोऽश्वत्थामानमेव च ॥ २ ॥
दुःशासनादीन्भ्रातॄंश्च सर्वानेव च भारत ।
अन्यांश्च सुबहूञ्छूरान्युद्धाय समुपागतान् ॥ ३ ॥

ततोऽभेद्यं क्रौञ्चं नाम महाघोरं व्यूहं, सैन्यव्यूहं, अमिततेजसा पार्थेन पृथापुत्रेण रक्ष्यमाणं दृष्ट्वा, तव तनयः दुर्योधनः ॥ १ ॥ हे पार्थिव ! सः आचार्यं उपसंगम्य समीपं गत्वा, कृपं शल्यं च, सौमदत्तिं विकर्णं च अश्वत्थामानं एव च ॥ २ ॥ हे भारत ! दुःशासनादीन् भ्रातॄन् च सर्वान् एव अन्यान् सुबहून् युद्धाय समुपागतान् शूरान् च ॥ ३ ॥

प्राहेदं वचनं काले हर्षयंस्तनयस्तव ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥
एकैकशः समर्था हि यूयं सर्वे महारथाः ।
पाण्डुपुत्रान् रणे हन्तुं ससैन्यान्किमु संहताः ॥ ५ ॥
अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तमिदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ ६ ॥
संस्थानाः शूरसेनाश्च वेत्रिकाः कुकरास्तथा ।
आरोचकास्त्रिगर्ताश्च मद्रका यवनास्तथा ॥ ७ ॥
शत्रुञ्जयेन सहितास्तथा दुःशासनेन च ।
विकर्णेन च वीरेण तथा नन्दोपनन्दकैः ॥ ८ ॥
चित्रसेनेन सहिताः सहिताः पारिभद्रकैः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु सहसैन्यपुरस्कृताः ॥ ९ ॥
ततो भीष्मश्च द्रोणश्च तव पुत्राश्च मारिष ।
अव्यूहन्त महाव्यूहं पाण्डूनां प्रतिबाधकम् ॥ १० ॥
भीष्मः सैन्येन महता समन्तात्परिवारितः ।
ययौ प्रकर्षन्महतीं वाहिनीं सुरराडिव ॥ ११ ॥

तव तनयः सर्वान् हर्षयन् काले इदं वचनं प्राह । 'यूयं सर्वेऽपि महारथाः नानाशस्त्रप्रहरणाः नानाशस्त्रप्रहारिणः सर्वेऽपि युद्धविशारदाः ससैन्यान् पांडुपुत्रान् हन्तुमेकैकशः समर्था हि, किमु संहताः एकीभूताः ॥ ४-५ ॥ भीष्माभिरक्षितं अस्माकं बलं अपर्याप्तं तैः व्याप्तुं अशक्यम् । भीमाभिरक्षितं एतेषां इदं बलं सैन्यं तु पर्याप्तं परितः सर्वतः व्याप्तुं शक्यम् ॥ ६ ॥ संस्थानाः, शूरसेनाश्च वेत्रिकाः कुकराः तथा शत्रुञ्जयेन तथा दुःशासनेन सहिता सर्वे वीराः, वीरेण विकर्णेन तथा नन्दोपनन्दकैश्च सहिताः, चित्रसेनेन सहिताः, पारिभद्रकैः वीरैः सहिताश्च सहसैन्यपुरस्कृताः सर्वे वीराः भीष्ममेव अभिरक्षन्तु ॥ ७-९ ॥ हे मारिष धृतराष्ट्र ! ततः भीष्मश्च द्रोणश्च तव पुत्रश्च दुर्योधनः पांडवानां प्रतिबाधकं महाव्यूहमव्यूहन्त ॥ १० ॥ महता सैन्येन समन्तात्परिवारितो भीष्मः सुरराड् इन्द्र इव महतीं वाहिनीं प्रकर्षन् ययौ ॥ ११ ॥

तमन्वयान्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
कुन्तलैश्च दशार्णैश्च मागधैश्च विशांपते ॥ १२ ॥
विदर्भैर्मेकलैश्चैव कर्णप्रावरणैरपि ।
सहिताः सर्वसैन्येन भीष्ममाहवशोभिनम् ॥ १३ ॥
गान्धाराः सिन्धुसौवीराः शिबयोऽथ वसातयः ।
शकुनिश्च स्वसैन्येन भारद्वाजमपालयत् ॥ १४ ॥
ततो दुर्योधनो राजा सहितः सर्वसोदरैः ।
अश्वातकैर्विकर्णैश्च तथा चाम्बष्ठकोसलैः ॥ १५ ॥
दरदैश्च शकैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ।
अभ्यरक्षत संहृष्टः सौबलेयस्य वाहिनीम् ॥ १६ ॥
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वामपार्श्वमपालयन् ॥ १७ ॥
सौमदत्तिः सुशर्मा च काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः ॥ १८ ॥

तं प्रतापवान् महेष्वासः भारद्वाजः अन्वयात् । हे विशांपते प्रजानां पालक ! कुन्तलैः दशार्णैः मागधैः च विदर्भैः मेकलैः च कर्णप्रावरणकैः अपि वीरैः सहिताः गान्धाराः सिन्धुसौवीराः अथ शिबयः वसातयः सर्वसैन्येन सहिताः आहवशोभिनं युद्धशोभिनं वीरं भीष्मं अपालयन् । तथा स्वसैन्येन सहितः शकुनिः भारद्वाजं द्रोणं अपालयत् ॥ १२–१४ ॥ ततः राजा दुर्योधनः सर्वसोदरैः सहितः अश्वातकैः विकर्णैश्च तथा अम्बष्ठकोसलैः दरदैः च शकैः च एव तथा क्षुद्रकमालवैः सहितः अतएव संहृष्टः आनंदितः सौबलेयस्य शकुनेः वाहिनीं सेनां अभ्यरक्षत ॥ १५–१६ ॥ हे मारिष धृतराष्ट्र भूरिश्रवाः शलः शल्यः भगदत्तः ॥ आवन्त्यौ अवन्तिदेशीयौ विन्दानुविन्दौ वामं पार्श्वमपालयन् ॥ १७ ॥ सौमदत्तिः सुशर्मा च काम्बोजश्च सुदक्षिणः श्रुतायुः च अच्युतायुः च दक्षिणं पार्श्वं आस्थिताः स्थिताः ॥ १८ ॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
महत्या सेनया सार्धं सेनापृष्ठे व्यवस्थितः ॥ १९ ॥
पृष्ठगोपास्तु तस्यासन् नानादेश्या जनेश्वराः ।
केतुमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यश्चाभिभूः ॥ २० ॥
ततस्ते तावकाः सर्वे हृष्टा युद्धाय भारत ।
दध्मुः शंखान्मुदायुक्ताः सिंहनादांस्तथोन्नदन् ॥ २१ ॥
तेषां श्रुत्वा तु हृष्टानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २२ ॥
ततः शंखाश्च भेर्यश्च पेश्यश्च विविधाः पुरैः ।
आनकाश्चाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ २३ ॥

अश्वत्थामा, कृपः च एव कृतवर्मा च सात्वतः, महत्या सेनया सार्धं सेनापृष्ठे व्यवस्थितः ॥ १९ ॥ नानादेश्याः जनेश्वराः तस्य पृष्ठगोपाः पृष्ठरक्षका आसन् । केतुमान् वसुदानः च काश्यः च अभिभूः पुत्रः तस्य पृष्ठरक्षका आसन् ॥ २० ॥ हे भारत ! ततः ते सर्वे तावकाः युद्धाय हृष्टा भूत्वा मुदा युक्ताः शंखान् दध्मुः तथा सिंहनादान् उन्नदन् ॥ २१ ॥ तेषां हृष्टानां तु शब्दं श्रुत्वा वृद्धः कुरुपितामहः भीष्मः उच्चैः सिंहनादं विनद्य, प्रतापवान् शंखं दध्मो ॥२२॥ ततः शंखाश्च भेर्यश्च विविधाः पेश्यश्च आनकाश्च परैः अभ्यहन्यन्त, स तुमुलः शब्दोऽभवत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ ।

अभेद्यं = भेदन करने अयोग्य
उपसंगम्य = पास जाकर
पर्याप्त = घेरनेयोग्य
सोदर = एक पेटसे जन्मे हुए

आवन्त्यौ = अवन्ति देशके लोग
भेरी = नगाडा
तुमुल = बडा
रक्ष्यमाणः=जिसकी रक्षा हो रही है

युद्धविशारदः = युद्धमें प्रवीण	सेनापृष्ठं = सैन्यकी पिछाडी
अपर्याप्त = घेरनेके लिये अशक्य	आनक = ढोल
वाहिनी = सेना	विनद्य = शब्द करके

समासाः ।

१ युद्धविशारदः = युद्धे विशारदः ।
२ पाण्डुपुत्रः = पाण्डोः पुत्रः ।
३ सुरराट् = सुराणां राट्, राड् राजा ।
४ सेनापृष्ठं = सेनायाः पृष्ठं ।
५ जनेश्वरः = जनानां ईश्वरः ।
६ कुरुपितामहः = कुरूणां पितामहः ।

प्रथम पाठमें दो प्रत्यय बताये; अब इस पाठमें कुछ प्रत्यय बताये जाते हैं। पाठक देखें कि कितनी सुगमतासे कैसे शब्द बनते हैं और उनका कितना उपयोग किया जाता है।

(३) य ।

यह प्रत्यय भी पूर्ववत् लगता है और पूर्ववतही इसके रूप होते हैं। जैसा—'ज्ञा' धातुसे 'ज्ञेय' 'पा' धातुसे 'पेय' इत्यादि रूप होते हैं—

शब्द ।

ज्ञेय = जानने योग्य	देय = देनेयोग्य
पेय = पीने ,,	वध्य = वध करनेयोग्य
ध्येय = ध्यान करने ,,	जेय = जय करने ,,
शस्य = प्रशंसा ,,	शाप्य = शाप देने ,,
क्रेय = मोल लेने ,,	लभ्य = प्राप्त होने ,,
जन्य = उत्पन्न होने ,,	सह्य = सहन करने ,,

संस्कृत-वाक्यानि ।

ब्रह्म एव सर्वैर्ज्ञेयं वस्तु, परंतु तदेव न केनापि ज्ञायते । शत्रुः शूरैर्वध्यो भवति । इदं दुःखं त्वया सह्यं इदानीम् । तत् कथं सह्यं भवेत् । मित्राणां मधुरैः सान्त्वपूर्वैर्वचनैर्महदपि दुःखं सह्यं भवति । स ग्रंथस्त्वया मह्यं देयः । इदानीमेव देयः । किं एतज्जलं पेयं अस्ति ? यदि तृषितोऽसि तर्हि त्वयैतज्जलं पेयं नान्यथा, यत एतत् परिशुद्धं नास्ति । त्वया तस्य कर्म शस्यम् । वध्यः पुरुषो वधकैर्वधस्थानं प्रति नीयते ।

एक " य " प्रत्यय दूसरी जातिका है उसके लगनेके समय पूर्वधातु-के स्वरका गुण होता है । इसके रूप देखिये—

धातु	प्रत्यय	रूप	अर्थ
कृ	य	कार्य	करने योग्य
वृष्	,,	वर्ष्यं	वृष्टि करने ,,
यज्	,,	याज्यं	यज्ञ ,, ,,
त्यज्	,,	त्याज्यं	त्याग ,, ,,
युज्	,,	योज्यं	संयोग ,, ,,
प्रयुज्	,,	प्रयोज्यं	प्रयोग ,, ,,
वच्	,,	वाच्यं	बोलने ,, ,,
पच्	,,	पाच्यं	पकाने ,,

इनका उपयोग वाक्योंमें बहुत होता है ।

संस्कृत-वाक्यानि ।

कदापि कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् । कर्म नैव त्याज्यं यतः तद्दोषवत् इति मनीषिणो वदन्ति । यत्कार्यं तदवश्यमेव कार्यम् । त्वया इदानीं नैवं वाच्यम् । त्वया स एवं वाच्यः । कार्यं कर्म सदैव समाचार । अकार्यं कदापि न समाचर । यद्युक्त्या योज्यं तत्त्वं संयोजय । यत्प्रयोज्यं यत्प्रयोक्तव्यं त्वया । रामस्त्वया वाच्यः । यत्त्वं अधुना तत्र न गमिष्यसीति ।

इस प्रकार अनेकानेक शब्द बनाकर पाठक उनका उपयोग करके अनेक वाक्य बना सकते हैं।

तीसरे प्रकारका एक ' य ' प्रत्यय है जिसके लगनेके समय इस प्रकार गुण नहीं होता है, जिसके रूप निम्न प्रकार बनते हैं—

स्तुत्यः = स्तुति करने योग्य
गुह्यं = गुप्त रखने ,,
भिद्यं = भेद करने ,,
कृत्यं = करने ,,
कल्प्यं = कल्पना करने ,,
जुष्यं = सेवन करने ,,
आवृत्यं = आवरने ,,
शस्यं = प्रशंसा करने ,,
शिष्यं = सिखाने ,,

इस प्रकारके शब्द भी पूर्वोक्त प्रकार वाक्योंमें प्रयुक्त होकर अनेकानेक वाक्य बनाये जा सकते हैं—

संस्कृत-वाक्यानि।

इदं गुह्यं वचनं त्वया कस्मै अपि न कथनीयम्। यत्कृत्यं त्वया कर्तव्यं तत्वं अधुनैव कुरुष्व। स्तुत्यः खल्वेष तव प्रयत्नः यं त्वं करोषि।

इस प्रकार पाठक शब्द बनाकर उनका उपयोग वाक्योंमें करें।

(४) अक

' अक ' प्रत्यय बहुतही उपयोगी है। कई शब्द इस एकही प्रत्यय से बनते हैं, इसके लगनेके समय धातुके स्वरका गुण या वृद्धि भी होती है। जैसे ' वच् = वाचकः, पच् = पाचकः इत्यादि।

शब्दार्थः ।

कारकः = करनेवाला
बोधकः = जतलानेवाला
घातकः = घात करनेवाला
गायकः = गानेवाला
चालकः = चलानेवाला
आच्छादकः = आच्छादन करनेवाला
त्रासकः = त्रास करनेवाला
नर्तकः = नाचनेवाला
पालकः = पालक
संहारकः = संहार करनेवाला
नाशकः = नाश करनेवाला

दायकः = देनेवाला
पाचकः = पचानेवाला
बाधकः = बाधा करनेवाला
याजकः = यज्ञ करनेवाला
वाचकः = वाचक
तोषकः = संतोष करनेवाला
मोदकः = आनंद देनेवाला
वर्धकः = बढानेवाला
कर्तकः = काटनेवाला
शोधकः = शोधन करनेवाला
ग्राहकः = ग्राहक

इन शब्दोंमें धातुके उपान्त्य स्वरका दीर्घ गुण या वृद्धि हुई है । परंतु कई धातुओंके स्वरका गुणादि नहीं होता और कई धातुओंमें उपान्त्यमें स्वर होनेपर भी स्वर जैसाका वैसा रहता है। इसके उदाहरण अब देखिये-

जनकः = पिता, जन्मदाता
वधकः = वधकर्ता
दमकः = दमन करनेवाला
निन्दकः = निंदा करनेवाला
अर्चकः = पूजक

हिंसकः = हिंसा करनेवाला
आरंभकः = आरंभ करनेवाला
व्रीडकः = लज्जा करनेवाला
खनकः = खोदनेवाला
जल्पकः = बडबडनेवाला

पाठक इस प्रकार अब शब्द बना सकते हैं। जो शब्द उनके पाठमें आ चुके हैं उनको प्रथम यदि वे देखेंगे तो उनको शब्द बनानेका भी पता लग जायगा। और अनेक वाक्य बनाना सुगम हो जायगा।

संस्कृत-वाक्यानि ।

तस्य परमात्मनो वाचकः प्रणवोऽस्ति । अस्य पदार्थस्य वाचकः कः शब्दोऽस्ति ? त्वं तस्य गमने किमर्थं बाधको भवसि ? यदा याजकोऽवागमिष्यति तदा यज्ञं समापयिष्यति । तस्य राज्ञो घातकास्ते मनुष्या वधस्थानं नीयन्ते राजपुरुषैः । अस्याः पाठशालायाः संचालकोऽध्यापक इदानीं कुत्र गतोऽस्ति ? अस्मिन् विशाले मंदिरे किमर्थं न कोऽपि गायको दृश्यते ? प्रजानां पालको राजा भवति तथैव गवां पालको गोप इति कथ्यते । सर्वेषां प्राणिनां नाशको मृत्युरेव नियतसमये आगच्छति प्राणिनामन्तं करोत्येव । तत्र द्वौ पाचकौ स्तः परन्तु न कोऽपि स्वाद्वन्नं पक्तुं शक्नोति । मिष्टान्नं बालकाय मोदकं भवति ।

अस्य बालकस्य जनकः कुत्र गत इदानीम् ? साधूनां निन्दकः सदैव दुर्जन एव भवति । देवतानामर्चकः साधुरेव मन्तव्यः । मनुष्याणां वा प्राणिनां वा हिंसको दुर्जनः खलु स्थानादस्माद् दूरं गच्छतु । खनको लोहमयेन दण्डेनैव भूमिं खनति ।

सूचना ।

पाठक इस प्रकार वाक्य बनावें । धातुसे शब्द बनाना और उनका वाक्योंमें उपयोग करना पाठकोंको इस प्रकार आ सकता है ।

पाठ ४

रामायणम् ।

रामं नमस्कृत्य सुग्रीव उवाच–" एतत्सर्वं मम सैन्यं त्वद्वशे वर्तते । तदिदानीमाज्ञापयितुमर्हसि किं कार्यं मया कर्तव्यमिति । उच्यतां यत्प्राप्तकालं मन्यसे । इति ।

राम उवाच–"ज्ञायतां प्रथमं सीता यदि जीवति वा न । सोऽपि देशो यस्मिन् रावणो वसति । नाहमस्मिन् कार्ये प्रभुः । न च लक्ष्मणः एतत्कर्म

कर्तुं समर्थः। त्वमेव कार्यस्यास्य हेतुः प्रभुः समर्थश्च इति। "

एवमुक्तः सुग्रीवो नीलहनुमज्जाम्बवदङ्गदादीन् प्रमुखान्वानरवीरान्दक्षिणां दिशमभिलक्ष्य प्रेषयामास संदिदेश च "यश्च मासात्पूर्वमेव निवृत्य दृष्टा सीतेति वक्ष्यति स मत्तुल्यविभवो भूत्वा भोगैः सुखं विहरिष्यति इति। " एवं आज्ञापिताः सर्वे ते वीराः स्वां स्वां दिशं संप्रतस्थिरे।

सुग्रीवेण यथोद्दिष्टं हनुमानपि दक्षिणं देशं गन्तुं प्रचक्रमे। गुहागहनदुर्गादीन्यन्वेषमाणाः सर्वे वानरा नैव सीतां ददृशुः। नापि रावणम्। पुनः पुनर्विचिन्त्य खिन्ना दीनमानसाः सर्वे समागत्यैकत्र मिलिता एकान्ते वृक्षमूले निषेदुः। मुहूर्तं समाश्वस्ताश्च पुनरेवोद्यताः। ततस्ते घोरं ददृशुः सागरं वरुणालयम्। ते सर्वे उपविश्य च विन्ध्यगिरेः पादे चिन्तामापेदिरे।

तदा युवराजोऽङ्गद उवाच। " किमकृतार्थानामस्माकं मरणमेव शरणं वा कश्चिदुपायोऽस्ति। मर्तव्यमेव नात्र संशयः। इति। " तत्र जटायुषो भ्राता संपातिर्गृध्रराजस्तत्रोपचक्रमे। सर्वांस्तान् वानरान् संप्रहर्षयन्नकथयत्– " दुरात्मना रावणेन ह्रियमाणा तरुणी मया दृष्टा। श्रूयतां तस्य निलयं रक्षसः। कुबेरस्य साक्षाद् भ्राता एव रावणः लङ्कामध्यास्ते। इतः समुद्रस्य शतयोजने संपूर्णे विश्वकर्मणा निर्मिता रम्या पुरी लंका। तस्यां राक्षसीभिर्निरुद्धा दीना सीता वसति। अस्य समुद्रस्य लंघने कश्चिदुपायो दृश्यताम्। तत्र गत्वा सीतां प्राप्य समृद्धार्था भविष्यथ इति।'

ततो दक्षिणसमुद्रस्योत्तरां दिशं प्राप्य ते वीराः संनिवेशं चक्रुः। अंगदस्तु तान् वीरान्संमान्याऽपृच्छत्– "'क इदानीं समुद्रं लंघयिष्यति ? कः सुग्रीवं सत्यसन्धं करिष्यति !' इति। "

जाम्बवांस्तु तान्सर्वान्विषण्णान्दृष्ट्वा हनूमन्तमब्रवीत्–" वीर ! किं तूष्णीं स्थितोऽसि ? न किमपि जल्पसि ? त्वमेव तेजोबलाभ्यां समोऽसि रामलक्ष्मणयोः सुग्रीवस्य च। तदेव बलं वीर्यं च यद्गरुडस्य। तव विक्रमश्च तेनैव तुल्यः। त्वं तु वीर्यवान् बुद्धिसंपन्नश्च लंघने प्लवने च समर्थः। स्वच्छन्दतस्तव मरणं। वयं तु अद्यैव गतप्राणाः, भवानेवास्मासु दाक्ष्यविक्र–

मसंपन्नः । त्वद्वीर्यं द्रष्टुकामा हीयं वानरसेना । अत उत्तिष्ठ लंघय महार्णवम् । इति ''

मारुतिस्ततो गिरिं महेन्द्रमारुरोह । आदौ मनश्च समाधाय अर्णवं लिलंघयिषुः बाहुचरणाभ्यां पर्वतं पीडयामास । ततोऽसौ रोमाणि दुधुवे अनिल इव चकम्पे । महानादं च निननाद । बाहु स्तंभयामास, आससाद च कट्यां, चरणौ च संचुकोच । दूरादाकाशे मार्गमालोकयन्हृदये प्राणान्रुरोध । पद्भ्यां दृढमवस्थानं च कृत्वोवाच- '' यथा रामप्रेरितो बाणो निर्गच्छेत्तथाऽहं लंकां गमिष्यामि '' इति ।

एवमुक्त्वा मारुतिर्वेगेन उत्पपात । यं यं स समुद्रस्य देशं जगाम तं तं प्रदेशं स्वकीयांगवेगेन प्रक्षोभयामास । एवं तं प्लवमानं सर्वेऽपि तुष्टुवुः । प्राप्तसमुद्रपारस्तु योजनानां शतस्यान्ते वनराजिं ददर्श । तथा च द्वीपमेकम् । मलयोपवनानि नदीमुखानि च । योजनशतानि तीर्त्वाप्यनिःश्वसन् कपिर्न ग्लानिमधिगच्छति । नगाग्रे स्थितां लंकां परिखाभिरलंकृतां कांचनप्राकारावृतां स ददर्श । तस्याश्च महतीं रक्षां निरीक्ष्याचिन्तयामास । '' नेयं शक्या प्रवेष्टुमनेनैव रूपेण । वायुरपि अत्र नाज्ञातश्चरेत् । तद्रजन्यामेवाहं राघवस्यार्थसिद्धये लंकामभिपतिष्यामि इति । ''

ततो रात्रौ तूर्णं उत्पत्य लंकां प्रविवेश । नन्दितो भवनाद्भवनं ददर्श । रावणस्य तु भवनमर्धयोजनविस्तीर्णं संप्राप्तः । या वैश्रवणे लक्ष्मीस्तामेव रावणगृहे स ददर्श । ततः प्रास्थितो रावणनिषेवितां शालां ददर्श स तत्र कांचनान् सोपानपश्यत् । तत्रैकतमे देशे दिव्यं शयनासनं छत्रं च ददर्श । तस्मिन् शयने सुप्तं राक्षसेन्द्रं मारुतिः प्रेक्षते स्म । तस्य पादमूलगताश्चास्य पत्नीरपि तत्रैव स ददर्श । तासां मध्ये एकान्तविन्यस्ते शयने शयानां चारुरूपिणीं मंदोदरीं ददर्श । तां दृष्ट्वा वायुसुतो हनूमान् सैव सीतेति तर्कयामास ।

अचिरादेव तां बुद्धिमवधूय मनस्येव विचारयामास '' सीता रामेण

वियुक्ता नैवालंकुर्यादात्मानम् ? नान्यं नरं सुरं वोपतिष्ठेत । ''इति विमृश्या-ऽन्वेयमिति निश्चित्य तत्र भूयश्चचार ।

एवमशेषेण हनूमान् रावणान्तःपुरमपश्यत् । परंतु जानकीं नापश्यत् । चिन्तयामास च- '' मया रावणस्य सर्वाः स्त्रियो दृष्टाः । अत्र वैदेही परि-मार्गितुमशक्या । भवतु । अन्यत्र पश्यामि । इदानीं दृष्टा वीथ्यश्च वेदि-काश्च पुष्करिण्यश्च । सर्वं चान्यद् दृष्टम् । परंतु वैदेही नैव दृश्यते । भवतु, विचिनोमि पुनः यावन्न पश्यामि । ''

इत्युक्त्वाऽशोकवनिकां जगाम । तत्र नाना वापीः, पुष्पवाटिकाश्चापश्यत् । तत्रैकं वृक्षमारुह्य ब्यचिन्तयत्- '' इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीम् । इयमत्र रम्या नलिनी, इमां नूनमेष्यति सीता यदि जीवति । '' एवं ब्रुवन् स सर्वत्र नयने प्रेरयामास ।

ततो मलिनवस्त्रां, राक्षसीभिः समावृतां, दीनां, उपवासकृशां, पुनः पुनर्निःश्वसन्तीं, अमलां, तापसीं पुत्रीं समीक्ष्य सैव सीतेति स तर्कयामास । हृष्टश्च मनसैव रामं जगाम प्रशशंस च तं प्रभुम् । तत्र मैथिलीं दृष्ट्वा मारुतिरतुलं हर्षं लेभे ।

अथ मंगलवादित्रैर्दशग्रीवः प्राबोध्यत । विबुध्य तु सः वैदेहीमेवान्वचिन्त यत् । अशोकवनिकां च प्रविशति स्म । रावणस्तु कामपराधीनः सीतासक्त-मना मन्दगतिरभवत् । दृष्ट्वैव तं सीता प्रावेपत तत्रैव रुहत्येवोपविष्टा ।

शब्दार्थ ।

त्वद्वशे = तेरे आधीन
मत्तुल्यविभवः = मेरे समान वैभववाला
जटायुः = एक पक्षी, जटायु
संनिवेशं = निवास
लिलंघयिषुः = लांघनेकी इच्छा करनेवाला
नगाग्रं = पर्वतका अग्रभाग
वीथी = गली
पुष्करिणी = जल स्थान, तालाब
पुष्पवाटिका = उद्यान
नलिनी = कमलिनीका स्थान
प्राप्तकालं = इस समयके योग्य

अशोकवनिका = अशोक नामक उद्यान
निषेदुः = बैठ गये
समाश्वस्त = विश्रामको प्राप्त
निलयं = घर
विषण्ण = खिन्न, दुःखी
ग्लानि = थकावट
अशेषेण = सब
अमला = मलरहित
वेदिका = वेदी
वापी = कूआ
विबुध्य = जागकर

समासाः।

१ वृक्षमूलं = वृक्षस्य मूलम्।
२ वरुणालयं = वरुणस्य आलयम्।
३ अकृतार्थः = कृतः अर्थः येन सः कृतार्थः। न कृतार्थः अकृतार्थः।
४ दुरात्मा = दुष्टः आत्मा यस्य सः।
५ दक्षिणसमुद्रः = दक्षिणश्चासौ समुद्रश्च।
६ बुद्धिसंपन्नः = बुद्ध्या सम्पन्नः।
७ रावणनिषेविता = रावणेन निषेविता।
८ मलिनवस्त्रा = मलिनं वस्त्रं यस्याः सा।
९ उपवासकृशा = उपवासेन कृशा।
१० सीतासक्तमनाः = सीतायां आसक्तं मनः यस्य सः।
११ रावणान्तःपुरं = रावणस्य अन्तःपुरम्।
१२ अशक्या = न शक्या।
१३ पुष्पवाटिका = पुष्पाणां वाटिका।
१४ अमला = न मलिना।
१५ कामपराधीनः = कामेन पराधीनः।

पाठ ५

(महाभारत भीष्मपर्व अ० ५१)

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
प्रदध्मतुः शंखवरौ हेमरत्नपरिष्कृतौ ॥ २४ ॥
पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ २५ ॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ २६ ॥
काशिराजाश्च शैब्यश्च शिखंडी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ २७ ॥
पांचाल्याश्च महेष्वासा द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ।
सर्वे दध्मुर्महाशंखान्सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ २८ ॥
स घोषः सुमहांस्तत्र वीरैस्तैः समुदीरितः ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयत् ॥ २९ ॥
एवमेते महाराज प्रहृष्टाः कुरुपांडवाः ।
पुनर्युद्धाय सञ्जग्मुस्तापयानाः परस्परम् ॥ ३० ॥

" ततः श्वेतैः हयैः युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ वीरौ हेमरत्नपारिष्कृतौ शंखवरौ प्रदध्मतुः ॥ २४ ॥ हृषीकेशः कृष्णः पांचजन्यं, धनंजयोऽर्जुनो देवदत्तं, भीमकर्मा वृकोदरः पौण्ड्रं महाशंखं दध्मौ ॥ २५ ॥ कुन्तीपुत्रो राजा युधिष्ठिरोऽनन्तविजयं, नकुलः सहदेवश्च सघोषमणिपुष्पकौ ॥ २६ ॥ काशिराजः च शैब्यः च महारथः शिखंडी च धृष्टद्युम्नः विराटश्च महारथः सात्यकिश्च ॥ २७ ॥ महेष्वासाः पांचाल्याः च द्रौपद्याः पञ्च आत्मजाश्च सर्वे महाशंखान् दध्मुः सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ २८ ॥ तत्र वीरैः स सुमहान् घोषः समुदीरितः स तुमुलः शब्दः नभः पृथिवीं चैव व्यनुनादयत् ॥२९॥ हे महाराज ! एवं एते कुरुपांडवाः प्रहृष्टाः परस्परं तापयानाः पुनः युद्धाय सञ्जग्मुः ॥ ३० ॥

(महाभारत भीष्मपर्व अ० ५२)

धृतराष्ट्र उवाच—

एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
कथं प्रहरतां श्रेष्ठाः संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ १ ॥

संजय उवाच—

समं व्यूढेष्वनीकेषु सन्नद्धरुचिरध्वजम् ।
अपारमिव सन्दृश्य सागरप्रतिमं बलम् ॥ २ ॥
तेषां मध्ये स्थितो राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीत्तावकान्सर्वान्युध्यध्वमिति दंशिताः ॥ ३ ॥
ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्व एवोच्छ्रितध्वजाः ॥ ४ ॥
ततो युद्धं समभवत्तुमुलं लोमहर्षणम् ।
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ ५ ॥
मुक्तास्तु रथिभिर्बाणा रुक्मपुङ्खाः सुतेजसः ।
सन्निपेतुरकुंठाग्रा नागेषु च हयेषु च ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच— एवं मामकेषु इतरेषु च अनीकेषु व्यूढेषु प्रहरतां श्रेष्ठाः कथं प्रहारं प्रचक्रिरे ॥ १ ॥ संजय उवाच- व्यूढेषु अनीकेषु समं सन्नद्धरुचिरध्वजं सागरप्रतिमं बलं अपारं संदृश्य ॥ २ ॥ हे राजन् ! तेषां मध्ये स्थितः तव पुत्रः दुर्योधनः तावकान् सर्वान् " दंशिताः युद्ध्यध्वं " इति अब्रवीत् ॥ ३ ॥ ते सर्वे एव उच्छ्रितध्वजाः मनः क्रूरं आधाय समभित्यक्त-जीविताः पाण्डवान् अभ्यवर्तन्त ॥ ४ ॥ ततः तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपं तुमुलं लोमहर्षणं युद्धं समभवत् ॥ ५ ॥ रथिभिः मुक्ताः रुक्मपुंखा सुतेजसः बाणाः अकुंठाग्राः नागेषु च हयेषु च सन्निपेतुः ॥ ६ ॥

तथा प्रवृत्ते संग्रामे धनुरुद्यम्य दंशितः ।
अभिपत्य महाबाहुर्भीष्मो भीमपराक्रमः ॥ ७ ॥
सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे ।
कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ॥ ८ ॥
एतेषु नरवीरेषु चेदिमत्स्येषु चाभिभूः ।
ववर्ष शरवर्षाणि वृद्धः कुरुपितामहः ॥ ९ ॥
अभिपद्यत ततो व्यूहस्तस्मिन्वीरसमागमे ।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान् ॥ १० ॥
सादिनो ध्वजिनश्चैव हतप्रवरवाजिनः ।
विप्रद्रुतरथानीकाः समपद्यन्त पाण्डवाः ॥ ११ ॥
अर्जुनस्तु नरव्याघ्रो दृष्ट्वा भीमं महारथम् ।
वार्ष्णेयमब्रवीत्क्रुद्धो याहि यत्र पितामहः ॥ १२ ॥
एष भीष्मः सुसंक्रुद्धो वार्ष्णेय मम वाहिनीम् ।
नाशयिष्यति सुव्यक्तं दुर्योधनहिते रतः ॥ १३ ॥
एष द्रोणः कृपः शल्यो विकर्णश्च जनार्दन ।
धार्तराष्ट्राश्च सहिता दुर्योधनपुरोगमाः ॥ १४ ॥

तथा संग्रामे प्रवृत्ते भीमपराक्रमः महाबाहुः दंशितः भीष्मः धनुरुद्यम्य अभिपत्य ॥ ७ ॥ सौभद्रे अभिमन्यौ भीमसेने च, महारथे सात्यकौ च, कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ॥ ८ ॥ एतेषु नरवीरेषु चेदिमत्स्येषु च अभिभूः कुरुवृद्धः पितामहः शरवर्षाणि ववर्ष ॥ ९ ॥ ततः तस्मिन् वीरसमागमे व्यूहः अभिपद्यत सर्वेषामेव सैन्यानां महान् व्यतिकर आसीत् ॥ १० ॥ सादिनः ध्वजिनः चैव हतप्रवरवाजिनः विप्रद्रुतरथानीकाः पांडवाः समपद्यन्त ॥ ११ ॥ नरव्याघ्रोऽर्जुनस्तु भीमं महारथं दृष्ट्वा क्रुद्धः वार्ष्णेयं कृष्णं अब्रवीत् " याहि यत्र पितामहः " ॥१२॥ हे वार्ष्णेय ! हे कृष्ण ! एष सुसंक्रुद्धो भीष्मः दुर्योधनहिते रतः सुव्यक्तं मम वाहिनीं नाशयिष्यति ॥ १३ ॥ हे जनार्दन ! एष द्रोणः कृपः शल्यः विकर्णश्च दुर्योधनपुरोगमा धार्तराष्ट्राश्च सहिताः ॥ १४ ॥

पाञ्चालान्निहनिष्यन्ति रक्षिता दृढधन्वना ।
सोऽहं भीष्मं वधिष्यामि सैन्यहेतोर्जनार्दन ॥ १५ ॥

दृढधन्वना रक्षिताः पान्चालान् निहनिष्यन्ति । हे जनार्दन ! सोऽहं सैन्यहेतोः भीष्मं वधिष्यामि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ ।

स्यन्दनः = रथ
व्यूढ = व्यूह बने हुए
मामक = मेरा
प्रहरत् = प्रहार करनेवाला
दंशितः = काटे हुए या रक्षित होकर
रुक्म = सुवर्ण
वार्ष्णेय = कृष्ण

परिष्कृत = सुशोभित
अनीक = सैन्य
इतर = दूसरा
सन्नद्ध = बद्ध
तुमुल = भयानक गर्जनासे युक्त
व्यतिषक्त = मिलजुलकर
व्यतिकरः = विरोध

शखोंके नाम—पाञ्चजन्य, देवदत्त, पौंड्र, अनंतविजय, सुघोष, मणिपुष्पक

समासाः ।

१ शंखवरः = शंखेषु वरः श्रेष्ठः ।
२ हेमरत्नपरिष्कृतः = हेमरत्नैः परिष्कृतः ।
३ भीमकर्मा = भीमं कर्म यस्य सः ।
४ अपारं = न विद्यते पारः यस्य तत् ।
५ समभित्यक्तजीविताः = समभित्यक्तानि जीवितानि यैस्ते ।
६ उच्छ्रितध्वजाः = उच्छ्रिताः ध्वजाः यैस्ते ।
७ भीमपराक्रमः = भीमः पराक्रमो यस्य सः ।
८ नरवीरः = नरेषु वीरः ।
९ दुर्योधनपुरोगमाः = दुर्योधनः पुरोगमो येषां ते ।
१० दृढधन्वा = दृढं धनुः यस्य सः ।

पाठ ६

(५) "तृ"

संस्कृतमें "तृ" प्रत्यय बडा महत्त्व रखता है। पितृ, मातृ, कर्तृ, आदि शब्द इसी प्रत्यय से होते हैं।

शब्दार्थ।

कर्तृ = करनेवाला
भर्तृ = पति
अंकितृ = चिह्न करनेवाला
अत्तृ = भक्षण करनेवाला
त्रासयितृ = त्रास देनेवाला
पातृ = रक्षा करनेवाला
पितृ = पिता
भ्रातृ = भाई
द्रष्टृ = देखनेवाला
नेतृ = नेता
हन्तृ = हनन करनेवाला
धर्तृ = धारणकर्ता
रक्षितृ = रक्षा करनेवाला
अर्चितृ = पूजा करनेवाला
तोलयितृ = तोल करनेवाला
दातृ = देनेवाला
धातृ = धारण करनेवाला
मातृ = माता
दुःखयितृ = दुःख देनेवाला
ध्मातृ = बजाकर शब्द करनेवाला
ध्यातृ = ध्यान करनेवाला
पक्तृ = पकानेवाला

संस्कृत-वाक्यानि।

विश्वस्य कर्ता भुवनस्य धर्ता ईश्वरः सर्वं जगद्व्याप्नोति। स्त्रियः भर्ता एव सर्वं भूषणम्। राजा सर्वेषां राष्ट्राणां पाता। सर्वैर्भ्रातृभिस्तत्र नागन्तव्यम्। हन्तारः सर्वेऽत्रागच्छन्तु। ध्यातारः पुरुषा एकान्तं स्थानं प्राप्य इष्टदेवताध्यानं कुर्वन्तु। पक्तृभिः अन्नं निर्मितं अतस्त्वं आगच्छ भोजनाय।

(६) " अन "

" अन ' प्रत्यय धातुके साथ लगकर बहुत रूप बनाता है, जैसा-तप्+अन = तपन। दम् + अन = दमन इ० ।

शब्दार्थ ।

नन्दनः = आनंदकारक
दूषणः = दोषी, दोष
वर्धनः = बढानेवाला
रोचनः = प्रकाशयुक्त
दमनः = दमन करनेवाला
रमणः = रममाण होनेवाला
संक्रन्दनः = कृष्ण
गमनं = गमन
जननं = = जन्म
भञ्जनं = नाश
मदनः = मदन
साधन = साधन
शोभन = शोभायुक्त
तपन = तपानेवाला
जल्पन = बडबडनेवाला
दर्पण = शीशा
दर्शन = दर्शन
कर्षण = कृषिकर्म
बंधन = बंधन
भजनं = भजन, पूजा

संस्कृत-वाक्यानि ।

ईश्वरस्य भजनं मनुष्यैरवश्यमेव प्रतिदिनं कर्तव्यम् । सूर्यस्य दर्शनं कुरु, पश्य कथं स आकाशे प्रकाशते । दर्पणे मुखं पश्यामि । त्वमपि तं दर्पणमत्रानय । येन साधनेन मनुष्यः अभ्युदयं साधयति तदेव साधनं साधय । स शोभनः पुरुष इदानीमत्रैवागच्छति । त्वमपि तथैव शोभनं आचरणं कुरु । संक्रन्दनो यथा राक्षसान् हन्ति तथैव अन्यैर्मनुष्यैः कर्तव्यम् । इदानीं तत्र गमनं कुरु । तस्य जननं कथमभूत् ?

(७) " अ "

" अ " प्रत्यय लगकर अनेक शब्द बनते हैं जैसा—

चुर् +अ= चोरः । कुप्+अ = कोपः । मद्+अ = मदः ।

शब्दार्थ।

चरः = गुप्तचर, चलनेवाला
सर्पः = सांप
देवः = देव
अघं = पाप
अंगं = शरीर
अर्कः = सूर्य
गजः = हाथी
गंधः = सुवास
मेघः = मेघ
नदः = नदी
व्रणः = व्रण
कोपः = क्रोध
अंकः = चिह्न
अध्यायः = अध्याय
क्लेशः = कष्ट
गदः = रोग
चारः = चलनेवाला
मदः = गर्व

'अ' प्रत्ययोंमें दो भेद हैं। एक प्रकारका अप्रत्यय पूर्व स्वरका गुण वृद्धि करता है और दूसरे प्रकारका नहीं करता। इसी कारण एक ही 'चर्' धातुसे 'चर और चार' ये दो शब्द बनते हैं। ये दो प्रत्यय भिन्न हैं। इतनी बात ध्यानमें धरनेसे कई स्थानोंपर गुण हुआ और कई स्थानपर नहीं हुआ इसका कारण ध्यानमें आवेगा।

संस्कृत–वाक्यानि।

चारैः पश्यन्ति राजानः। अतो राजानः चारचक्षुष इति कथ्यन्ते। अङ्गं गलितं, पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम्। अर्कः आकाशे तपति। गजाः युद्धेषु प्रयुज्यन्ते। गदा औषधिप्रयोगेन दूरीक्रीयन्ते। अयं मंत्रः यजुर्वेदस्य कस्मिन्नध्याये पठितः ? हे देव ! अत्रागच्छ मम पूजां गृहाण च।

(८) 'मान'

'मान' प्रत्यय धातुके साथ लगकर बहुत रूप बनते हैं और इसके वर्तमान काल अर्थ बतानेवाले तथा भविष्यकाल बतानेवाले शब्द बनते हैं। जैसा—"पच्+मान" = पचमानः (इस समय पकानेवाला), 'कृ+स्य

+मान = करिष्यमाणः (भविष्यमें करनेवाला ।) यह प्रत्यय लगनेके समय जिस गणका धातु हो उस गणके विकरण वर्तमानकालीन प्रत्यय-के पूर्व लगते हैं। भविष्यकालके प्रत्ययके पूर्व विकरणकी आवश्यकता नहीं होती।

शब्दार्थ।

वर्तमानवाचक	भविष्यवाचक
पचमानः = जो पका रहा है	पक्ष्यमाणः = भविष्यमें पकनेवाला
क्रियमाणः = जो किया जा रहा है	करिष्यमाणः = ,, करनेवाला
दीयमानः = जो दिया जा रहा है	दास्यमान = ,, दिया जानेवाला

इस प्रकार अनंत रूप बनते हैं। एक रूपसे दूसरे रूपकी कल्पना हो सकती है।

शब्दार्थ।

जायमानः = होनेवाला	भक्षमाणः = खानेवाला
रोचमानः = चमकनेवाला	शोभमानः = शोभनेवाला
वर्धमानः = बढनेवाला	व्यथमानः = कष्ट भोगनेवाला
वर्तमानः = रहनेवाला	ईक्षमाणः = देखनेवाला
भाषमाणः = बोलनेवाला	भासमानः = दीखनेवाला
शिक्षमाणः = सीखानेवाला	भिक्षमाणः = भीख मांगनेवाला
क्षममाणः = क्षमा करनेवाला	त्वरमाणः = शीघ्रता करनेवाला

संस्कृत-वाक्यानि।

जायमानेन तेन सिंहनाद इव शब्दः कृतः। मेधावी स पुरुषो विद्यया शोभमानो जनसमाजेऽतीव विराजते। भूमित्रो दुःखेन व्यथमानोऽपि औषधं न पिबति। भिक्षमाणा भिक्षवः आपणे दृश्यन्ते कस्माद् ग्रामात्ते आगता इति न ज्ञायन्ते। त्वं तदीक्षमाणोऽपि न पश्यसि इति चित्रमेव।

एवं त्वरमाणस्त्वं कुत्र गच्छसि ? भाषमाणा विद्वांसो सभां भूषयन्ति। शुक्लपक्षे वर्धमानश्चन्द्रमा भवति, तथा कृष्णपक्षेऽपक्षीयमाणो भवति। पूर्णिमायां चन्द्रमा अतीव रोचमानः समुदयति । दास्यमानां दक्षिणां तुभ्यमहं ददे। पचमानोऽपि स सूदः स्वयं किमपि न करोति। दीयमानं च अन्नं भिक्षुभ्यः स शोभनेन वचसा न ददाति। कटुवचोभिर्दत्तं दानं न शोभमानं भवितुमर्हति।

इस प्रकार पाठक वाक्य बनावें और शब्द भी जहां कहीं आये हों, यह इस प्रत्ययका है यह पहचानें।

पाठ ७

रामायणम्।

रावणस्तु तां सीतां तथा पीनां आतुरां कृशां निरानन्दां दृष्ट्वा मधुरैर्वाक्यैरुवाच-- "सीते ! किं मां दृष्ट्वा भयाददर्शनामिव गन्तुमिच्छसि। प्रिये ! अहं त्वां कामये। मयि विश्वसिहि। अकामां चैव त्वां न स्प्रक्ष्यामि। यौवनं तु ते संजातमतिवर्तते। यद्यद्गात्रं ते पश्यामि तस्मिंस्तस्मिन्निबध्यते मे चक्षुः। हे विलासिनि ! तव हेतोः पृथिवीमपि विजित्य प्रदास्यामि। रामस्तु जीवति वा न वा शंके। न चापि मम हस्तात्प्राप्तुमर्हति त्वाम् ? इति।"

रावणस्यैतद्वचनं श्रुत्वा तृणमन्तरतः कृत्वा सीता प्रत्युवाच। "मत्तो मनो निवर्तयस्व। स्वजन एव प्रीतिं कुरु। नैवाकार्यं मया कार्यम्। निशाचर! यथा तव तथैवान्येषामपि दाराः खलु रक्ष्याः। अकृतात्मानं अनये रतं राजानमासाद्य समृद्धान्यपि राष्ट्राणि विनश्यन्ति। यथा भास्करस्य प्रभा तथैव रामस्याहं पत्नी। तं शरणागतवत्सलं रामचन्द्रमेव प्रसाद्य मां निर्यातयितुमर्हसि। अन्यथा रामशरताडितोऽन्तं गमिष्यसि।" इति।

राक्षसेश्वरस्तूवाच— "यथा यथा स्त्रीणां प्रियं वक्ता नरो भवति तथा तथा परिभूतो भवति। यानि यानि परुषानि वाक्यानि ब्रवीषि तेषु तेषु

+मान = करिष्यमाणः (भविष्यमें करनेवाला।) यह प्रत्यय लगनेके समय जिस गणका धातु हो उस गणके विकरण वर्तमानकालीन प्रत्यय-के पूर्व लगते हैं। भविष्यकालके प्रत्ययके पूर्व विकरणकी आवश्यकता नहीं होती।

शब्दार्थ।

वर्तमानवाचक	भविष्यवाचक
पचमानः = जो पका रहा है	पक्ष्यमाणः = भविष्यमें पकनेवाला
क्रियमाणः = जो किया जा रहा है	करिष्यमाणः = ,, करनेवाला
दीयमानः = जो दिया जा रहा है	दास्यमान = ,, दिया जानेवाला

इस प्रकार अनंत रूप बनते हैं। एक रूपसे दूसरे रूपकी कल्पना हो सकती है।

शब्दार्थ।

जायमानः = होनेवाला	भक्षमाणः = खानेवाला
रोचमानः = चमकनेवाला	शोभमानः = शोभनेवाला
वर्धमानः = बढनेवाला	व्यथमानः = कष्ट भोगनेवाला
वर्तमानः = रहनेवाला	ईक्षमाणः = देखनेवाला
भाषमाणः = बोलनेवाला	भासमानः = दीखनेवाला
शिक्षमाणः = सीखनेवाला	भिक्षमाणः = भीख मांगनेवाला
क्षममाणः = क्षमा करनेवाला	त्वरमाणः = शीघ्रता करनेवाला

संस्कृत-वाक्यानि।

जायमानेन तेन सिंहनाद इव शब्दः कृतः। मेधावी स पुरुषो विद्यया शोभमानो जनसमाजेऽतीव विराजते। भूमित्रो दुःखेन व्यथमानोऽपि औषधं न पिबति। भिक्षमाणा भिक्षवः आपणे दृश्यन्ते कस्माद् ग्रामात्ते आगता इति न ज्ञायन्ते। त्वं तदीक्षमाणोऽपि न पश्यसि इति चित्रमेव।

एवं त्वरमाणस्त्वं कुत्र गच्छसि ? भाषमाणा विद्वांसो सभां भूषयन्ति । शुक्लपक्षे वर्धमानश्चन्द्रमा भवति, तथा कृष्णपक्षेऽपक्षीयमाणो भवति । पूर्णिमायां चन्द्रमा अतीव रोचमानः समुदयति । दास्यमानां दक्षिणां तुभ्यमहं ददे । पचमानोऽपि स सूदः स्वयं किमपि न करोति । दीयमानं च अन्नं भिक्षुभ्यः स शोभनेन वचसा न ददाति । कटुवचोभिर्दत्तं दानं न शोभमानं भवितुमर्हति ।

इस प्रकार पाठक वाक्य बनावें और शब्द भी जहां कहीं आये हों, यह इस प्रत्ययका है यह पहचानें ।

पाठ ७

रामायणम् ।

रावणस्तु तां सीतां तथा पीनां आतुरां कृशां निरानन्दां दृष्ट्वा मधुरै—वाक्यैरुवाच-- " सीते ! किं मां दृष्ट्वा भयाददर्शनामिव गन्तुमिच्छसि । प्रिये ! अहं त्वां कामये । मयि विश्वसिहि । अकामां चैव त्वां न स्प्रक्ष्यामि । यौवनं तु ते संजातमतिवर्तते । यद्यद्गात्रं ते पश्यामि तस्मिंस्तस्मिन्निबध्यते मे चक्षुः । हे विलासिनि ! तव हेतोः पृथिवीमपि विजित्य प्रदास्यामि । रामस्तु जीवति वा न वा शंके । न चापि मम हस्तात्प्राप्तुमर्हति त्वाम् ? इति । "

रावणस्यैतद्वचनं श्रुत्वा तृणमन्तरतः कृत्वा सीता प्रत्युवाच । " मत्तो मनो निवर्तयस्व । स्वजन एव प्रीतिं कुरु । नैवाकार्यं मया कार्यम् । निशाचर ! यथा तव तथैवान्येषामपि दाराः खलु रक्ष्याः । अकृतात्मानं अनये रतं राजानमासाद्य समृद्धान्यपि राष्ट्राणि विनश्यन्ति । यथा भास्करस्य प्रभा तथैव रामस्याहं पत्नी । तं शरणागतवत्सलं रामचन्द्रमेव प्रसाद्य मां निर्यातयितुमर्हसि । अन्यथा रामशरताडितोऽन्तं गमिष्यसि । " इति ।

राक्षसेश्वरस्तूवाच— " यथा यथा स्त्रीणां प्रियं वक्ता नरो भवति तथा तथा परिभूतो भवति । यानि यानि परुषानि वाक्यानि ब्रवीषि तेषु तेषु

ते वध एव युक्तः । द्वौ मासौ रक्षितव्यौ य एव ते मयाऽवधिः कृतः । अत
आरोह मम शयनम् । द्वाभ्यां मासाभ्यामूर्ध्वं भर्तारं मामनिच्छन्तीं त्वां
खण्डशश्छेत्स्यन्ति मे सूदाः । " इति ।

सीतोवाच– " नूनं न कोऽपि ते निःश्रेयसि स्थितोऽत्र जनो यस्त्वां न
निवारयति कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात् । त्वदन्यस्तु मां कस्त्रिषु लोकेषु मनसा-
ऽपि प्रार्थयेद्धर्मपत्नीम् ? अनार्य ! कथं मामेवं व्याहरतस्ते जिह्वाऽपि न
शीर्यति ! असंदेशाद्रामस्य, तपसोऽनुपालनाच्च केवलं, त्वां न करोमि
भस्मसात् । " इति ।

रावणस्तु जानकीं नयने विवृत्यान्ववैक्षत । भुजंग इव निःश्वसंश्चोवाच-
" अयमहं नाशयामि त्वां सूर्य इव संध्याम् । " इति ।

इत्येवं तामुक्त्वा शत्रुरावणो रावणः सर्वा राक्षसीः प्रति समादिदेश–
" यथा सीता मद्वशगा भवति तथा कुरुत । दण्डस्योद्यमनेनापि वैदेही मा
वर्जयत ।" इति

धान्यमालिनी राक्षसी ततो दशग्रीवं परिष्वज्योवाच-- " महाराज !
मया सह क्रीड, किं तवानया सीतया सह ? अकामां कामयानस्य
चोपतप्यते शरीरम् । " इति ।

श्रुत्वैतद्रावणो राक्षसीं धान्यमालिनीमुपहसन्न्यवर्तत । सर्वा एव राक्षस्य-
स्ततो सीतामभिदुद्रवुः । सा पुनस्ता राक्षसीरुवाच-- " न मानुषी राक्षसस्य
भार्या भवितुमर्हति । कामं खादत माम् । न तु वो वचः करिष्यामि ।
दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः । तमेवानुरक्ताऽस्मि ।
सूर्यवर्चसा यथा सूर्यं, अरुन्धती वसिष्ठं, रोहिणी शशिनं, लोपामुद्रा—
ऽगस्त्यं, सुकन्या च्यवनं, सावित्री वा सत्यवन्तमिति । "

राक्षस्यस्तु क्रोधमूर्च्छितास्तामधिकतरं भर्त्सयन्ति स्म । अथ हनुमान्
शिंशपाद्रुमेऽवलीनः सर्वं तदशृणोत् । विनतानाम्नी राक्षसी तदा सीताम-
ब्रवीत्- " सीते ! पर्याप्तमेतावद्भर्तुः स्नेहः प्रदर्शितः । भद्रे ! अतिकृतं
व्यसनायैवोपकल्पते । तद्रावणं भर्तारं भजस्व । नोचेत्सर्वास्त्वां भक्षयामहे । "

इति ।

अशोकवृक्षस्य शाखमालम्ब्य तदा सीता नेत्रजलस्रावैः स्तनौ स्नापयन्ती शोकस्यान्तं अधिगच्छति । विललाप च बहुविधम् । " हा राम ! हा श्वश्रूः । हा कौसल्ये ! हा सुमित्रे ! इदानीं जीवितं त्यक्तुमिच्छामि । किंतु सत्य एव जनप्रवादो यदकाले मृत्युर्दुर्लभ एवेति । धिङ् मानुष्यं, धिक्परवश्यताम्, यत्र शक्यं जीवितमपि परित्यक्तुमात्मच्छन्देन । नूनं मम शोकेन देहं त्यक्त्वा देवलोकं यातो भवेल्लक्ष्मणाग्रजः । अथवा नहि तस्य रामस्यार्थो भवेद्भार्यया मया इदानीम् । दृश्यमाने च भवति प्रीतिः नादृश्यतः सौहार्दं कुतः संभवति ? किंवा मे भाग्यक्षयः संजातः यद्धर्हेणापि रामेण त्यक्ताऽहम् ? रावणस्य वशं गता तु प्राणानेव त्यक्ष्यामि " इति ।

तच्छ्रुत्वा तत्सर्वं राक्षस्यो रावणायाख्यातुं जग्मुः ।

हनूमांस्ततश्चिन्तयामास– ' कथं नु मम वाक्यं सीता श्रृणुयान्नोद्विजेत च । ' इति संचिन्त्य मतिं चकार । अक्लिष्टकर्माणं सुबन्धुं रामं अनुकीर्तयन्नेव नोद्वेजयिष्यामि सीताम् । श्रावयिष्यामि मधुरेण वचसा सर्वं रामवृत्तान्तम् । तथा सर्वं समादधे यथा श्रद्धास्यति इति । एवं विचिन्त्य वैदेह्याः श्रवणे सर्वं रामचरितं आमूलान्तं व्याजहार, सुग्रीवसख्यं, अन्वेषणार्थं वानरप्रेषणं, अन्वेषणान्तं च ।

श्रुत्वैतज्जानकी विस्मिता । केशसंवृतं वदनमुन्नम्य सीता ऊर्ध्वं अन्ववैक्षत । वानरं भीमसत्त्वं अवलोक्य पुनर्मुमोह च ।

हनूमांस्तु द्रुमादवतीर्य प्राञ्जलिस्तां विनीतवेषो भूत्वाऽब्रवीत् " देवि ! रामस्य संदेशात्तस्यैव दूतोऽहं त्वत्सकाशमागतः । वैदेहि ! रामः कुशली । त्वां च कौशलमब्रवीत् । लक्ष्मणश्च शिरसाऽभिवादनम् । "

श्रुत्वा तत्सीताऽवदत्– " लौकिकीयं गाथा बत मां कल्याणीव प्रतिभाति । वर्षशतादपि जीवन्तं नरमानन्दोऽसंशयमेत्येव । "

ततो यथा यथा हनूमान्समीपमुपसर्पति तथा तथा तु तं रावणमेव

परिशंकते । सा तु तदाऽशोकशाखां त्यक्त्वा धरण्यामेवोपाविशत् । उवाच च " मायां प्रविष्टो यदि त्वं रावणो मायावी भूत्वा संतापमुत्पादयसि तन्न शोभनम् । स्वं रूपं परित्यज्य यः परिव्राजको जनस्थाने दृष्टः स एव हि त्वं रावणः । तद्दूरं व्रजेति । "

एवं सीताया निश्चयं बुद्ध्वा मारुतात्मज उवाच- " देवि ! नाहं तथाऽस्मि यथा मामवगच्छसि । त्वया पातितान्याभरणानि मयैवोपहृत्य रामाय दत्तानि । स तवादर्शनात् आर्ये ! परितप्यते राघवः । स रामः समित्रबांधवं हत्वा रावणं त्वां क्षिप्रमेव प्राप्स्यति । रामस्य दूतोऽहम् । रामनामाङ्कितं पश्येदसंगुलीयकम् । प्रत्ययार्थं तव दत्तं महात्मना रामेण तत् समाश्वसिहि "। इति ।

समासाः।

१ निरानंदा = आनंदेन रहिता । २ निशाचरः = निशायां चरतीति । ३ रामशरताडितः = रामस्य शरः रामशरः । तेन ताडितः । ४ राक्षसेश्वरः = राक्षसानां ईश्वरः। ५ राज्यहीनः = राज्येन हीनः । ६ क्रोधमूर्च्छिता = क्रोधेन मूर्च्छिता । विनीतवेषः = विनीतः वेषः यस्य । ८ मारुतात्मजः = मारुतस्य आत्मजः । ९ समित्रबांधवं = मित्रैः बांधवैश्च सहितम् । १० रामनामांकितं = रामनाम्ना अंकितम् ।

शब्दार्थ ।

आतुरा = दुःखी
विश्वसिहि = विश्वास कर
गात्रं = अवयव
तृणं = घास
दाराः = स्त्री
शयनं = बिछोना
संदेश = आज्ञा

अतिक्रतं = अधिक किया हुआ
अन्वेषणं = ढूंढना
उन्नम्य = ऊपर करके
कुशली = आरोग्यपूर्ण
निरानन्दा = आनंदरहित
स्प्रक्ष्यामि = स्पर्श करूंगा
शंक = संदेह करता हूं

अकार्य = अयोग्य कार्य
परुष = कठोर
सूद = रसोयिया
धान्यमालिनी = राक्षसीका नाम
व्यसनं = दुःख
प्रेषणं = भेजना
द्रुमः = वृक्ष
परिव्राजकः = संन्यासी

पाठ ८

(महाभारत भीष्मपर्व अ० ५२)

तमब्रवीद्वासुदेवो यत्तो भव धनञ्जय ।
एष त्वां प्रापयिष्यामि पितामहरथं प्रति ॥ १६ ॥
एवमुक्त्वा ततः शौरी रथं तं लोकविश्रुतम् ।
प्रापयामास भीष्मस्य रथं प्रति जनेश्वर ॥ १७ ॥
चलद्बहुपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।
समुच्छ्रितमहाभीमनदद्वानरकेतुना ॥ १८ ॥
महता मेघनादेन रथेनामिततेजसः ।
विनिघ्नन्कौरवानीकं शूरसेनांश्च पांडवः ॥ १९ ॥
प्रायाच्छरणदः शीघ्रं सुहृदां हर्षवर्धनः ।
तमापतन्तं वेगेन प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ २० ॥

तं वासुदेवोऽब्रवीत्— " धनंजय ! यत्तो भव । एष त्वां पितामहरथं प्रति प्रापयिष्यामि ॥ १६ ॥ हे जनेश्वर ! एवं उक्त्वा ततः शौरिः कृष्णः तं लोकविश्रुतं रथं भीष्मस्य रथं प्रति प्रापयामास ॥ १७ ॥ चलद्बहुपताकेन बलाकावर्णवाजिना समुच्छ्रितमहाभीमनदद्वानरकेतुना ॥ १८ ॥ महता मेघनादेन अमिततेजसा रथेन पांडवः कौरवानीकं शूरसेनान् च विनिघ्नन् ॥ १९ ॥ शरणदः, सुहृदां हर्षवर्धनः शीघ्रं प्रायात् । प्रभिन्नं वारणं इव तं वेगेन आपतन्तम् ॥ २० ॥

*

त्रासयन्तं रणे शूरान्मर्दयन्तं च सायकैः ।
सैन्धवप्रमुखैर्गुप्तः प्राच्यसौवीरकेकयैः ॥ २१ ॥
सहसा प्रत्युदीयाय भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् ।
को हि गाण्डीवधन्वानमन्यः कुरुपितामहात् ॥ २२ ॥
द्रोणवैकर्तनाभ्यां वा रथी संयातुमर्हति ।
ततो भीष्मो महाराज सर्वलोकमहारथः ॥ २३ ॥
अर्जुनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समाचिनोत् ।
द्रोणश्च पञ्चविंशत्या कृपः पञ्चाशता शरैः ॥ २४ ॥
दुर्योधनश्चतुःषष्ट्या शल्यश्च नवभिः शरैः ।
सैन्धवो नवभिश्चैव शकुनिश्चापि पञ्चभिः ॥ २५ ॥
विकर्णो दशभिर्भल्लै राजन्विव्याध पाण्डवम् ।
स तैर्विद्धो महेष्वासः समन्तान्निशितैः शरैः ॥ २६ ॥
न विव्यथे महाबाहुर्भिद्यमान इवाचलः ।
स भीष्मं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः ॥ २७ ॥
द्रोणं षष्ट्या नरव्याघ्रो विकर्णं च त्रिभिः शरैः ।
शल्यं चैव त्रिभिर्बाणै राजानं चैव पञ्चभिः ॥२८॥

रणे शूरान् त्रासयन्तं, सायकैः मर्दयन्तं च अर्जुनं सहसा शान्तनवो भीष्मः प्रत्युदीयाय ॥ को हि गांडीवधन्वानं कुरुपितामहादन्यः द्रोणवैकर्तनाभ्यां वा अन्यः रथी अर्जुनं संयातुमर्हति ॥ २१—२३ ॥ महाराज ! ततः सर्वलोकमहारथो भीष्मः नाराचानां सप्तसप्तत्या अर्जुनं समाचिनोत्। द्रोणः पञ्चविंशत्या, कृपः पञ्चाशता शरैः, सैन्धवो नवभिः चैव, शकुनिश्च अपि पञ्चभिः विकर्णो दशभिः भल्लैः हे राजन् ! पांडवं विव्याध॥ तैःसमन्तात् निशितैः शरैः विद्धः स महेष्वासः महाबाहुः अर्जुनः भिद्यमानोऽचल इव न विव्यथे। स भीष्मं पञ्चविंशत्या, कृपं च नवभिः शरैः, द्रोणं षष्ट्या, विकर्णं च त्रिभिः शरैः, शल्यं चैव त्रिभिः बाणैः, राजानं दुर्योधनं चैव पञ्चभिः ॥ २१-२८ ॥

प्रत्यविध्यदमेयात्मा किरीटी भरतर्षभ ।
तं सात्यकिर्विराटश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २९ ॥
द्रौपदेयाभिमन्युश्च परिवव्रुर्धनञ्जयम् ।
ततो द्रोणं महेष्वासं गाङ्गेयस्य प्रिये रतम् ॥ ३० ॥
अभ्यवर्तत पांचाल्यः संयुक्तः सह सोमकैः ।
भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो राजन्विव्याध पाण्डवम् ॥ ३१ ॥
अशीत्या निशितैर्बाणैस्ततोऽक्रोशन्त तावकाः ।
तेषां तु निनदं श्रुत्वा सहितानां प्रहृष्टवत् ॥ ३२ ॥
प्रविवेश ततो मध्यं नरसिंहः प्रतापवान् ।
तेषां महारथानां स मध्यं प्राप्य धनंजयः ॥ ३३ ॥
चिक्रीड धनुषा राजँल्लक्षं कृत्वा महारथान् ।
ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममाह जनेश्वरः ॥ ३४ ॥
पीडयमानं स्वकं सैन्यं दृष्ट्वा पार्थेन संयुगे ।
एष पाण्डुसुतस्तात कृष्णेन सहितो बली ॥ ३५ ॥
यततां सर्वसैन्यानां मूलं नः परिकृन्तति ।
त्वयि जीवति गांगेय द्रोणे च रथिनां वरे ॥ ३६ ॥

हे भरतर्षभ ! अमेयात्मा नरव्याघ्रः किरीटी अर्जुनः प्रत्यविध्यत् ॥ सात्यकिः विराटः च पार्षतः धृष्टद्युम्नः च द्रौपदेयाभिमन्युः च धनंजयं परिवव्रुः ॥ ततो महेष्वासं द्रोणं गांगेयस्य भीष्मस्य प्रिये रतं पाञ्चाल्यः सोमकैः सह संयुक्तः अभ्यवर्तत ॥ हे राजन् ! रथिनां श्रेष्ठो भीष्मः तु निशितैः अशीत्या बाणैः पाण्डवं अर्जुनं विव्याध । ततः तावकाः अक्रोशन्त । तेषां सहितानां तु निनदं शब्दं श्रुत्वा प्रहृष्टवत् प्रतापवान् मध्यं प्रविवेश ॥ स धनंजयः तेषां महारथानां मध्यं प्राप्य, हे राजन् ! महारथान् लक्ष्यं कृत्वा धनुषा चिक्रीड । ततो राजा दुर्योधनः जनेश्वरः पार्थेन संयुगे युद्धे स्वकं सैन्यं पीड्यमानं दृष्ट्वा भीष्मं आह । हे तात ! एष पांडुसुतः कृष्णेन सहितः बली सर्वसैन्यानां यततां हे गांगेय ! त्वयि जीवति, रथिनां वरे द्रोणे च जीवति नः परिकृन्तति ॥ २९-३६ ॥

त्वत्कृते चैव कर्णोऽपि न्यस्तशस्त्रो विशांपते ।
न युध्यति रणे पार्थं हितकामः सदा मम ॥ ३७ ॥
स तथा कुरु गांगेय यथा हन्येत फाल्गुनः ।
एवमुक्तो ततो राजन्पिता देवव्रतस्तव ॥ ३८ ॥
धिक्क्षात्रं धर्ममित्युक्त्वा प्रायात्पार्थ रथं प्रति ।
उभौ श्वेतहयौ राजन्संसक्तौ प्रेक्ष्य पार्थिवाः ॥ ३९ ॥
सिंहनादान्भृशं चक्रुः शंखान्दध्मुश्च मारिष ॥ ४० ॥

विशांपते ! त्वत्कृते चैव कर्णः अपि न्यस्तशस्त्रः सदा मम हितकामः रणे पार्थं न युध्यति । हे गांगेय भीष्म ! स त्वं तथा कुरु यथा फाल्गुनः हन्यते । हे राजन् ! ततो तव पिता देवव्रतः एवमुक्तः "धिक् क्षात्रं धर्मं" इत्युक्त्वा पार्थरथं प्रति प्रायात् ॥ हे राजन् ! पार्थिवाः उभौ श्वेतहयौ संसक्तौ प्रेक्ष्य भृशं सिंहनादान् चक्रुः-- हे मारिष ! शंखान् दध्मुः ॥ ३७—४० ॥

शब्दार्थ ।

यत्तः = तैयार
बलाका = सारस पक्षी
सैन्धव = सिंधुदेशका वीर
वैकर्तन = कर्ण
न्यस्तशस्त्रः = जिसने शस्त्र रखा है
धिक् = धिक्कार

शौरिः = कृष्ण
वानरकेतुः = अर्जुनका रथ-जिस पर वानर चिह्नका ध्वज था
निशित = तीक्ष्ण
फाल्गुन = अर्जुन
संसक्त = मिला हुआ

समासाः ।

१ पितामहरथः = पितामहस्य रथः । २ लोकविश्रुतः = लोके विश्रुतः। ३ जनेश्वरः = जनानां ईश्वरः । ४ हर्षवर्धनः = हर्षं वर्धयतीति ।

—:०:—

पाठ ९

(९) " इष्णु "

" इष्णु " प्रत्यय भी बडा उपयोगी है । इसके प्रयोग वारंवार आते हैं । " अलंकरिष्णु " (अलंकार धारण करनेका इच्छुक) इस प्रकारके शब्द इस प्रत्ययसे बनते हैं । इस प्रत्ययका " इष " इच्छार्थक धातु मानकर " नु " प्रत्यय माननेसे भी ठीक अर्थका बोध हो सकता है ।

शब्दार्थ ।

अलंकरिष्णु = अलंकारोंकी इच्छा करनेवाला	रोचिष्णु = प्रकाशमान
	प्रभविष्णु = प्रभावित
वर्धिष्णु = बढनेवाला	संचरिष्णु = संचार करनेवाला
सहिष्णु = सहन करनेवाला	पारयिष्णु = पार होनेवाला

संस्कृत--वाक्यानि ।

प्रभविष्णुना विष्णुना राक्षसान् संहृत्य देवराज्यं संवर्धितम् । वर्धिष्णोरर्जुनस्य वीरस्य भारतीये युद्धे विशेष एव प्रभावः प्रकाशितः। अलंकरिष्णुना बालकेन बहवोऽलंकाराः स्वशरीरस्योपरि धृताः । संचरिष्णुना आचार्येण सर्वस्मिन्नेव राष्ट्रेऽस्मिन्वर्षे संचारः कृतः । नदीं पारयिष्णुना सैन्येन बह्वो नौका गृहीत्वा परतीरगमनाय महान्यत्नः कृतः, परंतु महता जलवेगेन बाधितास्ते पारगमनाय असमर्था भूत्वैव प्रतिनिवृत्ताः ।

(१०) " स्नु "

इसके रूप निम्न प्रकार होते हैं—

जिष्णु = जयशील	भूष्णु = उन्नतिका इच्छुक
स्थास्नु = ठहरनेवाला	ग्लास्नु = थका हुआ

(११) " नु "

' नु ' प्रत्यय लगकर निम्न-लिखित प्रकार अनेक शब्द बनते हैं—

गृध्नु = लोभी
त्रस्नु = भीरु
धृष्णु = धैर्यशाली
क्षिप्नु = फेंकनेवाला

(१२) " त "

भूत अर्थ बतानेवाला ' त ' प्रत्यय धातुके साथ लगकर बहुतसे शब्द बनते हैं—

भूत = बना हुआ
कृत = किया हुआ
श्रुत = सुना ,,
जित = विजित
मुदित = आनंदित
ज्ञात = जाना हुआ
जात = जन्मा ,,
स्तुत = प्रशंसित
स्नात = स्नान किया हुआ
त्रात = रक्षित
त्यक्त = छोडा हुआ
हृष्ट = हर्षित
पीत = पिया हुआ
अधीत = पढा ,,

पूत = पवित्र हुआ
स्थित = ठहरा ,,
गत = गया ,,
नीत = लिया ,,
प्रापित = पहुंचाया ,,
आकृष्ट = आकर्षित
गीत = गाया हुआ
दग्ध = जला ,,
यात = गया ,,
क्षुब्ध = क्षोभित ,,
दत्त = दिया
पठित = पढाया
आनीत = लाया ,,
उक्त = कहा ,,

प्रायः प्रत्येक धातुका भूतार्थक शब्द इस प्रकार बनता है और भूत क्रियाके स्थानपर प्रयुक्त भी होता है। क्रियाके स्थानपर इन शब्दोंके प्रयोग होते हैं, इसलिये इनका विशेष महत्व है।

संस्कृत-वाक्यानि ।

यः पाठः भवद्भिः पाठितः स मयाऽधीतः । यत्त्वया उक्तं तन्मया श्रुतम् । यत्तेनानीतं तन्मया गृहीतं स्वगृहे स्थापितं च । यथा त्वया जलं पीतं तथा अहं पातुं न शक्नोमि । यदि त्वं तेन गीतेन हृष्टोऽसि तर्हि तद्गीतं पुनः शृणु । अत्रैव स्थितः सन् त्वं सर्वं नाटकं पश्यसि । यदि तेन पुस्तकं अद्य नीतं तर्हि शोभनं जातम् । सर्वाणि वस्त्राणि दग्धानि न सन्ति । गृध्नुना यत्प्रशंसितं तन्न साधु । धृष्णुना वीरेण यत्कृतं तदेव साधु । जिष्णुना विजयेन युद्धं कृतम् । भूष्णुना विशेषः प्रयत्नः कर्तव्यः येन तस्याभ्युदयो भवेत् ।

(१३) " न "

' न ' प्रत्यय भी बडा उपयोगी है, जिससे अनेक शब्द बनते हैं—

भिन्न = विभिन्न
म्लान = फीका बना हुआ
ग्लान = थका हुआ
छिन्न = छिन्नभिन्न
भग्न = टूटा हुआ
शीर्ण = सूखकर गिरा हुआ

(१४) " तवत् "

धातुके साथ यह प्रत्यय लगकर बहुतसे शब्द बनते हैं, देखिये—

स्नातवत् = स्नान किया
ज्ञातवत् = जान लिया
उक्तवत् = कहा
जितवत् = जय पाया
बोधितवत् = जाना
हृतवत् = हरण किया
कृतवत् = किया
आश्रितवत् = आश्रय किया
श्रुतवत् = सुना
भक्षितवत् = खाया
खनितवत् = खोदा
मर्षितवत् = सहन किया

संस्कृत-वाक्यानि ।

किं स तस्मिन् नदे स्नातवान् ? यदा त्वं तत्कर्म कृतवान् तदा तेन किमुक्तम् ? कदा त्वं एवं श्रुतवान् ? कः मोदकान् अद्य भक्षितवान् ?

इस प्रकार इनके प्रयोग होते हैं। पाठक इन शब्दोंको जानकर कमसे कम उनको पहचाननेका तो अवश्य अभ्यास करें ।

पाठ १०

रामायणम्।

स्वयं जानकी भर्तुः करविभूषितं अंगुलीयकं संप्राप्य मुदिताऽभवत्। वदनं च तस्या हर्षयुक्तं बभूव। भर्तुः संदेशहर्षिता सीता हनुमन्तं प्रियं कृत्वा प्रशशंस। 'विक्रान्तस्त्वम्। एकेनैव येन इदं राक्षसस्थानं प्रधर्षितम्। शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयो गोष्पदीकृतस्त्वया। न हि त्वां प्राकृतं मन्ये। न ह्यपरीक्षितं प्रेषयिष्यति रामचन्द्रः। कच्चिन्न व्यथते रामः? कच्चिन्न मयि विवासाद्विगतस्नेहः? कच्चिन्नान्यमनाः? कच्चिद् द्रक्ष्यामि रावणं हतं रामेण?' इति।

मारुतिस्तु प्राञ्जलिः प्रत्युवाच— 'न त्वामिहस्थां जानीते रामः। श्रुत्वैव तु काकुत्स्थो हतराक्षसां लंका करिष्यति। अनिद्रो हि सततं रामः। सुप्तोऽपि सीतेति व्याहरन्प्रतिबुध्यते।' इति।

सीता त्वेतच्छ्रुत्वोवाच- 'अमृतं विषसंपृक्तं भाषितं त्वया। यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायण इति। ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे कृतान्तो हि पुरुषं रज्ज्वेव बद्ध्वा परिकर्षति विधिर्नूनमसंहार्यः। कदा रावणं सूदयित्वा मां द्रक्ष्यति पतिः? वाच्यस्त्वया स संत्वरस्वेति। एतत्संवत्सरान्तं हि मम जीवितम्। द्वावेव मासौ शेषौ। रावणस्तु प्रयत्नेन भ्रात्रा बिभीषणेनानुनीतः मां धर्षितुं न प्रयतति। बिभीषणसुतया कलयैतदाख्यातम्।' इति।

मारुतिरुवाच— 'सीते! अद्यैव त्वां राक्षसान्मोचयामि। उपारोह मम पृष्ठम्। संतरिष्यामि त्वया सागरम्।' इति।

सा प्रत्यब्रवीत्- 'अयुक्तं त्वया सह मम गमनम्। भर्तृभक्ता चान्यस्य गात्रमपि स्वेच्छया स्प्रष्टुं नेच्छेयम्। रावणस्य हननमेव रामाय योग्यम्।' इति।

मारुतिस्ततो रामसंज्ञार्थमभिज्ञानमयाचत। चूडामणिं तस्मै दत्त्वोवाच सीता-'अभिज्ञातोऽयं रामस्य।' इति।

सोऽपि वैदेहीमभिवाद्य गमनायोपचक्रमे। चिन्तयामास च-'स एवार्थ-

साधने समर्थो योऽर्थं बहुधा वेद । इदं नृशंसस्य नन्दनोपमं वनम् विध्वंसयामि तावत् । भग्नेऽस्मिन्वने कोपं करिष्यति रावणः ' इति ।

मारुतवच्च ततो द्रुमान्क्षेप्तुमारभत मारुतिः । बभञ्ज च प्रमदावनम् । रूपं चात्मनः सुमहत्कृत्वाऽदर्शयद्राक्षसीनां विगतनिद्राणां पुरतः । सर्वास्तत्रत्या राक्षसी रावणाय न्यवेदिषुः सीतासंवादवृत्तं चिताग्निरिव रावणो जज्वाल । दीप्ताभ्यां तस्त नेत्राभ्यां सार्चिषोऽश्रुबिंदवः प्रापतन् । किंकरान्नाम च राक्षसान् हनूमतो निग्रहार्थं व्यादिदेश । ते सर्वे सैनिकाः कूटमुद्गरपाणयो भूत्वा ययुः । हनुमानपि लाङ्गूलं क्षितावाविध्य महाध्वनिं निननाद । तोरणं समवस्थितस्तदाश्रयं भीममायसं परिघमासाद्य किंकरराक्षसाञ्जघान । कतिचिद् दूता रावणाय न्यवेदयन् । तदा रावणेन सप्तार्चिवर्चसो मन्त्रिणः सप्त सुताः प्रेरिताः । तेऽपि हनूमता व्यापादिताः । तदा सर्वं सैन्यं दशदिशोऽगमत् ।

तदा रावणसूनुरिन्द्रजित्स्वयं तत्र संग्रामे प्राप्तः । हनूमानपि व्यवर्धत । इन्द्रजिदवधातस्त्ववित्तमवध्यमिति ज्ञात्वाऽस्त्रेण तिजग्राह कालमुष्टिभिर्हन्यमानश्च मारुतिः समीपं राक्षसेन्द्रस्य प्रापितः । रावणस्तु चिन्तयामास । किमेष भगवान् नन्दी, प्रहसिते मया येन पुरा शप्तोऽस्मि कैलासे उत बाणो वाऽसुरः । इति । अव्यग्रस्तु वानर श्रेष्ठोऽर्थवद्वाक्यमुवाच— ' हे राक्षसेश ! सुग्रीवसंदेशादत्र प्राप्तोऽहम् । वानरेशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् । भवान् कृतद्वारो दृष्टधर्मार्थश्च, परदारान्नोपरोद्धुमर्हति । त्रैलोक्ये को राघवस्य व्यलीकं कृत्वा सुखमाप्नुयात् । रामसुग्रीवसख्यमात्मनो हितं बुध्यस्व' इति ।

क्रुद्धो रावणस्तस्य वधमाज्ञापयामास । बिभीषणस्तु नानुमेने वधमस्य विशेषतो दूतस्य । रावणः पुनरादिदेश–' अस्य लांगूलं जीर्णैः कार्पासपटैः संवेष्ट्य तैलेन परिषिच्य तदग्निना संयोजनीयमिति । ' राक्षसास्तथा चक्रुः । मारुतिस्तु सघोषं तेनाग्निना लंकां दाहयामास ।

ततो मारुतिः पाशांश्छित्वोत्पपात वेगेन । परिघेण पुनः पुरद्वारस्य गृहरक्षिणः सूदयामास । सविद्युदिव मेघः प्रदीप्तलांगलो हनूमान् लंकाभवनेषु विचचार । बिभीषणस्य गृहं वर्जयित्वा सर्वान्गृहान् ददाह कपिः । वानररूपेणैषोऽग्निरेवायाति इति क्रन्दन्त्यः स्त्रियो गृहेभ्यो बहिर्निष्पेतुः । यथा

रुद्रेण त्रिपुरं तथा तेन लंकापुरं प्रदग्धं एवं वनं भङ्क्त्वा, लङ्कां दग्ध्वा रक्षांसि हत्वा, सर्वान्संपीड्य च वानरश्रेष्ठो हनूमान् लांगूलाग्निं समुद्रे निर्वापयामास ।

मारुतिस्तु तत ऊर्ध्वमरिष्टगिरिमारुरोह । मारुत इव मारुतात्मज उत्तरां दिशं समुद्रस्य प्रपेदे । तस्य वेगं निशम्य इतस्ततः सर्वे वानरा हनूमन्तं समुत्पेतुः । हृष्टमानसास्तं परिवार्योपतस्थिरे च । हनूमांस्तु जाम्बवत्प्रमुखान् गुरून् अंगदं चावन्दत । संक्षेपेण सर्वं वृत्तान्तं तेभ्यो न्यवेदयत् । सर्वे ततः प्रियाख्यानोन्मुखाः महेन्द्राग्रात् पुप्लुवुः । सर्वे ते वीरा रावणनिदलने निश्चितमतयो युद्धाभिनन्दिनश्च कृतकार्यत्वात् संतुष्टचेतसो भूत्वा, आगत्य प्रस्रवणगिरिं, प्रणम्य रामं ससुग्रीवं, प्रवृत्तिं सीतायाः प्रोचुर्युवराजपुरस्कृताः । रामाय मणिं दत्वा हनूमान्प्राञ्जलिरब्रवीत् ' राम! त्वयि सर्वं मनोरथं संन्यस्य सीता जीवति । अधःशायिनी, विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे मर्तव्यकृतनिश्चया सा । शनैर्मया विश्वासिता । सा तु सीता संदिदेश– मासं जीवितं धारयिष्यामि । ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयम् ' इति ।

तं मणिं हृदये कृत्वा रामो रुरोद । स च सुग्रीवमब्रवीत् ' यथैव वत्सस्य स्नेहाद् वत्सला धेनुस्तथैव ममापि हृदयं मणिश्रेष्ठस्यास्य दर्शनात् स्रवति । इदं मणिरत्नं मम श्वशुरेण वैदेह्या विवाहकाले मूर्धनि बद्धम् । हा सीते ! अहं क्षणमपि जीवितुं न शक्नोमि सीतां विहाय । कथं तिष्ठसि सीते घोराणां राक्षसीनां मध्ये ' इति ।

हनूमन्तं च रामः प्रशशंस ! चिन्तयामास च ' किमस्य प्रियं कुर्यां प्रियाख्यातुः । एष परिष्वगस्तु महात्मनः सर्वस्वभूतो मे दत्तः ' इति । ततस्तं हनूमन्तं रामः परिषस्वजे।

रामः किंचिद्ध्यात्वा सुग्रीवं पुनरुवाच- सागरमासाद्य नष्टं पुनर्मे मनः । कथं नाम वानरा दुष्पारं पारं गमिष्यन्ति ? ' इति ।

सुग्रीव उवाच— अलमिदानीं शोकेन, क्रोधमालम्ब, निश्चेष्टाः क्षत्रिया मन्दाः, अतः सर्वसैन्यसमवेता अद्यैव अभिप्रयामः । सागरं प्राप्य, तस्य लंघनायोपायं च करिष्यामः ' इति ।

पाठ ११

भगवद्गीता--पाठः ।

संजयः उवाच-तं तथा कृपया आविष्टं, अश्रुभिः संपूरितनेत्रं शोकाभिभूतं अर्जुनं मधुसूदनः इदं वाक्यं उवाच ।

श्रीभगवान् उवाच-हे अर्जुन ! अस्मिन् विषमे काले त्वां इदं मालिन्यं कुतः समुपस्थितम् ? एतत् अनार्य-सेवितं अ-स्वर्ग्य-करं अकीर्ति-करं च अस्ति । हे पार्थ ! क्लैब्यं मा स्म गमः । त्वयि एतत् न उपयुज्यते । एतत् क्षुद्रं हृदयस्य दौर्बल्यं त्यक्त्वा युद्धाय उत्तिष्ठ ।

अर्जुनः उवाच- हे श्रीकृष्ण ! युद्धे पितामहं भीष्मं कथं प्रतियोत्स्यामि ? गुरुं द्रोणाचार्यं च कथं प्रतियोत्स्यामि ? एतौ हि पूजायै योग्यौ । महानुभावान् एतान् अ-हत्वा अस्मिन् लोके भैक्ष्यं अपि भोक्तुं श्रेयः । अर्थकामान् गुरून् हत्वा तु रुधिरमयान् राज्यादीन् भोगान् भुञ्जीय । यत् वा जयेम, यदि वा न जयेयुः एतत् वयं न विद्मः । कतरत् गरीयः एतदपि न जानीमः । यान् हत्वा वयं जीवितुं न इच्छामः ते एव ऐते धृतराष्ट्रस्यः पुत्रा अत्र युद्धाय उपस्थिताः ।

हे मधुसूदन! मूढचेताः अहं त्वां पृच्छामि । यत् श्रेयः स्यात्, तत् निश्चितं मे ब्रूहि अहं ते शिष्यः । त्वां शरणं आगतं मां शिक्षय । भूमौ शत्रुरहितं समृद्धं च राज्यं, सुराणां अपि च आधिपत्यं लब्ध्वा अपि, मम शोकं यत् अपनुद्यात् तत् अहं इदानीं न पश्यामि ।

संजयः उवाच— हृषीकेशं एवं उक्त्वा, अर्जुनः ' न योत्स्ये ' इति उक्त्वा तूष्णीं बभूव । हृषीकेशः प्रहसन् इव, उभयोः सेनयोर्मध्ये विषीदन्तं तं अर्जुनं इदं वचः उवाच ॥

श्रीभगवान् उवाच— हे अर्जुन ! त्वं अ-शोच्यान् शोचितवान् असि, बहून् बुद्धिवादान् च भाषसे । पण्डिताः गतासून् अगतासून् च न अनुशो-

चन्ति। अस्मिन् देहे यथा कौमारं यौवनं जरा, तथा देहान्तर-प्राप्ति भवति। ज्ञानी तत्र न मुह्यति। येन इदं सर्वं विस्तारितं तत् तत्वं अविनाशी अस्ति इति विद्धि। अस्य अव्ययस्य विनाशं कर्तुं कश्चित् न अर्हति।

नित्यस्त देहिनः इमे देहाः नश्वराः। एषः आत्मा अजः, नित्यः, शाश्वतः, पुराणः अस्ति। हन्यमाने शरीरे अपि एष आत्मा न हन्यते। एनं आत्मानं अजं अव्ययं नित्यं अविनाशिनं जानीहि। यथा जीर्णानि वस्त्राणि त्यक्त्वा, नरः नवानि वस्त्राणि गृह्णाति, तथा देहधारी आत्मा जीर्णानि शरीराणि विहाय नवीनानि शरीराणि स्वीकरोति। एनं आत्मानं शस्त्राणि न छिन्दन्ति। अग्निः एनं न दहति। जलं न एनं क्लेदयति। वायुः एनं न शोषयति। अयं आत्मा अच्छेद्यः अ-दाह्यः, अक्लेद्यः, अशोष्यः च अस्ति। अयं आत्मा नित्यः सर्वगतः अचलः सनातनः च अस्ति। अयं अव्यक्तः अचिन्त्यः, अविकार्यः च उच्यते। एनं एवं विदित्वा त्वं अनुशोचितुं न अर्हसि। जातस्य हि मृत्युः ध्रुवम्। मृतस्य च जन्म ध्रुवम्।

स्वधर्मं अपि अवेक्ष्य त्वं एवं विकम्पितुं न अर्हसि। धर्म्यात् युद्धात् अन्यत् किंचित् अपि क्षत्रियस्य श्रेयः न विद्यते। ईदृशं युद्धं उद्घाटितं स्वर्गद्वारं अस्ति। सुखिनः क्षत्रियाः ईदृशं युद्धं लभन्ते। अथ चेत् त्वं इमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि, तर्हि स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापं एव अवाप्स्यसि। सर्वे मानवाः ते अव्ययां अकीर्तिं कथयिष्यन्ति। संभावितस्य तव अकीर्तिः मरणात् अतिरिच्यते। महारथाः त्वां भयात् युद्धात् निवृत्तं मंस्यन्ते। इदानीं येषां त्वं बहुमतः, तेषां एव त्वं लाघवं यास्यति। तव शत्रवः बहून् अवाच्यान् निन्दायुक्तान् प्रवादान् सर्वदा कथयिष्यन्ति। तव सामर्थ्यं निंदयिष्यन्ति। ततः अधिकं दुःखदायकं किं भवेत्? यदि त्वं अस्मिन् युद्धे हतः तर्हि स्वर्गं प्राप्स्यसि। जित्वा वा राज्यं भोक्ष्यसे। हे कुन्तीपुत्र! त्वं युद्धाय कृतनिश्चयः उत्तिष्ठ! सुखदुःखे लाभालाभौ जयाजयौ समे कृत्वा युद्धाय युज्यस्व। एवं पापं न अवाप्स्यसि।

इह अनुष्ठितस्य अस्य योगधर्मस्य नाशो नास्ति । अस्मिन् अनुष्ठाने विघ्नं अपि न भवति। अस्य योगधर्मस्य स्वल्पमपि अनुष्ठानं महतः भयात् त्रायते। अत्र एका एव व्यवसायात्मिका निश्चयात्मिका बुद्धिः आवश्यकी अस्ति । अव्यवसायिनां बुद्धयः अनन्ताः बहुशाखाः च वर्तन्ते ।

हे अर्जुन ! त्वं निर्द्वन्द्वः नित्यसत्वस्थः आत्मवान् च भव। ते अधिकारः कर्मणि एव अस्ति। ते अधिकारः फलेषु कदाचन नास्ति। कर्मफलस्य हेतुना त्वं कर्माणि मा कुरु। तव अकर्मणि संगः मा भवतु । योगेन कर्माणि कुरु। हे धनंजय ! फलस्य संगं त्यक्त्वा कर्म कुरु । सिध्यसिद्ध्योः समः भूत्वा, यत् समत्वं भवति, तत् समत्वं एव योगः इति उच्यते।

बुद्धियुक्तः समत्वं प्राप्तः उभे सुकृत-दुष्कृते जहाति। तस्मात् योगाय समत्वरूपाय युज्यस्व कर्मसु कौशलं एव योगः भवति।

हे पार्थ ! यदा मनोगतान् सर्वान् कामान् त्यजति यदा च आत्मनि एव आत्मना तुष्टः भवति, तदा सः स्थितप्रज्ञः इति उच्यते । दुःखेषु प्राप्तेषु निर्विकारचित्तः सुखेषु विगतेच्छः, त्यक्त-राग-भय--क्रोधः यः सः स्थितधीः उच्यते। यः सर्वत्र अनभि--स्नेहः तत् तत् शुभाशुभं फलं प्राप्य, शुभं न अभिनंदति, अशुभं च न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता भवति। स च स्थित-प्रज्ञः इति उच्यते ।

यथा अयं कूर्मः सर्वशः स्वानि अंगानि संहरते, तथा यः इंद्रियाणां अर्थेभ्यः स्वकीयानि इंद्रियाणि संहरते, तदा सः स्थितप्रज्ञ इति उच्यते। ज्ञानिनः पुरुषस्य अपि प्रमाथीनि इंद्रियाणि मनः बलात् हरन्ति । तानि मनसा संयम्य ईश्वरनिष्ठः अतएव योगयुक्तः आसीत। यस्य इन्द्रियाणि वशे तिष्ठन्ति सः स्थितप्रज्ञः इति कथ्यते ।

विषयान् ध्यायतः मनुष्यस्य तेषु विषयेषु संगः अभिजायते। विषयसंगात् कामः संजायते, कामात् क्रोधः भवति । क्रोधात् मोहः भवति । मोहात् स्मृतिविभ्रमः भवति। स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशः । बुद्धिनाशात् मनुष्यः नश्यति ।

द्वेष प्रेमरहितैः इन्द्रियैः सर्वान् विषयान् उपभुञ्जन्, पुरुषः एवं विधैः वश्यैः इन्द्रियैः वश्यात्मा भूत्वा, मनःप्रसादं प्राप्नोति। एवं मनः प्रसादे प्राप्ते अस्य सर्वेषां दुःखानां हानिः उपजायते। प्रसन्नचेतसः पुरुषस्य अस्य बुद्धिः आशु स्थिरा भवति।

अयुक्तस्य योगहीनस्य स्थिरा बुद्धि न भवति। तस्य शान्तिः कुतः भवेत्, अशान्तस्य च सुखं कुतः भवेत्?

विषयेषु चरतां इन्द्रियाणां मनः अपि तान् अनुगच्छति। तत् मनः अस्य प्रज्ञां हरति, यथा समुद्रे वायुः नौकां नयति तद्वत्।

हे अर्जुन! तस्मात् यस्य सर्वेभ्यःविषयेभ्यः इन्द्रियाणि निःशेषेण गृहीतानि स स्थितप्रज्ञः भवति। या सर्वेषां भूतानां रात्रिः, तस्यां रात्र्यां संयमी पुरुषः जागर्ति। यस्यां सर्वाणि भूतानि जाग्रति सा पश्यतः मुनेः रात्रिः एव भवति।

नदीनदैः नानाजलप्रवाहैः आपूर्यमाणं अचलवत् स्थितं समुद्रं यथा जलप्रवाहाः सदा प्रविशन्ति, तद्वत् यं आत्मवशं पुरुषं सर्वे कामाः स्वयं प्रविशन्ति स एव शान्तिं आप्नोति। विषयानां भोक्ता कामकामी न कदाचन शान्ति आप्नोति॥

यः पुरुषः सर्वान् विषयकामान् त्यक्त्वा निस्पृहः भूत्वा जगति संचरति, सः निर्ममः निरहंकारः एव शान्तिं प्राप्नोति।

एषा ब्राह्मी स्थितिः अस्ति। हे पार्थ! एतां ब्राह्मीं अवस्थां प्राप्य कदाचित् कश्चित् अपि पुरुषः मोहेन न मुह्यते। अस्यां ब्राह्मयां अवस्थायां अन्तकाले अपि स्थित्वा, मरणसमये अपि अस्यां अवस्थायां प्रविश्य महत् श्रेयः प्राप्नोति। अत्यन्तं आनन्दं अश्नुते। परमं स्थानं गच्छति।